श्रीकृष्ण-चरित

या

श्रीरुक्मिणी-मंगल

ले॰ - रूपनारायण पांडेय
'कविरत्न'

हिन्दी · साहित्य · भंडार

श्रीकृष्ण-चरित

प्रथम भाग

भक्त-परीक्षा

प्रार्थना

मंगलं भगवान् विष्णुर्मंगलं गरूडध्वजः ।
मंगलं पुंडरीकाक्षो मंगलायतनो हरिः ॥ १ ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ३ ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरूम् ॥ ४ ॥
मेघैर्मेदुरमंबरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैः ।
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ॥
इत्थं नंदनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंज द्रुमं ।
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः॥ ५ ॥
अच्युं केशवं रामनारायणं ,
कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम् ।
श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं,
रूक्मिणीनायकं कृष्णचन्द्रं भजे ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण-चरित

प्रथम-भाग

भक्त-परीक्षा

गुरु, गणेश, गंगा, गिरा, गौरी, गौरीनाथ ।
गो, गोपी, गोपाल की, गाऊँ मैं गुनगाथ ॥
कृष्ण-कथा किंचित कहत कटत कुमति के फंद ।
करत वंदना नंद के नंदन देत अनंद ॥
बालमीकि ऋषि, व्यास ऋषि, कालिदास कविराज ।
त्यों त्रिकाल के कवि सबै तुम्हैं मनावहुँ आज ॥
मम मति डोंगी डगमगी, कृष्णचरित्र समुद्र ।
पहुँचावैंगे पार प्रभु, भक्त जदपि हौं क्षुद्र ॥

कृष्ण-कथा को प्रकट प्रसंगा ।
कलिमल धोवन को ज्यों गंगा ॥
पाप-पर्वतन बज्र सरीखी ।
संकट काटन को असि तीखी ॥
संसय आगि बुझावति पानी ।
कीरति कलित ललित वर बानी ॥

मंगल मूल मुक्ति मुनिमन की।
अटल जोति निर्मल जीवन की।
कृष्ण रूक्मिणी को प्रथम सादर सीस नवाय।
प्रथम परीक्षा भक्त की वर्णन करौं बनाय॥
बैकुंठ धाम का वर्णन है, सुनने के लायक बातें हैं।
भक्तों की महिमा गाई है, थोड़ा-सा हाल सुनाते हैं॥
भगवान शेष की शय्या पर लेटे थे एक समय सुख से।
लक्ष्मी चरणों की सेवा में बातें सुनती थीं श्रीमुख से॥
बातों ही बातों में हरि ने हँसकर कमला से कहा, प्रिये।
जो भक्त हमारे सच्चे हैं, क्या होता उनके नहीं किये॥
तन मन धन जीवन अर्पन कर सर्वस्व त्याग कर देते हैं।
मेरी ही उनको चाह, न वे बैकुंठ लोक भी लेते हैं॥
प्यारी लक्ष्मीजी, तुमको तो तृण तुल्य तुच्छ ही जानें वे।
लाखों की माया मिट्टी है, रत्नों को पत्थर मानें वे॥
सुन नारायण की ये बातें लक्ष्मी को मन में बुरा लगा।
मन में अभिमान हुआ जो था, वह और उभरता हुआ जगा॥
चाहे कोई हो, प्रभु उसका अभिमान न रहने देते हैं।
यह उनका प्रण है, भक्तों की इसलिए परीक्षा लेते हैं॥
लक्ष्मी जी को अभिमान इधर होता था अपने आदर का।
उठते थे यही विचार, बड़ा पद क्यों है नारी से नर का॥
क्या शक्ति बिना यह सब धंधा चल भी सकता विधि हरिहर का।

बस मैं संसार चलाती हूँ, मुझ पर है प्यार चराचर का।
मेरे ही पीछे पुजते हैं, लक्ष्मी के नाथ कहाते हैं॥
बैकुंठ--विभूति सुदामा के जैसे भिक्षुक भी पाते हैं॥
अंतर्यामी स्वामी सबके, मदभंजन को तैयार हुए।
अब सुनो जिस तरह दोनों में, प्रश्नोत्तर बारंबार हुए॥

हँसकर विनय-विनम्र हो बोलीं लक्ष्मी-देव!
दासी की कुछ है विनय, उसको भी सुन लेव॥

मुनि सुर सिद्ध नाग नर किन्नर।
त्रिभुवन बीच बसें जो घर घर॥
सो सब मेरे ही हैं सेवक।
देते मेरे लिए प्राण तक॥
बड़े-बड़े जोगी सन्यासी।
मूड़ मुड़ाए बने उदासी॥
आँख मूँद मुझको ही भजते।
सब तजकर भी मुझे न तजते॥
दुर्जय कठिन कनक की काया।
मुनि - मोहनी महेश्वर - माया॥

अब तक तो देखा नहीं ऐसा नर निर्लोभ।
मेरे कृपा-कटाक्ष से होता जिसे न क्षोभ॥
मैं हूँ दासी आपकी, मेरा बड़ा प्रताप।
जी चाहे तो जगत में जाकर देखें आप॥

प्रभु ने यह स्वीकार की प्रिय पत्नी की चाल।
सावधान होकर सुनो अब आगे का हाल॥
विष्णु चले वैकुंठ से बन कर बूढ़े संत।
जगह जगह की देखते शोभा श्रीभगवंत॥
सुन्दर गिरि कैलास के ऊँचे शिखर विशाल।
बसता जहाँ बसंत है सभी तरफ सब काल॥
गन्धर्व सिद्ध विद्याधर वर किन्नर नर नारी फिरते हैं।
दम भर में सूरज निकल पड़े, दम भर में बादल घिरते हैं॥
वृक्षों के बन हैं घने घने फूले फूलों की महक अहा।
फलवाली फैली डालों पर, चिड़ियों का वह चहचहा अहा॥
तोता मैना श्यामा कोयल दोयल की नई-नई बोली।
सुनती हैं तन्मय सी होकर कुंजों में सिद्ध-वधू-भोली॥
मोती से निर्मल जल जिसका, उस मानसरोवर के तट में।
बैठे थे शंकर उमा सहित ऋषियों के संग अक्षयवट में॥
थी गगनगामिनी गंगा की महती बहती धर-धर धारा।
नभमंडल में सब इधर-उधर जगमगा रहे उज्ज्वल तारा॥
सुरपुरी सजावट सुन्दर थी सुन्दरी देवियाँ बसती थीं।
आमोद-प्रमोद-विनोद भरी बातें कह कह कर हँसती थीं॥
अप्सरा विहार करें विचरें बैठे सुर वृंद विमानों में।
गाते गंधर्व बजा बाजे जनाते थे अमृत कानों में॥
आकाशमार्ग से यों होकर फिर आये पृथ्वी पर ईश्वर।

धनपति था भक्त बड़ा नामी बैष्णव-सेवक, उसके घर पर ॥
वह बनिया, उसकी घरवाली दोनों धर्मात्मा थे भारी ।
द्वारे पर संत खड़े देखे अपने तुलसी-मालाधारी ॥
अति-आदर से धनपति बोला, हैं धन्यभाग्य मेरे स्वामी ।
जो आप पधारे मेरे घर द्वारिकाधीश के अनुगामी ॥
सेवा मेरी स्वीकार करो कुछ दिन रहकर मेरे घर में ।
वरदान यही दीजिए मुझे दृढ़ भक्ति रहे परमेश्वर में ॥
प्रभु बोले—देखो सेठ, मुझे रखना जो चाहो यहाँ अभी ।
तो तुमको मेरी ये बातें करना होगा स्वीकार सभी ॥
परिवार तुम्हारा रहे जहाँ, हो उसी जगह आसन मेरा ।
होगी जब तक इच्छा मेरी तब तक रक्खूँगा मैं डेरा ॥
कहने से जाऊँ कभी नहीं अन्यत्र कहीं करने फेरी ।
रह सकता हूँ इन शर्तों पर, बाबा जो इच्छा हो तेरी ॥
जब धनपत ने बाबाजी का कहना स्वीकार किया सारा ।
तब साधुरूप भगवान वहाँ टिक रहे नाम जपते प्यारा ॥
धनपत, उसकी जोरू, बच्चे, सेवा सब मिलकर करते थे ।
भोजन पकवान मिठाई के आदर से आगे धरते थे ॥
सानंद दबाते पैर सभी सम्मान सहित जूठन खाते ।
भरपूर भक्ति के भावों से आनंद अपरिमित था पाते ॥
इतने में लीला और हुई, लक्ष्मी आई बुढ़िया बन कर ।
सिर काँप रहा गूदड़ ओढ़े हाँफती हुई दम दम भर पर ॥

ऐसा रूप बनाय के उसी भक्त के द्वार।
प्रकट हुईं लक्ष्मी वहाँ बैठ गईं हठ धार॥
देख उन्हें धनपति बहुत बिगड़ा, बोला खीझ—
हट बुढ़िया, क्यों इस जगह बैठ रही है रीझ॥

बुढ़िया वह टस से मस न हुई, फटकारा भी, दुतकारा भी।
उस जगह अड़ी ही खड़ी रही, यद्यपि लड़कों ने मारा भी॥
तब धनपत फिर उससे बोला, बुढ़िया क्या तेरा मतलब है ?
किसलिए यहाँ से टली नहीं अब तक तू, कैसी बेढब है ?
लक्ष्मी जी बोलीं—सुन बेटा, मैं आई हूँ भूखी-प्यासी।
भरपेट मुझे भोजन तू दे, वह ताज़ा हो अथवा बासी॥
यह बात मान ली धनपत ने, बोला भोजन कर ले माई।
तेरी ही खातिर इसी घड़ी बन रही रसोई मनभाई॥
षटरस के भोजन व्यंजन भी पकवान मिठाई बनवाई।
कच्ची पक्की रोटी पूरी तरकारी साहुन कर लाई॥
पहले तो प्रेमसहित उसने बाबा को भोजन करा दिया।
फिर घर के भीतर बुढ़िया को, भोजन करने को बुला लिया॥
आसन पर बैठी जब बुढ़िया तब उसने चट झोली खोली।
अनमोल जड़ाऊ सोने की थाली निकालकर यों बोली—
लो दाल डालू दो, और कढ़ी भी, भात परोसो इस कोने।
मैं तो अपने ही बरतन में खाती, क्यों लाए दोने ?
बुढ़िया ने बढ़िया-बढ़िया यों फिर कई कटोरे बड़े-बड़े।

झोली में से और निकाले, जिनमें मोती रत्न जड़े ॥
सब सामग्री अलग-अलग ही उस बुढ़िया ने परसाई ।
सेठ देखकर दंग हो गया, कैसी माया दिखलाई ॥
लाखों की लागत के बरतन ये कैसे बुढ़िया ने पाए ।
बड़े- राजों ने भी तो कभी न होंगे बनवाए ॥

बुढ़िया ने भोजन किया धोकर फिर मुँह हाथ ।
बोली धनपत से वचन लापरवाही साथ ॥
मैं जूठे बरतन सभी कभी न रखती संग ।
घूरे पर ये फेंक दे, क्यों होता है दंग ॥

धनपत तब विस्मय के मारे ।
चुप हो मन में यही विचारे ॥
यह कोई छलरूप बनाई ।
मुझे परखने देवी आई ॥
बड़े भाग्य से मुझे मिली है ।
मेरे मन की कली खिली है ॥
इसकी कृपा अगर मैं पाऊँ ।
छिन भर में कुबेर बन जाऊँ ॥
विस्मय देख समेटी झोली ।
फिर धनपत से बुढ़िया बोली ॥

क्यों सेठ अचंभा तुझको है, हर रोज यही मैं करती हूँ ।
भोजन करने के बाद नहीं जूठे बरतन फिर धरती हूँ ॥

कर कृपा गुरू ने यह विद्या मुझको है बेटा, सिखलाई।
गुरु कृपा मिली जिसको, उसने क्या सिद्धि नहीं जग में पाई॥
हर रोज बना सकती हूँ मैं जितना चाहूँ उतना सोना।
चौसठ वर्षों से नियम यही, छानो धरती कोना-कोना॥
धनपत ने हर्षित हो मन में, घर में रक्खे बर्तन धोकर।
आशा से बढ़कर बुढ़िया के आदर में सेठ हुआ तत्पर॥

भीतर पलँग एक डलवाया।
नरम बिछौना भी बिछवाया॥
सादर बुढ़िया वहाँ लिटाई।
पैर दबाने लगी लुगाई॥
संध्या समय बनाई ब्यालू।
तुरई, भिंडी, परवल, आलू॥
तरह-तरह की सब तरकारी।
पूरी हलवा खीर सँवारी॥

सब सामग्री यह प्रथम ले धनपत के दास।
भक्ति सहित श्रद्धासहित आये बुढ़िया पास॥
बुढ़िया ने भी तुरत ही सोने के अनमोल।
फेर निकाले सैकड़ों बरतन झोली खोल॥
अलग-अलग सामान सब उनमें लिया रखाय।
पीछे पहले की तरह दिए सभी फिकवाय॥
धनपत ने आनंद से भरे कोठरी बीच।
भक्ति भुलाई लोभ ने उसे बनाया नीच॥

कंगाल साधु की सेवा का सब चाव भक्ति का भाव गया।
बुढ़िया के धन पर दाँत लगा, फिर लाभ-लोभ बढ़ चला नया॥
उठते ही सेठ सवेरे फिर बुढ़िया की सेवा में आया।
बुढ़िया ने रूखेपन से तब इस तरह कहा—बस भर पाया॥
मन में तो तू इस बूढ़े का दम भरता, आदर करता है।
यह तेरा सभी दिखावा है, गुरु समझ उसी को डरता है॥
मुझको जो तू रखना चाहे तो बात मान ले यह मेरी।
बूढ़े को दूर अभी कर दे, कह दे, कर और कहीं फेरी॥
जिस जगह साधु यह रहता है, उस जगह रहूँगी मैं अब से।
कर दूंगी मालामाल तुझे धनपत, मैं अपने करतब से॥
बुद्धि भ्रष्ट हो गई सेठ की लक्ष्मीजी की माया से।
सोचा उसने क्या लाभ मुझे कंगाल साधु की काया से॥
रक्खूँगा अब मैं बुढ़िया को, वह तो देगी दौलत भारी।
दूँगा निकाल मैं बाबा को बतलाकर अपनी लाचारी॥
ऐसी सलाह करके घर में बाबा से धनपत यों बोला।
बाबाजी, जाओ और कहीं लेकर अपना चिमटा झोला॥
गुस्सा करके बाबा बोले, क्यों नीच, अधम, लोभी, पापी।
कुछ सोच, प्रतिज्ञा क्या की थी, अब यह कैसी आपाधापी॥

मैं कैसे जाऊँ भला अपने प्रण को तोड़।
अरे मूढ़, अब भी समझ धर्म न अपना छोड़॥
सुनकर साहुन ने बिगड़ कहा—अरे यह संड।

मुफ्त माल खाता पड़ा दिखलाता पाखंड ।।
यों यह जाने का नहीं, सत्य कहूँ मैं नाथ ।
इसे निकालो भौन से दे गरदन में हाथ ।।
देख भक्त का भाव यह लक्ष्मीपति भगवान ।
आप हो गये सेठ के घर से अंतर्द्धान ।।
जैसे नारायण चले गये अपमानित होने से पहले ।
वैसे ही लक्ष्मीदेवी भी वैकुंठ सिधारीं, सेठ छले ।।
सोने-चाँदी के रत्न जड़े बरतन भी गायब थे सारे ।
सिर धुनता छाती पीट रहा धनपत पछतावे के मारे ।।
गगन-गिरा तब हुई, अरे लोभी बनिए, क्यों रोता है ?
जब समय हाथ से निकल गया, तब रोने से क्या होता है ?
भगवान परीक्षा लेने को रख रूप साधु का आये थे ।
तूने पहचाना मूढ़ नहीं, नरतनु के सब फल पाये थे ।।
मैं भी बुढ़िया बनकर पहुँची, लक्ष्मी नारायण की छाया ।
दिखलाई तुझको बुढ़िया की काया, यह सब थी माया ।।
तुझको दिखलाई रत्न जड़े अनमोल बरतनों की ढेरी ।
तू फिसल पड़ा नादान बना मति मारी गई सेठ, तेरी ।।
मैंने दृढ़ता तेरी परखी, क्यों मेरा कहना मान लिया ।
माया के छल में बहँक गया तूने प्रभु का अपमान किया ।।
यह लोभ लुभाता लाभ दिखा, इससे बढ़कर है शत्रु नहीं ।
जो पड़ा फंद में लालच के, बच सका भला वह कभी कहीं ।।

माया मिली न राम मिले, पछतावा केवल हाथ लगा।
क्या दोष किसी का, तूने तो की है अपने से आप दगा॥
लक्ष्मीदेवी की ये बातें सुनते ही आग लगी जैसे।
धनपत आपे से बाहर हो बोला, मैं दोषी हूँ कैसे?
प्रभु को छुड़वाया धोखे से, अपमान कराया निजपति का।
देता हूँ शाप तुम्हें भोगो फल कुछ दिन अपनी दुर्मति का॥

पृथ्वी पर नरयोनि में होना तुम उत्पन्न।
दो वर आवें ब्याहनें, होगी बहुत विपन्न॥
कुछ दिन तक प्रभु से बिछुड़ सहो महान वियोग।
साधु-विरोध न फिर करो भोग करम के भोग॥
लक्ष्मी ने भी सेठ को शाप दिया कर क्रोध।
रे अभिमानी व्यर्थ ही मुझसे किया विरोध॥

निज अपराध न मानकर मुझे लगाया दोष।
इससे देती शाप मैं तुझको भी कर रोष॥

जन्म तुझे भी लेना होगा मेरे साथ धरातल में।
मेरा भाई नर होकर भी हो अगुआ असुरों के दल में॥
नारायण से विमुख बने का फल तू बेशक पावेगा।
युद्धभूमि में शत्रुपक्ष के हाथों पकड़ा जावेगा॥
ज्यों अपमान किया है तूने साधुरूप परमेश्वर का।
तुझको भी भोगना पड़े दुख त्यों अपमान अनादर का॥
होनहार तो बड़ी प्रबल है, सबको नाच नचाती है।

बड़े बड़ों की बुद्धि उसी से भ्रष्ट आप हो जाती है ॥
धनपत तो साधारण नर था, उसकी तो कुछ बात नहीं ।
लक्ष्मीजी जगदंबा होकर बचा सकीं आघात नहीं ।
शाप परस्पर तब दोनों को दोनों ने दे डाला यों ।
और जन्म में सहा किये फिर दुःख कष्ट की ज्वाला यों ॥
श्री भीष्मक राजा के घर में लक्ष्मीजी ने जन्म लिया ।
नाम हुआ रुक्मिणी, कृष्ण ने आकर उनका हरण किया ॥
धनपत भी रुक्मी कहलाया, हुआ रुक्मिणी का भाई ।
कृष्ण-विरोधी होकर जिसने अपयश पाया दुखदाई ॥
यही रुक्मिणी-मंगल की है कथा मनोहर मनभाई ।
कल से उसे सुनो मन लाकर प्यारे श्रोतागण भाई ॥

इसी जगह पर हो रहा आज कथा विश्राम ।
कृष्ण-रुक्मिणी की कहो जय जय, करो प्रणाम ॥

श्रीरुक्मिणी-जन्म

द्वितीय भाग

जय गणनायक विघ्नहर गौरीनन्दन नाथ ।
भक्त सीस धरिये प्रभू मंगलमय निज हाथ ॥
लक्ष्मीजी को जिस तरह मिला भक्त का शाप ।
लक्ष्मी का भी भक्त को शाप सुन चुके आप ॥
अब सुनिये श्रीरुक्मिणी लक्ष्मी का अवतार ।
कुन्दनपुर में जिस तरह जनमीं नर तनु धार ॥
भारत की भूमि मनोहर में विख्यात विदर्भ प्रदेश रहा ।
उसकी थी कुन्दनपुर नगरी सुरपुरी समान समृद्ध महा ॥
विद्वान बड़े ब्राह्मण नामी वेदों के पंडित रहते थे ।
जो धर्म-कर्म करने वाले सब पुण्य-मर्म को कहते थे ॥
जप-तप जिनका जग जाहिर था, सम्मान सभी से पाते थे ।
संतोषी दोषी नर पर भी वे दया सदैव दिखाते थे ॥
रहते थे क्षत्रिय वीर बड़े, सहते थे वार खड़े रण में ।
यम को भी जरा न डरते थे विचलित होते न कभी प्रण में ॥
शरणागत को रक्षा करते, दुष्टों को दंड दिया करते ।

निर्बल का पक्ष लिया करते, उत्तम ही कर्म किया करते ॥
गो ब्रह्मण-पालक धन शाली, सवक सच्चे जो हरि-जन के।
ऐसे ही वैश्य वहाँ बसते निष्पाप नित्य निर्मल मन के ॥
वैपार वनिज निज का करने वे दूर-दूर तक जाते थे।
लाखों की दौलत लाते थे, वेकार उसे न लुटाते थे ॥
शूद्रों की भी उन्नति ही थी, वे विनयशील धर्मात्मा थे।
द्विज-देव-साधु-सेवा करते, अभिमान न था, पुण्यात्मा थे ॥
वर्ण चार ऐसे रहे उस नगरी के बीच।
सब समाज सम्पन्न था, चोर, न, लम्पट, नीच ॥
राजा भीष्मक नाम के बड़े प्रतापी धीर।
राज्य कर रहे थे वहाँ अति उदार वर वीर ॥
सुनकर उनका नाम ही काँपा करते दुष्ट।
पुष्ट कर रहे धर्म को, सब रहते संतुष्ट।
सब प्रजा चैन से, सुख से थी, शोकाकुल कोई न था कहीं।
न अकाल, महामारी, होती, अन्याय अनर्थ कदापि नहीं ॥
वर्षा की कमी होती थी, न अकाल-मृत्यु का कुछ डर था।
न पराई स्त्री कोई तकता, चोरी करना तो दूभर था ॥
थे भाग्यवान भूपति भीष्मक, जैसे थे वैसी रानी भी।
जैसी सुन्दर वैसी करुणा-मूरति वैसी ही दानी भी ॥
साक्षात लक्ष्मी ही उनको कहना चहिए इस पृथ्वी पर।
लाखों के दूर दरिद्र किये दम भर में जिसको देखा भर ॥

भीष्मक के लड़के पाँच हुए, अब उनके नाम सुनो हमसे।
था रुक्मबाहु पहला लड़का, जिनमें थे सारे गुण क्रम से ।।

इसी तरह फिर रुक्मरथ, रुक्मकेश मतिमान।
रुक्ममाल, रुक्मी हुए सुत पाँचों बलवान ।।

लक्ष्मीजी के शाप से धनपत का अवतार।
रुक्मी पृथ्वी पर हुआ पृथ्वी-तल का भार ।।

अति अभिमानी असुर-सम असुर-मित्रता ठान।
मनमानी करता रहे नालायक, नादान ।।

पर वह शिव का भक्त था, कर शिव को संतुष्ट।
दस हजार गजराज सम बली हो गया दुष्ट ।।

भीष्मक ने आनंद से कर पुत्रों के ब्याह।
मँगतों को बहु धन दिया, जिसकी जैसी चाह ।।

बहुएँ आई गुणवती सुघर सुशील सुरूप।
उन्हें देख कृतकृत्य अति हुए भीष्मक भूप ।।

सबके पीछे भूप के कन्या हुई ललाम।
लक्ष्मी का अवतार सो रखा रुक्मिणी नाम ।।

कवि कब छवि वर्णन कर सकते,
चकित, विमोहित, विस्मित तकते।
रुचि से बिरंचि विरंचि विचारे,
अंग-अंग निज हाथ सँवारे।

मेरी रचना यही अमर है,
अहो यही सबके बढ़कर है।
यह रमणी रमणीय अति, है यह रूप अनन्य।
इस कन्या की सृष्टि से सृष्टि हो गई धन्य॥
इसकी शोभा से हुआ शोभित सब संसार।
मेरे हाथों से हुआ लक्ष्मी का अवतार॥
वह चन्द्रकला ज्यों शुक्ल पक्ष में दिन-दिन थी बाला बढ़ती।
सुकुमार अंग पर शोभा भी वैसे ही वैसे थी चढ़ती॥
लोचन आलोचन करने से थे पड़े विपद में पद्म बड़े।
मुँह बन्द हुआ, जल में डूबे, दिन-रात कीच के बीच खड़े॥
सुविशाल भाल देखा-भाला ज्यों चन्द्रबिंब होकर आधा।
औंधा मुँह करके लज्जा से समता की सोच रहा बाधा॥
भ्रुकुटी भी राजकुमारी की थीं काम-कमान समान बनी।
जिनसे चितवन के तीर चलें, जो जोड़ नहीं रखते अपनी॥
थे कान जान पड़ते दोनों उन तीरों के अक्षय तरकस।
नासिका नुकीली, गाल गोल गुलगुले, गुलाबी अधर सरस॥
वह सुघड़ चिबुक नाजुक जिस पर झुक-झुक बुलाक नाचे हँसहँस।
शृंगार-कूप या रूप-कुंड कहिये अनूप होकर बेबस॥
बल पड़े, सुराहीदार बनी गरदन की शोभा क्या कहिये।
उपमा न अनूठी कोई है, सब झूटी, जूठी, चुप रहिये॥
घुँघराले काले-काले वे चिकने चमकीले लहराते।

बाला के बाल कमाल करें लाखों आँखों को उलझाते ॥
बाँहें हैं गोरी गठी हुई गहने अनमोल जड़ाऊ सब।
कंचन के कड़े पड़े जिनमें हीरे पन्ने हैं जड़े अजब ॥
काली चुड़ियों में कंगन, ज्यों बिजली बादल वाली आहा।
हथिया ली हथेलियों ने है वह लालों की लाली आहा ॥
उँगलियाँ नहीं, यह उग आये अंकुर इस रूप-लता के हैं।
या तर्कस से कुछ बाहर निकले बाण मदन के ताके हैं ॥
देखिए अनोखे नख जिन पर सदके गुलाब की पंखड़ियाँ।
कुच उभर रहे भर रहे मनों कमलों की कोमल हैं कलियाँ ॥
हो चली नाभि भी अब गहरी, रोमावलि ऊपर राज रही।
ज्यों यज्ञकुण्ड से उठा धुँआ रेखा उसकी छवि छाज रही ॥
घन जघन दली कदली अथवा कंचन के खंभे शोभित हैं।
इस तरह रूप की राशि बढ़ी देखे ऋषि मुनि भी लोभित हैं ॥
भीष्मक भूपति के भवनों में सुन्दरीशिरोमणि भूपसुता।
सुख से सखियों के साथ रहे हर्षित करती निज मात-पिता ॥

इधर पिता-माता हुए चिन्तित ज्यानी देख।
कहाँ ब्याह इसका करें चिंता यही विशेष ॥
राजकुँअर थे सैकड़ों देश देश के वीर।
विद्या-बुद्धि-विवेक-बल-सहित, धीर, गंभीर ॥

मगर न थे सबमें गुण सारे,
भूपति देख रहे मन मारे।

था कुलीन तो पढ़ा नहीं था,
विद्या थी तो बल न कहीं था।
सब कुछ था तो न था बराबर,
बने रुक्मिणी का कैसे वर।
ज्यों-ज्यों बीते दिन इधर त्यों-त्यों उधर नरेश।
अधिक अधिक चिन्ता करें व्याकुल हृदय हमेश।
इसी बीच में एक दिन रमते योगी सिद्ध।
नारद ने दर्शन दिये, जो हैं जगत्प्रसिद्ध॥
आकाश मार्ग से राजा ने देखे सहसा नारद आते।
दूसरे सूर्य ज्यों पृथ्वी पर आ रहे उतरते छवि छाते।
फैली मटमैली सीस जटा, अद्भुत प्रकाश जिनका छाया।
हाथों में वीणा लिये हुए हरि का यश गाते मन भाया॥
गोविन्द, कृष्ण, हरि, नारायण, मधुसूदन, मोहन, मुरलीधर।
गोपी-वल्लभ, गोकुलवासी, कालियादमन, श्रीराधावर॥
गोपाल, मुरारी, असुरारी, माधव, मुकुन्द, जय जय जय जय।
भवभंजन जय, मनरंजन जय, बैकुंठनिवासी जय जय जय॥
यों करते भजन विचरते हरिजन हरते दुख दर्शन देकर।
मन मगन गगन के तले उतरते देख पड़े नारद मुनिवर॥
यह अग्निदेव आते हैं अथवा स्वयं सूर्यनारायण हैं।
या ब्रह्मा जी हैं या शिव हैं या सचमुच ही नारायण हैं॥
लगे सोचने मनमें राजा इतने में मुनि आ पहुँचे।

गुजर नजर की कहाँ वहाँ हो जहाँ विचार न जा पहुँचे ॥
राजा आसन से उठ बैठे फिर आदर से अगवानी की।
चरणों पर गिरकर श्रद्धा से फिर पूजा की मुनि-ज्ञानी की ॥
सुन्दर आसन पर बिठलाया फिर आप चरण मुनि के धोये।
सानन्द अँगोछे से पोंछे निज जन्म जन्म पातक खोये ॥
चन्दन का तिलक लगाया फिर फूलों की माला पहनाई।
आरती उतारी, भोजन भी करवाया, जूठन धुलवाई ॥
दक्षिणा सामने रखकर, की मुनि की प्रदक्षिणा आदर से।
फिर हाथ जोड़ राजा बोले वाणी विनीत यों मुनिवर से ॥
है धन्य भाग्य मेरे स्वामी, दर्शन दुर्लभ मैंने पाये।
आज्ञा कुछ करिये सेवक का यह जन्म सफल तो हो जाये ॥

तब रुक्मिणी सहित नृप रानी,
महलों से आई हरखानी।
किया प्रणाम भक्ति से पूजन,
बोले तब नारद हर्षित मन।
यह रानी वरदान हमारा,
अचल रहे अहवात तुम्हारा।
घटे न संपति, सब सुख पाओ,
पति के साथ स्वर्ग को जाओ।
और तुम्हारी यह सुता है लक्ष्मी का रूप।
तीन लोक में तव सुयश फैलावेगी भूप ॥

तीन लोक में घूमता फिरता हूँ स्वच्छंद।
मुझे कामना कुछ नहीं, यों ही है आनन्द॥
आज्ञा मेरी है यही, भजो सदा भगवान।
सब जीवों का हित करो, रखो नहीं अभिमान॥
मुनिवर के ये सुन वचन बोले नृप सिर नाय।
चिन्ता एक मुझे बड़ी निस दिन रही सताय॥
प्यारी पुत्री रुक्मिणी हुई ब्याहने जोग।
वर कोई मिलता नहीं, देखे लाखों लोग॥
तीन लोक चौदह भुवन फिरते रहते आप।
इन चरणों की विश्व में लगी हुई है छाप॥

देखा हो कोई अगर कहीं पर राजकुमार गुणी, ज्ञानी।
विद्वान, बली, वैभवशाली, अच्छे कुल का, दानी, मानी॥
सुन्दर और सुशील सुलक्षण वीर धीर नररत्न सुघर।
बतलाओ तो मुझे मुनीश्वर, इस कन्या के लायक वर॥
मुनि ने कहा, जगत के स्वामी कृष्णचन्द्र सब गुण-आगर।
त्रिभुवन भर में योग्य रुक्मिणी के वह हैं सुन्दर नर वर॥
ज्यों नदियों में गंगाजी हैं और ग्रहों में सूर्य्य बड़े।
तीर्थों में जैसे प्रयाग है, तेजस्वी हैं अग्नि कड़े॥
इन्द्र देवतों में हैं जैसे, महादेव ज्यों वरदानी।
वर्णों में हैं ब्राह्मण जैसे, हरिश्चन्द्र राजा दानी॥
मुनियों में शौनक, नारायण भक्तवत्सलों में जैसे।

सभी सुरासुर और नरों में कृष्णचन्द्र उत्तम वैसे ॥
उनकी महिमा और गुणों का क्या बखान हो सकता है।
वर्षा की बूँदें भी कोई नर भला कहीं गिन सकता है ॥
उनकी विद्या, विनय, वीरता, वैभव की कुछ थाह नहीं
उन्हें कमी कुछ नहीं, किसी की चाह नहीं, परवाह नहीं ॥
केशी, कंस, अघासुर आदिक असुर अनेकों मारे हैं।
उनके काम सभी न्यारे हैं, वह सबही को प्यारे हैं ॥
यदुकुल में उत्पन्न हुए हैं श्री वसुदेव-दुलारे हैं।
और देवकी माता के तो वह आँखों के तारे हैं ॥
जैसी कन्या रत्न सुन्दरी गुण-आगरी तुम्हारी है।
वैसे ही वर मिलें कृष्णजी यह आशीश हमारी है ॥

सुनकर मुनिवर के वचन हुए प्रसन्न नरेश।
बोले नारद से—बहुत ठीक यही आदेश ॥
कृष्णचन्द्र का दीजिये परिचय मुझको और।
किन बातों में वह हुए पुरुषों के सिरमौर ॥
गुण-गाथा उनकी अहो कहो सहित विस्तार।
तब मुनिवर कहने लगे कथा कृष्ण-अवतार ॥
एक समय पृथ्वी पर भारी,
भार हुआ, सारे नर-नारी।
पीड़ित हुए पाप के बल से,
सुर सब दबे दानवी दल से।

धर्म कर्म का मर्म न जानें,
हो बेशर्म न ईश्वर मानें।
जप, तप, पूजा-पाठ उठाया,
लोगों ने पाखंड बढ़ाया।
श्रद्धा नहीं श्राद्ध के ऊपर,
तर्पण करे न कोई भू पर।
चारों वर्ण और सब आश्रम।
भ्रम वश भूले सारा संयम।
नियम न माने, शास्त्र न जाने,
प्रथम पेट - पूजा पहचाने।
अभ्यागत, अथवा अतिथि आवे जो निज द्वार।
तो उसका करते नहीं आदर या सत्कार॥
कुमति कुपथगामी कुटिल अभिमानी नादान।
नर नारी नास्तिक बने सब स्वारथी समान॥
गुरुजन का गौरव गया गड़बड़झाला सार।
गुणियों का गाहक नहीं गुरु बन गये गँवार॥
ऐसे भारी भार से भूमि भई जब खिन्न।
धर्म धरा-धारण हुआ विकृत और विच्छिन्न॥
तब पृथ्वी होकर दुखी रूप गऊ का धार।
आँखों में आँसू भरे करने लगी गुहार—
पाहि प्रभो! पीड़ित पड़ी पुत्री करे पुकार।

दल मल डालो अब सकल खल दल ले अवतार ॥
भ्रष्ट हुई, अब नष्ट भी होगी सारी सृष्टि।
जो न सुधा की वृष्टि सी हुई कृपा की दृष्टि ॥
निराधार निर्बल हुआ धर्म धरा के बीच।
पामर पापी पशुप्रकृति हैं पिशाच से नीच ॥
पुण्यपरायण देव-द्विज-गोमाता के भक्त।
सहते हैं चुपचाप सब अत्याचार अशक्त ॥
सभी समय का फेर यह देख पड़ रहा जान।
साधु सिद्ध सीधे सधे सह लेते अपमान ॥
देख नहीं सकती मगर मैं यह महा अनर्थ।
कम से कम मैं तो हुई सहने में असमर्थ ॥
जीव जगत के जो जड़ जंगम,
सबको खले खलों का ऊधम।
सबके मन की बात यही है,
किसी भाँति अब तक निबही है।
और अधिक अन्याय उपद्रव,
सहना है अत्यन्त असंभव।
परमपिता परमेश्वर प्यारे,
तुमने दुखिया बहुत उबारे।
दीनबन्धु, क्यों दीन बिसारे,
क्या ऐसे अपराध हमारे।

हाथ पकड़ कर नाथ उबारो,
सुन पुकार यह भार उतारो ।।
गऊ रूप पृथ्वी माता की यह पुकार सुनकर मनमें ।
समाधिस्थ हो ध्यान लगाया ब्रह्माजी ने निर्जन में ।।
जैसा कुछ आदेश हृदय में मिला उन्हें नारायण का ।
सुनो उन्हीं के शब्दों में वह सब वृत्तान्त सत्य प्रण का ।।
भारतभूमि, तुम्हारा भारी भार न अब रह जावेगा ।
यदुकुल में अवतार हुए पर कोई फिर न सतावेगा ।।
मानव देह धरे जो दानव अभी अधर्मी खलते हैं ।
पूजा पाठ पुण्य में बाधा-विघ्न डालते चलते हैं ।।
साधुजनों को वृथा सताते, मुनियों को मारा करते ।
नष्ट-भ्रष्ट पतियों सतियों को करते हुए नहीं डरते ।।
वे खल सकल साथ दलबल के काल-कवल हो जावेंगे ।
शत्रु धर्म के सब अब जल्दी कर्मों के फल पावेंगे ।।
सुनकर ब्रह्मा के वचन भूमि गई हर्षाय ।
इधर सुनो जैसे हुआ दुष्ट-विनाश-उपाय ।।
उग्रसेन यदुवंश के राजा मथुरा बीच ।
उनके पुत्र हुआ बली कंस बड़ा ही नीच ।।
सब यादव उससे डरते थे, परदेसों में जा रहते थे ।
घर बार बाल बच्चे छोड़े सब कष्ट कड़े वे सहते थे ।।
जिसको देखो वह उस खल के कर्मों को बैठा रोता था ।

था धर्म कर्म का नाम नहीं, पूजा या पाठ न होता था ॥
होता था यज्ञ नहीं कोई, देवता और देवी कैसी।
कहता था कंस घमंडी यों, शुभ कर्मों की ऐसी-तैसी ॥
मुझसे बढ़कर कब कोई है जिसकी पूजा तुम करते हो।
बेकार समय क्यों खोते हो क्यों भटके भ्रम से मरते हो ॥
मुझको पूजो मेरी सेवा तुम करो हमेशा सुख पाओ।
भगवान कौन है, जिसको तुम सिर नाओ, जिसके गुण गाओ ॥
नास्तिक बनकर ऐसे पापी पापों का घड़ा लगा भरने।
उस तरफ देवता सब मिलकर प्रतिकार लगे उसका करने ॥

बहन कंस की देवकी हुई ब्याहने जोग।
ब्याही तब वसुदेव को, हर्षित पुर के लोग ॥
कंस ब्याह के अंत में बना सारथी आप।
रथ के घोड़े हाँकता जाता था चुपचाप ॥
इतने में आकाश की वाणी हुई विचित्र–
अरे मूढ़, तू जानता जिसको अपना मित्र,
वही पुत्र के रूप में होगा तेरा काल।
मारेगा इसका तुझे अरे आठवाँ लाल ॥

सुनते ही त्योरी बदल गई, तलवार कंस ने खींची फिर।
देवकी-केश कर से पकड़े काटने चला चट उसका सिर ॥
वसुदेव रंग में भंग देख धर धीरज मन में यों बोले—
सहसा कुछ करना ठीक नहीं, हो चतुर, बनो फिर क्यों भोले ?

ऐसी अनहोनी बातों पर विश्वास भला तुम करते हो ?
अपनी भगिनी को मारोगे ? क्यों कायर बनकर डरते हो ॥
इससे तो तुमको खौफ नहीं, इसके लड़के से होगा भय ।
मैं तुमसे वादा करता हूँ सब लड़के दूंगा उसी समय ॥
छोड़ो इसको, यह अबला है, इसलिए न व्यर्थ अनर्थ करो ।
मिथ्या मैं कभी न बोलूंगा, इससे तुम मन में नहीं डरो ॥
स्वारथी कंस इन बातों से हो गया शांत, भय दूर हुआ ।
वसुदेव देवकी सहित गये, था चिन्ता से चित चूर हुआ ॥

पहला बालक जो हुआ ले उसको वसुदेव ।
पहुँचे राजा कंस के पास कहा—यह लेव ॥
उसे देखकर कंस को आई दया नृपाल ।
बोला इसको क्या करूँ ले जाओ तत्काल ॥
यह तो मेरा है नहीं शत्रु, शत्रु है और ।
लड़का अपना आठवाँ ले आना इस ठौर ॥
ले लड़का लौटे उधर घर को श्री वसुदेव ।
इधर देखकर यह चरित घबराये सब देव ॥

वह सोच देवतों ने मुझको तब पास कंस के भेज दिया ।
मैंने जाकर भड़काया यों–यह क्या अनर्थ है कंस, किया ?
रेखाएँ खींची धरती पर फिर कहा इन्हें देखो गिनकर ।
पिछली से गिनिए पहली ही आठवीं निकलती है नरवर ॥
यह माया है सब देवों की, इसमें तुम भूलो नेक नहीं ।

पहले ही बालक को मारो मँगवाकर इस दम, अभी, यहीं ॥
कहने भर की थी देर वहाँ वसुदेव, देवकी, वह लड़का ।
सब पकड़ मँगाये पापी ने, मेरे कहने से यों भड़का ॥
लड़के को पत्थर पर पटका, वसुदेव देवकी कैद किये ।
क्रम क्रम से फिर हत्यारे ने छः लड़के यमपुर भेज दिये ॥
जब गर्भ सातवाँ हुआ देवकी के तब देवों ने मिल वर ।
भेजीं श्री महायोग माया निज काज साधने पृथ्वी पर ॥
यों कहा—देवकी देवी का यह गर्भ आप जल्दी जाकर ।
रोहिणी-उदर में पहुँचाओ, यह कृपा करो हम लोगों पर ॥
वैसा ही सब कुछ काम किया देवी ने अपनी माया से ।
संकर्षणजी का जन्म हुआ व्रज बीच रोहिणी-काया से ॥

पत्नी श्रीवसुदेव की थीं रोहिणी उदास ।
नन्दमहर के घर रहें दुष्ट कंस के त्रास ॥
लोगों ने जाना यहाँ गिरा आठवाँ गर्भ ।
अब सब आगे का सुनो हरि-लीला-संदर्भ ।
पापी अपने पाप से रहता सदा सशंक ।
उसके कर्मों से उसे लगता महा कलंक ॥

सातो सुत जब हो चुके तब से दुर्मति कंस ।
सभी समय भय से भरा समझ रहा विध्वंस ॥
बैठे मन्त्री आदि सब लगा हुआ दरबार ।
कहा कंस ने इस तरह मन में सोच-विचार—

दुष्ट देवता बैरी मेरे मायावी हैं बड़े छली ।
मुझसे सब डरते रहते हैं, मेरी यह महिमा उन्हें खली ॥
पेश न पाते अमर समर में विकल न पल भर ठहर सकें ।
छल बल कौशल निष्फल होता, मेरा वे कुछ भी न कर सकें ॥
दुष्ट देवतों की दुर्गति तो तुम लोगों से छिपी नहीं ।
छीछालेदर मैंने जैसी उन सब की की है सभी कहीं ॥
क्रुद्ध विरुद्ध युद्ध में मैंने सदा निहत्थे ही जाकर ।
प्रबल बाहुबल से फहराई विजय-पताका अरिपुर पर ॥
विश्व-विदित वर वीर देखकर हुए चकित शंकित मन में ।
मेरा अति आतंक अपरिमित व्याप रहा है त्रिभुवन में ॥
भागा इन्द्र प्राण ले अपने, खुली कच्छ की खबर नहीं ।
नारायण भी रण में क्षण भर टिक न सके हैं कभी कहीं ॥
बेढंगा नंगा भिखमंगा गंगाधर भोंदू भोला ।
आप रहे गड़गाप नशे में भारू है अपना चोला ॥
ऊलजलूल त्रिशूल हूल कर अपनी भूल समझ कर फिर ।
घबराहट से झटपट झपटा बार-बार फिर-फिर गिर-गिर ॥
जटाजूट जो छूट गया तो चुटिया खुलकर बिखर गई ।
बुरा हाल हो रहा हार यह हर को आखिर अखर गई ॥
उधर वरुण की करुण विनयमय थी पुकार शरणागत हूँ ।
टेर देर से थी कुबेर की—मैं किंकर हूँ, पदनत हूँ ।
अग्नि पड़ा ठंडा ठिठराया, सूर्य्य सहम कर सिकुड़ गया ।

वायु आयु की अंतिम आशा से मेरी चाहता दया ॥
चौखल बने वृद्ध ब्रह्माजी असमंजस में पड़े हुए ।
लज्जित विजित झुकाये सिर थे अपराधी से खड़े हुए ॥
देख दुर्दशा उस बुड्ढे की मैंने मन में माफ किया ।
फिर सब को दिखलाने को ही मैंने यों इन्साफ किया ॥
अरे बुढ़ापे में आपे में तुम बाबाजी रहो नहीं ।
इसी तरह से रह-रह कर तुम मुझसे भिड़ते सभी कहीं ॥
मेरे सदृश महा बलधारी महाराज से वैर किया ।
मेरे वैरी इन देवों ने झाँसा देकर फाँस लिया ॥
खैर तुम्हारा देख बुढ़ापा अब की मैंने माफ किया ।
सिर्फ सजा यह हलकी दूँगा, कहो, है न इन्साफ किया ?
कान पकड़कर बीस बार तुम बैठो उठो और जाओ ।
याद रहे इन चंडूलों के फन्दे में फिर मत आओ ॥
काँप काँप कर फिर ब्रह्मा का उठना और बैठना यार ।
देख हो गये लोटपोट सब हँसते-हँसते बारम्बार ॥
वही प्रतापी मैं अब कैसे बालक से डर जाऊँगा ।
मुझे यही चिन्ता है केवल, कब मैं उसको पाऊँगा ॥
उसे मार कर निष्कंटक हो सब देवों से लूँ बदला ।
एक नहीं बचने पावेगा रहने दूँगा यह न बला ॥
तब तक जाओ तुम सब जग में गो-ब्राह्मण का नाश करो ।
धर्म-कर्म करनेवाले को पकड़-पकड़ कर प्राण हरो ॥

पूजा-पाठ न होने पावे पुण्य-दान की जड़ खोदो।
दुनिया भर में पातक ही के तुम विष-बुझे बीज बो दो ॥
यज्ञ-हवन में डाल रुकावट देवों की जड़ को काटो।
बच्चे मार मारकर उनकी लाशों से धरती पाटो ॥

सुनकर पापी कंस के ये उपदेश कराल।
नीच निशाचर खुश हुए चले धर्म के काल ॥
श्रोतागण अब तुम सभी कह दो जय गोपाल।
कृष्ण-जन्म की कल कथा होगी परम रसाल ॥

रुक्मिणी-जन्म समाप्तम्

श्रीकृष्ण-जन्म

तृतीय भाग

गजमुख सुखदायक सदा गौरीतनय गनेस।
दृष्टि दया की कीजिये, रहे न लेस कलेस॥
वाला-पुस्तक-धारिनी हंस-वाहिनी रूप।
जय जय मात सरस्वती महिमा अमित अनूप॥
पग पैंजनियाँ बज रहीं, घुँघराले सिर बाल।
ठुमकि चलत किलकत हँसत ब्रज में बाल गोपाल॥
श्री राधावर गोपीवल्लभ गोपाल लाल की जय बोलो।
सानन्द नन्द के नन्दन की तुम कंस-काल की जय बोलो॥
धर ध्यान लगाकर कान सुनो फिर कृष्णजन्म की कथा भली।
है अमृत यही असली पी लो, था पिया देवतों ने नकली॥
जब सातों संतान दुष्ट कंस के हाथ से,
मारी गईं, महान दुःख देवकी को हुआ॥
कारागृह में देवकी जकड़ी पड़ी उदास।
देवतुल्य वसुदेव भी करते वहीं निवास॥
बेहद गंदी तंग उस कालकोठरी बीच।

सभी तरह की यातना देते रहते नीच ॥
सहते थे वसुदेव तो धीरज धर वर वीर ।
मगर देवकी सह नहीं सकती थीं यह पीर ॥
बीता करते थे रात दिवस बेचैनी में रोते-रोते ।
पुत्रों की हत्या का सपना चौंका देता सोते-सोते ॥
क्या कठिन कष्टकर कारा के कुत्सित जीवन का अंत नहीं ।
अथवा कब होगा उद्धार या कभी मृत्यु पर्यन्त नहीं ॥
यों ही पति-पत्नी दोनों के मन में विचार उठते रहते ।
आशा के साथ निराशा के बेढब रगड़े-झगड़े सहते ॥
था इधर देवतों के संकट कटने का अवसर आ पहुँचा ।
पृथ्वी तल पर नर-नारायण का अवतार भार-हर आ पहुँचा ॥
देवादिदेव ब्रह्माजी ने इन्द्रादिक को यह बतलाया ।
बिध्वंस कंस का करने को हरि ने नर तनु है अपनाया ॥
आठवाँ गर्भ है तेजोमय देवकी-उदर में पृथ्वी पर ।
भगवान भक्तवत्सल उससे जनमेंगे बालरूप सुन्दर ॥
सब देव चले दर्शन करने वसुदेव देवकी के उस दम ।
आकाश-मार्ग में सुर-विमान बिजली से चमक रहे उत्तम ॥
बारहो सूर्य्य आठो वसुगण ग्यारहो रुद्र चंद्रमा सहित ।
तेंतीस कोटि देवता सभी मथुरा में आये आनन्दित ॥
उन लोगों ने आकर देखा अचरज से मथुरा के भीतर ।
कोठरी अँधेरी कारा की बन रही अहो लक्ष्मी का घर ॥

आनन्द वहाँ पर छाया था, इक तेज अलौकिक छिटका था।
प्रभु के पधारने के कारण दुर्दशा दुःख सब सटका था॥
तब देख सुअवसर सुर सारे पृथ्वी का पाप हटाने को।
बलवान महान असुर दल का घनघोर घमंड घटाने को॥
विध्वंस कंस का करने को पृथ्वी तल पर आने वाले।
प्रार्थना लगे करने प्रभु की यों गर्भ स्तुति गानेवाले॥

प्रणतपाल प्रणपाल जय नन्दलाल गोपाल।
जनरंजन जगदीश जय भंजन मायाजाल॥
करो प्रकृति को प्रेरणा प्रेरक पुरुष पुराण।
मायामय संसार के निश्चय तुम हो प्राण॥

अवतार तुम्हारे भार असुर भूभार उतार दिया करते।
गो-द्विज-देवों का दुःख देख पृथ्वी पर जन्म लिया करते॥
अभिमानी असुर अनर्थ करे, असमर्थ अधीन प्रजा रोती।
कर हाय हाय असहाय अहो जनता सुख-नींद नहीं सोती॥
हाथों को मलती, मन ही मन जलती, पर एक नहीं चलती।
दूसरी उसी दम आती है आफत जो एक नहीं टलती॥
बस ईश्वर, ऐसे अवसर पर आप ही पुकारे जाते हैं।
दुखियों दीनों की सुध लेने अविलम्ब आप भी आते हैं॥
जो भागवान भगवान, तुम्हें भूले से भी भज लेता है।
वह यम, यमपुर, यमदूतों को ललकार चुनौती देता है॥
नटनागर नरवर मुरलीधर छिंगुनी के नख पर गिरि धारे।

देवकी-दुलारे वासुदेव देवादिदेव मोहन प्यारे ॥
लोचन ललचाये ललक रहे बाँकी झाँकी के दर्शन को ।
घनश्याम देह पर पीताम्बर मोहे लेता है जन-मन को ॥

नमो विष्णु वैकुंठ गो-लोक-वासी,
महा योगमाया बनी देव दासी ।
अजन्मा अकर्मा परब्रह्म स्वामी,
तुम्हीं को भजे भक्त कल्याण कामी ।

अब प्रभु बेगि लेहु अवतारा,
त्राहि-त्राहि सब जगत पुकारा ।
गर्भस्तुति करि सीस नवाई,
स्वर्ग सिधारे सुर हरषाई ।
इत सुसमय सोई अब आया,
शांति सहित सुख छिति पर छाया ।
भादों वदी अष्टमी आई,
बुध के वार रोहिणी पाई ।
आधी रात अँधेरी घेरी,
करत निशाचर निर्भय फेरी ॥

ऐसे ही सुन्दर अवसर में संसार-भार के हरने को ।
गोधन लेकर गोवर्धन पर वृन्दावन बीच विचरने को ॥
व्रज की गोकुल की गलियों को पदरज से पावन करनेको ।
अवतार लिया जगदीश्वर ने असुरों के लिए अखरने को ॥

दुन्दुभी बजाने देव लगे बरसाने फूल सुगंध लगे।
तीनों लोकों में सुर किन्नर नर नाग सभी के भाग्य जगे॥
वसुदेव देवकी ने देखा अद्भुत स्वरूप बालक आगे।
तेजोमय जिसका मुखमंडल, दर्शन ही से मन अनुरागे॥
था श्याम वर्ण शोभित शरीर उस पर पीताम्बर वनमाला।
कानों में कुंडल चमक रहे मणिभूपण करते उजियाला॥
काली घुँघराली अलकों ने मन पर प्रभाव अपना डाला।
लोचन विशाल कर दें निहाल भक्तों के मन को मतवाला॥
आजानुबाहु की चार भुजा दो शंख चक्र करतीं धारण।
दो में शोभित थे गदा पद्म यों प्रकट हुए श्रीनारायण॥
यह रूप देखते ही देवी देवकी डरीं खल भाई से।
बोलीं हाथों को जोड़ तुरत हरि पुत्ररूप सुखदाई से॥
हे नाथ, सनाथ किया तुमने जो दर्शन अपने आज दिये।
हम दीन दुखी अपनाये यों, सब पाप हमारे दूर किये॥
मुझको डर लेकिन लगता है, पावे न देख खल कंस कहीं।
मालूम हुआ जो उसे कहीं तो फिर कल्याण कदापि नहीं॥
उस पापी ने मेरे मारे सुत सात अभी तक, अब की फिर।
सुन लेगा दौड़ा आवेगा लेने को अष्टम सुत का सिर॥
इसलिए आप यह रूप छोड़ साधारण बालक बन जाओ।
हम सब की जान बचाने को बचपन तक ब्रज में हो आओ॥
सुनकर माता के वचन भयविह्वल भगवान।

हँस कर बोले—कंस का मेटूँगा मैं मान ।।
मुझे न भूलो इसलिए दिखलाया यह रूप ।
अब फिर देखोगे मुझे नर-बालक अनुरूप ।।
फिर बोले वसुदेव से—सुनो तात मन लाय ।
दुष्ट कंस जाने नहीं, इसका उचित उपाय ।।
ले चलो मुझे तुम नन्द गोप के गोकुल में पहुँचा आओ ।
खुल जावेंगी खुद-हथकड़ियाँ बन्धन से मुक्ति अभी पाओ ।।
मेरे ही साथ यशोदा के कन्या भी है उत्पन्न हुई ।
अवतार शक्ति का देवी वह प्रत्येक प्रकार प्रसन्न हुई ।।
लौटते समय बालिका वही तुम मथुरा को लेते आना ।
मालूम नहीं कर पावेगा कोई कितना भी हो स्याना ।।
कहकर यों बालक साधारण बन गये त्रिलोकीनाथ वहाँ ।
इस तरफ योगमायाजी की माया थी हुई विचित्र यहाँ ।।
रखवाले हो मतवाले से बेसुध खर्राटे भरते थे ।
बेखबर नगर के नर-नारी मुर्दों की सरवर करते थे ।।
वसुदेव बाल-रूपी हरि को ले चले वहाँ से बाहर को ।
पट आप खुले चटपट, कैसे हो सके रुकावट ईश्वर को ।।
अधरात अँधेरी घेरी थी घनघोर गगन में छाये थे ।
फट-फट कर पानी बरस रहा नदी-नाले चढ़ आये थे ।।
छाती तक पानी बहता था, पग-पग पर मारग मुश्किल था ।
गोकुल की गलियों तक जाना सैकड़ों कोस की मंजिल था ।।

पर उनपर जो परमेश्वर की थी कृपा-दृष्टि उस समय पड़ी ।
सारी कठिनाई दूर किये सामने सफलता स्वयं खड़ी ॥
चल रहे साथ थे शेषनाग सिर पर सारे फन फैलाये ।
छतरी-सी सिर पर लगी हुई भींगने न रंचक भी पाये ॥
चलते-चलते तट पर पहुँचे, आगे यमुना हहराती थी ।
वह दृश्य बड़ा था विकट निकट तट देख दहलती छाती थी ॥
पानी अथाह था गरज रहा, जोरों से धारा बहती थी ।
काटती कगारे आरे-सी पागल -बन जाना चहती थी ॥
वसुदेव बड़े असमंजस में थे पड़े पार कैसे जावें ।
किस तरह अहो अपने सुत के प्राणों की रक्षा कर पावें ॥

सोच विचार बहुत किया सूझा नहीं उपाय ।
पहुँच सकूँ अब पार मैं किस प्रकार असहाय ॥
नहीं पैर जाना सहज बालक ले उस पार ।
हे हरि, नैया क्या यहीं डूबेगी मझँधार ॥

आगा-पीछा करते-करते आखिर को जी को कड़ा किया ।
दोनों हाथों पर ऊपर को गोपाल लाल को उठा लिया ॥
जल के भीतर घुस पड़े बढ़े मँझधार मँझाते पहुँच गये ।
छाती तक ही पानी पाया, तब तो विस्मय में डूब गये ॥
लीला थी यह सब बस प्रभु की यमुना जब चरणों पर आई ।
तब हरि के 'हूँ' कहने ही से धीरे से धार उतर आई ॥
लेकिन इसमें कुछ और बात कवि ने सोची अपने मन में ।

यमुना के पति श्रीकृष्णचन्द्र होंगे आगे चलकर वन में ॥
बस इसीलिए कालिन्दी थी श्रीकृष्ण-चरण छूने धाई ।
लेकिन वसुदेव ससुर को जब देखा तब सकुची शर्माई ॥
अच्छा तो आगे हाल सुनो, वसुदेव पुत्र को लिये हुए ।
उस पार कुशल से पहुँच गये जो अभी कंस के थे बँधुए ॥
गोकुल की राह पकड़ ली फिर पागल से लपके जाते थे ।
जग पड़े नहीं हों कहीं वहाँ रखवाले, यह घबराते थे ॥
ब्रज में भी छाया सन्नाटा, नर-नारी सोये सब पाये ।
पशु पक्षी तक को होश न था वसुदेव जिस समय ब्रज आये ॥
वह सीधे पहुँचे नन्दभवन, पहले ही का पहचाना था ।
ब्रज का तो कोना-कोना सब उनका छाना था, जाना था ॥
सो रही यशोदा यशस्विनी, शय्या पर कन्या लेटी थी ।
बालक को उसकी जगह मिली, वसुदेव-गोद में बेटी थी ॥
उलटे पैरों चल खड़े हुए, थे थके हुए, पर रुके नहीं ।
था काम अधूरा किया पड़ा, पूरा अब तक कर चुके नहीं ॥
यमुना को फिर उसी तरह से पार किया पल ही भर में ।
आ पहुँचे बाधा विघ्न बिना कारागृह के भीतर घर में ॥
फाटक के दोनों पट फिर भी झटपट वैसे ही बंद हुए ।
हथकड़ी और बेड़ी खुद ही पड़ गई हाथ से जरा छुए ॥
तब कहीं मिटा खटका जी का, चिन्ता भी चित की दूर हुई ।
बालक के प्राणों की रक्षा अब तो जरूर भरपूर हुई ॥

इतने में कन्या चिरझाई,
रोने लगी पुकार मचाई।
दूत कंस के जो रखवाले,
उठ कर बैठे होश सँभाले।
बालक का रोना सुन पाया,
मुखिया द्वारपाल उठ धाया।
राजमहल में जा पहुँचा वह,
कहला भेजा कंस निकट यह।
महाराज, कारागृह भीतर,
बालक के रो उठने का स्वर।
सुन पड़ता है, अभी पधारो,
शत्रु-रूप शिशु निजकर मारो।
सुन पाते ही यह खबर घबराया सा कंस।
दौड़ पड़ा उठ सेज से करने रिपु-विध्वंस॥
पहुँचा कारागार में चटपट फाटक खोल।
पागल सा कहने लगा—बोल देवकी, बोल!
मेरा काल कहाँ गया, तेरा बालक ब्याल।
मारूँगा उसको अभी, रहा हृदय में साल॥
रो-रो कर तब देवकी कन्या को लिपटाय।
दीन वचन कहने लगी अबला अति असहाय॥
भैया, मेरे प्यारे भैया, अब दया करो इस दुखिया पर।

क्यों वृथा करो बालक-हत्या बलवान वीर क्षत्रिय होकर ॥
दुधमुँहे अबोध सभी बच्चे तुमने अब तक मारे मेरे ।
तुम बुद्धिमान विद्वान बड़े, तुमको यह कैसा भ्रम घेरे ॥
सातो सुत मेरे मार चुके, यह कन्या अब तो रहने दो ।
ठहरो, मुझको जी भर जी की बातें तो भैय्या कहने दो ॥
खल कंस झिड़क कर झपट पड़ा, ली छीन गोद से वह लड़की ।
पर पटका पत्थर पर जैसे उसके कर से तड़पड़ तड़की ॥
आकाश बीच पहुँची कन्या, देवी स्वरूप फिर दिखलाया ।
दशभुजा भगवती शक्तिमयी कालिका बालिका हरिमाया ॥
हाथों में लिये शरासन शर खप्पर खर खड्ग त्रिशूल गदा ।
सब असुरों का संहार करे अनुकूल सुरों पर रहे सदा ॥
हँसकर देवी ने कहा—अरे तू कंस, किसलिए पाप करे ।
अपने मरने की तैयारी हत्याएँ करके आप करे ॥
इस मृत्युलोक में जो आया उससे मुँह मौत न मोड़ेगी ।
अपकर्म अधर्म किये तुझको वह मृत्यु कदापि न छोड़ेगी ॥
मुझ कन्या अबला को मारे अब लाभ न तुझको कुछ होगा ।
सिर लाख पटकने से तेरे, सच जान, न मुझको कुछ होगा ॥
तेरे प्राणों का काल कहीं और ही जन्म ले चुका अरे ।
इसलिए व्यर्थ ऐसा अनर्थ होकर समर्थ किसलिए करे ॥

सुनकर देवी के वचन कंस गया घबराय ।
भरी सभा में सब वही मंत्री लिये बुलाय ॥

जब सब बैठे आय के तब यों बोला कंस ।
आई बड़ी विपत्ति है करने को विध्वंस ॥
बुद्धिमान तुम हो बड़े, कोई सोच उपाय ।
बतलाओ मुझको अभी यह संकट टल जाय ॥

सुन वचन कंस के वृद्ध एक मंत्री बोला यों विशद वचन ।
मेरी तो सम्मति यही प्रभू, मत डरें आप, बस रहें मगन ॥
फैला प्रताप है त्रिभुवन में, शिव, विष्णु, इन्द्र तक डरते हैं ।
बलवान बड़े नामी-नामी स्वामी प्रणाम झुक करते हैं ॥
फिर कल के पैदा हुए एक बच्चे से ऐसा भय क्या है ।
क्या कर सकता दुधमुहा भला, यमराज सदृश दुर्जय क्या है ॥
था सिर पर भय का भूत चढ़ा यह बात कंस को जँची नहीं ।
दुर्बलता मन में जब आती तब होता है संतोष नहीं ॥

ऊपर से निर्भय बना भीतर शंकित कंस ।
बोला—अब कर्तव्य है बस बालक-विध्वंस ॥
नीतिशास्त्र अनुसार निज शत्रु, देह का रोग ।
बढ़ने इन्हें न दीजिए कहते पंडित लोग ॥
मेरी आज्ञा है यही मेरे दल के दूत ।
दया-हीन ममता-रहित तन मन में मजबूत ॥

चारों ओर घूमते फिरते टोह लगाते हुए अभी ।
मारें बच्चे ढूँढ-ढूँढ कर पावें जितने जहाँ सभी ॥
सुन पूतना, कहूँ मैं तुझसे, तुझसे आशा मुझे बड़ी ।

गाँव-गाँव शिशुओं की हत्या कर जाकर तू खड़ी खड़ी ॥
सुन ये वचन कंस पापी के दूत पूतना आदि अधम ।
बच्चों की हत्या करने को चले मनचले जैसे यम ॥
इधर हुआ यह हाल उधर व्रज का भी हाल सुनाते हैं ।
नन्द यशोदा गोप गोपिका व्रज-रज के गुण गाते हैं ॥
धन्य नन्द हैं, धन्य यशोदा, धन्य सभी व्रजवासी हैं ।
बालक बने जिन्हें सुख देने आये हरि अविनाशी हैं ।

नन्द यशोदा जब उठे उस दिन प्रातःकाल ।
विस्मित आनन्दित हुए देख सलोना लाल ॥
पाया ज्यों कंगाल ने कहीं अचानक लाल ।
नन्द यशोदा का हुआ हाल वही लख लाल ॥
गद्गद हृदय मगन मन सुख से,
निकले वचन न क्षण भर मुख से ।
हृदय लगाकर शिशु नँदरानी,
बोल प्रथम मनोहर बानी ।
अहो महर पूजी मन आशा,
इतने दिन पर मिटी निराशा ॥

देव-पिता-द्विज-पूजन का फल मिला मुझे यह बालक है ।
यह मेरी आँखों का तारा अभिलाषा-प्रतिपालक है ॥
सुनकर वचन नन्द ने भी फिर प्रकट बड़ा आनन्द किया ।
समाचार यह सारे व्रज को क्षण ही भर में सुना दिया ॥

सुनते ही सब गोप गोपियाँ हुए महा आनन्द-मगन ।
आपस में इस तरह लगे फिर कहने प्रीति-प्रसन्न वचन ॥
अहो भाग्य हैं हम सबके जो आज नन्द के लाल हुआ ।
जिससे सारा व्रज पल भर में यों खुशहाल निहाल हुआ ॥
सुत होने की आस न थी थे बूढ़े नंद नंदरानी ।
किये अनेकों दान-पुण्य सब और मानता भी मानी ॥
आज विधाता ने हम सब पर बड़ी कृपा की, चलो चलो ।
नन्द महर घर लिये बधाई रंग दही में डाल मलो ॥
गाओ और बजाओ नाचो उत्सव खूब मनाओ जी ।
भाँति - भाँति की भेंटें लेकर नन्दभवन को धाओ जी ॥

ऐसे सब आनन्द से कहते गोपी गोप ।
पहने गहने वस्त्र सब मन में धारे चोप ॥
चले भले हर ओर से नन्द महर के गेह ।
दधि हलदी से रँग रहे देह, दिखाते नेह ॥
पगड़ी बाँधे सीस पर विविध वस्त्र सज अंग ।
बालक बूढ़े ज्वान सब मन में भरे उमंग ॥
ढोल बजाते नाचते उठा उठा कर हाथ ।
खेल दिखाते लाठियों के उमंग के साथ ॥
जाते थे सब गोपियों नंद राय के द्वार ।
पाते थे उपहार बहु अति आदर-सत्कार ॥

गोपियाँ सजीली गरवीली सब अंग सुघर अलबेली थीं ।

जोबन मदमाती आती थीं मन भाती नवल नवेली थीं ।।
संगठित सुहाए अंग बने छवि छाई शोभा न्यारी थीं ।
दृग कमल अमल मानो फूले, चितवन वर बाँकी प्यारी थीं ।।
हँसती जाती इठलाती थी आनन्द अपार दरसता था ।
सच तो यह है गोकुल भर में भरपूर अनन्द बरसता था ।।
सिंगार किये भूषण पहने मणि रत्न जड़ाऊ चमक रहे ।
हिय हार हमेल गले हँसली हँसने में दूने दमक रहे ।।
चोटी लहराती एँड़ी तक छहराती छवि की छुटी छटा ।
घाँघरा घनेरा घूम रहा सिर झूम रहा झीना दुपटा ।।
मेवा पकवान मिठाई की हाथों में थाली सजी लिये ।
हलदी में दही मिला करके मंगलमय गहरा रंग किये ।।
जो मिलता था मग में उस पर वह रंग छिड़कती जाती थीं ।
गोरस से चारों ओर अहो दधिकाँदों अधिक मचाती थीं ।।

नन्दभवन के द्वार पर गोप बजाकर ढोल ।
गाते आते हर्ष से बोल रहे प्रिय बोल ।।
मुदित बधाई रहे और ले रहे द्रव्य ।
और असीसें दे रहे भाव भावना भव्य ।।
आँगन में वह भीड़ थी जिसका ओर न छोर ।
चारों ओर गूँजा हुआ बेशुमार था शोर ।।
परजा भी राजी किये दिये रत्न धन दान ।
मधुर वचन सत्कार से हरषे सभी समान ।।

पाधा और पुरोहित आये,
पूजन पाठ सभी करवाये।
हुआ हवन स्वस्त्ययन यथाविधि,
ब्राह्मण हुए प्रसन्न कृपानिधि।
किये बहुत गोदान नंद ने,
अन्नदान भी अपने मन से।
की प्रदक्षिणा भक्ति भाव से,
दी दक्षिणा सुचित्त चाव से।
सब ब्राह्मण होकर तब प्रसन्न आशीस इस तरह देन लगे।
चिर जीवे लाल तुम्हारा यह, तुम दोनों के अब भाग जगे॥
हो बालक बड़ा प्रतापी यह, सब शत्रु तुम्हारे जला करें।
हम सभी हृदय से कहते हैं, भगवान तुम्हारा भला करें॥
करके प्रणाम गद्गद होकर सानन्द नंद अभिनन्दन कर।
विप्रों के हुए कृतज्ञ बड़े, समझे प्रसन्न हैं परमेश्वर॥
नट, नटी, सूत, बन्दीजन या करतब वाले जो लोग गुनी।
सब दूर-दूर से दौड़ पड़े जब जैसे जिसने खबर सुनी॥
गोपियाँ भवन में आ आकर गोपाल लाल के दरस करें।
रोहिणी यशोदा की गोदी नारियल दूब को डाल भरें॥
न्योछावर गहने रत्न-जड़े कपड़े अनमोल लुटाती थीं।
मन मोद भरे ले गोप लला सब गाती और बजाती थीं॥
आनन्दमगन माता सबका कर जोड़ समादर करती थीं।

है पुण्य प्रताप तुम्हारा ही यो कहकर पैरों पड़ती थीं ॥
ब्रज में ऐसे हो रहा महामोद आनन्द ।
उधर गोप पहुँचे जहाँ बैठे थे श्रीनन्द ॥
बोले सबको देखकर नन्द राय यह बात ।
नृपति कंस के पास 'कर' देने चलो प्रभात ॥
वह राजा हैं हम लोगों के, इस अवसर पर जाना चहिए ।
कर भी उनको पहुँचाना है दो काम बना आना चहिए ॥
वसुदेव देवकी से भी तो हमको मिलने ही जाना है ।
वे मित्र हमारे प्यारे हैं, यह सुख संवाद सुनाना है ॥
सब गोप प्रसन्न तयार हुए तैयारी करने भवन चले ।
जोते छकड़े सब बड़े-बड़े उपहार लिये सब भाँति भले ॥
घी, दूध, दही, मक्खन, मेवा राजा की खातिर लाद लिया ।
रुपये, मोहरें कर देने को सबने लेकर प्रस्थान किया ॥
इस तरह गोप सब ब्रजवासी मथुरा नगरी की ओर गये ।
वे क्या जानें, क्या होने हैं ब्रज बीच यहाँ उत्पात नये ॥
ब्रज से चलते ही हुए असगुन उन्हें अपार ।
बाईं आँख भुजा पलक फड़के बारम्बार ॥
देख नन्द बोले वचन, कुशल करे भगवान ।
असगुन होते हैं बुरे, ये अरिष्ट की खान ॥
यों कहते कहते ही सब वे मथुरा नगरी में पहुँच गये ।
राजा के अपने दर्शन कर सब गोप प्रसन्न अपार भये ॥

की हाथ जोड़ विनती सबने ब्रज के सब हाल सुना करके।
उपहार दिये कर चुका दिया फिर बाएँ अंग सभी फरके।
राजा ने भी सबका हँसकर सत्कार किया, पूछे घर के—
सब हाल हवाल दया करके, उपहार और कर ले करके॥
फिर माँग विदा, वसुदेव पास तब नन्द गये संदेह-भरे।
यद्यपि ऊपर कुछ प्रकट न था पर मन में थे बहुबहुत डरे॥
डरने की थी ही बात, वहाँ ब्रज में कोई भी मर्द न था।
बालक बूढ़े या नारी बस असहाय इन्हीं का बड़ा जथा॥
फिर बालक आँखों का तारा वह प्यारा प्राणों से भी था।
उस पर आई आपत्ति न हो, खटका यह भी तो भारी था॥

मिलते ही वसुदेव ने गले लगाये नन्द।
दोनों के बहने लगे आँसू सह आनन्द॥
जाना था वसुदेव का पुत्र-जन्म का हाल।
फिर भी सुनकर नंद से दूने हुए निहाल॥
सच्चे अपने मित्र को देख सुखी जो मित्र।
होता आनन्दित अधिक तो कुछ नहीं विचित्र॥

वसुदेव नंद से बोले तब—मथुरा को तुमने देख लिया।
राजा के दर्शन भी करके उनका सारा कर चुका दिया॥
अब सब मिलकर ब्रज को जाओ मेरा अनुमान मित्र यह है।
ब्रज में जल्दी होने वाला कोई उत्पात भयावह है॥
थे नन्द आपही घबराये चल दिये नगर से बाहर को।

सूने गोकुल की ओर चले तत्काल मनाते ईश्वर को ॥
मन में कहते यों नन्दराय वसुदेव बड़े ही ज्ञानी हैं।
झूठी होती है बात नहीं इनकी, यह पहुँचे प्रानी हैं॥
आगे की अब सब कथा सुनो मित्र मन लाय।
बालघातिनी पूतना पहुँची ब्रज में आय॥
रूप बनाये अति सुघर सुन्दर युवती वेष।
एँडी तक छिटके पड़े लम्बे काले केश॥
आँखें विशाल भ्रकुटी कमान थे दाँत मोतियों की लड़ियाँ।
उन गोल गुलाबी गालों पर थी झलक पसीनों की पड़ियाँ॥
अलबेली चाल नवेली की गहने पहने सब सोह रहे।
प्रिय हाव भाव दर्शक नर या नारी के मन को मोह रहे॥
मखमली म्यान में छिपी हुई थी तेज कटारी वह नारी।
स्तन दोनों में विष लेप किये वह विचर रही थी हत्यारी॥
सैकड़ों हजारों बच्चों को उसने मारा था पल भर में।
भेजी थी कंस नराधम की डायनी घूमती घर घर में॥
जिस जगह सुना कोई बालक उत्पन्न हुआ है, वहीं गई।
जिस तरह बना उसको मारा, चट सोच निकाली घात नई॥
घूमती-घूमती ब्रज में भी आप ही प्राण देने आई।
उस कालरूप परमेश्वर को मारेगा क्या कोई भाई॥
ब्रज में उत्सव हो रहा, नाचकूद स्वच्छंद।
ढोल बजाकर गोपियाँ गाती थीं सानन्द॥

इतने में आई वहाँ वही पूतना आप।
चकित हुईं सब गोपियाँ देख स्वरूप, प्रताप ॥
सीधी वह घुसती गई नन्दलाल के पास।
खड़े देखते ही रहे सारे दासी दास ॥
खड़ी यशोदा रोहिणी विस्मित, विदित न बात।
आईं उसके रोब में कह न सकीं कुछ बात ॥

लक्ष्मी है अथवा गौरी है या कोई रानी—महरानी।
यों सोच रहीं माता मन में, मुख से न निकाल सकीं बानी ॥
राक्षसी पहुँच जब गई पास तो नैन नाथ ने मूँद लिये।
माया की छाया ठहर कहाँ सकती उनके प्रत्यक्ष किये ॥
पूतना प्यार दिखलाती सी चट बाल-गोपाल उठा करके।
पयपान कराने लगी स्वयं छाती से उन्हें लगा करके ॥
प्रभु ने पय पान किया कसकर हँसकर प्राणों को भी खींचा।
दुष्टा ने मानो मौत-वृक्ष अपने ही जीवन से सींचा ॥
जब प्राण लगे खिंचने तब तो वह छोड़-छोड़ कह-कह करके।
फिर लगी जोर से चिल्लाने पल-पल भर में रह-रह करके ॥
आँखों की पुतली निकल पड़ी, पर प्रभु से उसकी कुछ न चली।
तब हाथ-पैर फैला करके यमपुर की उसने गही गली ॥
पर भाग्य न कुछ कम थे उसके जो माता की पदवी पाई।
बैकुंठ गई तत्काल, अहो प्रभु ने निज महिमा दिखलाई ॥

प्राण निकलने जब लगे, तब वह देह अनूप—

छोड़ राक्षसी बन गई कठिन कराल स्वरूप ॥
अब आगे जो कुछ हुआ सो सब कथा रसाल ।
कल आकर सुनिये यहाँ होकर मित्र निहाल ॥
कंसासुर के सब असुर भेजे हुए विचित्र ।
जैसे मारे कृष्ण ने वर्णन उसका मित्र ॥

इति श्रीकृष्ण-जन्म समाप्त

चतुर्थ भाग

पूत पूतना मारकर, करने वाले श्याम।
बसें हमारे हृदय में, निस दिन आठो जाम॥
अब सुनिये प्रभु के मधुर, बाल-चरित्र अनूप।
धरिये मन में हर घड़ी, हरिका बाल-स्वरूप॥
शकटासुर को जिस तरह, अनायास ही मार।
तृणावर्त का वध किया, उतरा पृथ्वी-भार॥
सुनो अमृत के तुल्य वह, सब सज्जन मन लाय।
अब सब कथा पुनीत, अति कहते हैं हर्षाय॥
मरी पूतना विकट रूप निज अंत समय दिखला करके।
गई स्वर्ग को महापापिनी हरि को दूध पिला करके॥
गोपी गोप देखकर उसका रूप बड़ा विकराल डरे।
किन्तु कृष्ण को जीता पाकर सबके मन आनंद भरे॥
गिरते समय कई योजन तक ऐसा शब्द कठोर हुआ।
दहल उठे प्राणी सब मन में, सन्नाटा सब ओर हुआ॥
समझे लोग लुगाई मन में कहीं वज्र का पात हुआ।
अथवा पृथ्वी कहीं फट गई या आकाश-निपात हुआ॥
या भूकंप भयंकर से गिरि घहरा कर गिर पड़ा कहीं।

या समुद्र यह गरज-गरज कर चिन्तित तो कर रहा नहीं ॥
इसी तरह अनुमान कर रहे विह्वल थे सब नर नारी ।
गोकुल में मच गई हर तरफ हलचल एक बड़ी भारी ॥
इधर नंद की रानी का था हाल बहुत ही बुरा हुआ ।
आनंद राग जो बजता था, सहसा वह बेसुरा हुआ ॥
दौड़धूप के करने से सब कपड़े अस्तव्यस्त हुए ।
बिखरी बेनी, आभूषण भी अंगों से अलग समस्त हुए ॥
हाय हाय करती सिर धुनती और पीटती छाती थीं ।
मात यशोदा और रोहिणी रोती थीं, दुख पाती थीं ॥
ज्यों बछड़ा बिछड़ा हो जिसका हो विकल गाय वह चिल्लाती ।
उसी तरह ये दोनों नारी भीतर से बाहर जाती ॥

उधर नन्द भी लौट कर आये गोकुल पास ।
कहने से वसुदेव के, मन में बड़े उदास ॥
देख पड़ी बहु दूर से, पड़ी पूतना—देह ।
दारुण और कराल अति, यथा प्रलय का मेह ॥
काल कबैला क्वैलिया, काली देह समान ।
काली थी वह राक्षसी, रूखी विकट महान ॥
जैसे पर्वत हो पड़ा, बड़ा गिर पड़ा आप ।
वैसे पापिन पूतना, पड़ी हुई चुपचाप ॥

आँखें थी अथवा खुले हुए दो अंधे कूप कहीं पर हो ।
भौहें थी जैसे मेड़ कुंओं पर ऊँची उठी सरासर हो ॥

थे काले काले बाल बड़े ज्यों पेड़ ताड़ के देख पड़े।
पाटा पारी जिस तरह घटा दो टुकड़े हो आकाश अड़े॥
नासिका छिद्र कंदरा पहाड़ी के भीतर गहरी जानो।
मस्तक को भारी चबूतरा लंबा चौड़ा मन में मानो॥
थे गाल गोल काजल काले ऊँचे टीले के तुल्य बने।
फावड़े सदृश लंबे निकले थे दाँत भयानक घोर घने॥
होठों का वर्णन कौन करे, दीवार उठी थी ऊँची सी।
निकला नौका का एक सिरा इस तरह नुकीली ठोढ़ी थी
गरदन कोसों की लंबी थी ज्यों बाँधा पुल कारीगर ने।
हाथों की लंबी दौड़ भला कोई कवि कैसे फिर बरने॥
वे हाथ न थे, थे बाँध बँधे, उँगलियाँ पेड़ सी निकल रहीं।
सूखा तालाब उदर देखा, जिसकी उपमा थी और नहीं॥
तोंदी थी उसके बीच कूप, पैरों को खंभे कह सकते।
वह रूप देखकर डरे बिना दुनिया के वीर न रह सकते॥

देख पूतना राक्षसी, का यह विकट स्वरूप।
भागे गोप, डरे बहुत, नन्दराय ब्रजभूप॥
देकर ध्यान लखा जभी बच्चे को भी पास।
तब तो घबराये सभी, मन में हुए निरास॥

पुत्र-प्रेम में प्राण गँवाना कठिन नहीं कुछ होता है।
सुत की रक्षा करने के अवसर को नर कब खोता है॥
देखते-देखते दौड़ पड़े तब नन्दराय साहस करके।

बस झपट उठा ही लिया पुत्र गोदी में तनिक नहीं डरके।
राक्षसी मरी पाई, सुत को जीवित सकुशल क्रीड़ा करते--
जब देखा तब तो नन्दराय बोले यों हर्ष हृदय भरते—
है धन्यवाद परमेश्वर को, यह मरी पापिनी आप अहो!
दुष्टों को देते दंड प्रभू, विश्वास सदा यह किय रहो॥
बालक अबोध के प्राणों के रक्षक भी नारायण ही थे।
दूसरा कौन आता-जाता मर जाने के लक्षण ही थे॥
भगवान भक्त हम तेरे हैं, हर घड़ी हमारी रक्षा कर।
जो दुष्ट बुराई करने को आवें जावें वे यों ही मर॥
इतना कहकर फिर नन्दराय गोपों से बोले—अब आओ।
टुकड़े-टुकड़े यह देह करो, यह चिता बड़ी सी लगवाओ॥
सारे शरीर को ले चलना सब तरह असंभव ही जानो।
इसलिए जलाओ ऐसे ही इस पापिन को, कहना मानो॥

इतने में ब्रज के सभी बूढ़े बाले ग्वाल।
और गोपियाँ भी सभी आ पहुँचीं तत्काल॥
बिलख-बिलख कर रो रहीं करती हाहाकार।
गिरती पड़ती दौड़ती जसुमति पुत्र निहार॥
आ पहुँची, श्रीनन्द के निकट पुत्र को पाय।
दोनों हाथों से उसे छाती लिया लगाय॥
लेकर सुत को उत गये श्रीयुत नंद प्रसन्न।
खूब लुटाया रत्न, धन, कपड़े, भोजन, अन्न॥

इधर ज्वान जो गोप थे वे कर उठा कुठार।
काठ काट लाने लगे जल्दी बारम्बार॥
चिता लगाई फिर बड़ी पर्वत के आकार।
देह जलाई राक्षसी की ब्रज बाहर डार॥

उठा धुआँ तब अगुर धूप की थी सुगंध उसमें भारी।
गई पूतना विष्णुलोक को पापिन बालक-हत्यारी॥
हरि को दूध पिलाने का यह फल तब उसने पाया।
माता की गति सुलभ हो गई को जाने प्रभु की माया॥
बालक रूप कृष्ण को लेकर घर में आये ब्रजवासी।
रक्षाकवच गले में बाँधे उनके जो हैं अविनाशी॥
पूजा पाठ कराया श्रद्धासहित होम भी करवाया।
भोजन का आयोजन करके विप्रों को घर बुलवाया॥
गऊदान सैकड़ों दे दिये, याचक जन जितने आये।
विविध वस्त्र, मनि, मानिक, मोती मनमाने सबने पाये॥
गोकुल की हर एक गली में भलीभाँति आनंद मचा।
उत्सव नृत्य गीत बाजे से कोई भी घर नहीं बचा॥
जब आनन्दकन्द ही आये नन्दराय के नन्दन हो।
तब फिर क्यों आनंद अतुल का वहाँ न फिर अभिनंदन हो॥
सभी देवता और देवियाँ प्रभु का दर्शन करने को।
बालक बने भक्तवत्सल का ध्यान धरा पर धरने को॥
वेष बदलकर पैदल चलकर यात्रा करके बहुत बड़ी।

गोकुल की गलियों में फेरी लगे लगाने घड़ी-घड़ी ॥

इन्द्रादिक सब देवता मन में हुए प्रसन्न।
समझा सबने कंस का ध्वंस हुआ सम्पन्न ॥
आनंदी नंदीसने जाना जब धर ध्यान।
पृथ्वी पर नर रूप धर प्रकटे हैं भगवान ॥
तब वह गद्गद हो गये, बढ़ा भक्ति का भाव।
ग्वाल बाल गोपाल के निकट चले कर चाव ॥

जटाजूट बाँधे हुए चन्दकला छवि भाल।
नाग-जनेऊ भी पड़ा और बाघ की छाल ॥

था श्वेतवर्ण सुन्दर शरीर उज्ज्वल भभूत भी शोभित थी।
कानों में कुंडल पड़े हुए, मुख की मुद्रा समयोचित थी ॥
नागों के कंगन हाथ पहिन रुद्राक्ष-रचित माला पहने।
अंगों में भूषण के बदले विषधर सर्पों के ये गहने ॥
सिंगी डमरू खप्पर कर ले कंधे पर झोली डाले थे।
पीने से भंग धतूरे के मदभरे नयन मतवाले थे ॥
इस तरह जगाते अलख चले शिव सिंगी नाद सुनाते थे।
ब्रज की गलियों में देख इन्हें बच्चे तालियाँ बजाते थे ॥
श्रीनंदराय के द्वार पहुँच शंकर ने अलख जगाई तब।
नंदी के साथ अनंदी लख लड़कों की सेना आई जब ॥
भोला ने सिंगी नाद किया भिक्षा को हाँक लगाई तब।
सब भाँति-भाँति के भोजन ले नँदरानी दौड़ी आई तब ॥

भोला ने इच्छा प्रकट न की, सिर हिला दिया, नाहीं कर दी ।
जसुदा ने थाली भोजन की ले जाकर तब भीतर धर दी ।
फिर सुन्दर बहुमूल्य रेशमी वस्त्र किये अर्पण लाकर ।
किन्तु उन्हें भी महादेव ने लेने में की कोर-कसर ॥
फिर जसमति मोती लाई भरके थाल अतिथि के देने को ।
तब भी भोलानाथ हुए तैयार न उनके लेने को ॥

तब अचरज करके बड़ा, बोली जसुमति माय ।
कौन वस्तु चाहो अहो, कहो मुझे समझाय ॥
भोजन, कपड़े, रत्न, धन, यही चाह की चीज ।
महा महा मुनि देख कर जाते इन्हें पसीज ॥
किन्तु आप तो यह न कुछ करते हैं स्वीकार ।
अपने ही मुँह से कहो क्या तुमको दरकार ॥
तब बोले शंकर, सुनो माता, यह सब चीज ।
दुखदाई है अंत को, जाती छिन में छीज ॥
मैं भिक्षुक हूँ पेट भर लेता किसी प्रकार ।
इन चीजों की है नहीं मुझको कुछ दरकार ॥
मैं तो आत्मानन्द में रहता मगन हमेश ।
मुझे दिखा दो बालका अपना सुन्दर वेश ॥

परमहंस, परमेश्वर, बालक, तीनों मुझे बराबर हैं ।
तीनो को माया नहिं ब्यापे ये निर्विकार सुख के घर हैं ॥
निष्क्रिय निर्गुण निस्पृह निर्मल ये पाप पुण्य से परे रहें ।

पूर्णकाम निर्द्वंद्व निरे हो भव्य भाव से भरे रहें ॥
इसीलिए मैं तेरा बालक यहाँ देखने आया हूँ।
वह काया है निराकार की मैं भी उसकी छाया हूँ।
सुन शंकर के वचन जसोदा मन में बहुत उदास हुई।
डरने लगी भयानक भिक्षुक का हठ देख निरास हुई ॥
लगी सोचने मन में अपने, यह पागल क्या कहता है।
नजर न हो, डर जाय न लल्ला, यह क्यों देखा चहता है ॥
अन्तर्य्यामी समझ गये सब बात जसोदा के मन की।
बोले—सुनो नन्द की रानी, मुझे न समझो तुम सनकी ॥
इष्टदेव है पुत्र तुम्हारा, दुनिया उसकी दासी है।
उसको भय किसका हो सकता, वह अनादि अविनासी है ॥
लोक रदर्शन मुझे करा दो नयन सफल अपने कर लूँ।
जिसका भेद वेद नहि जाने उसे हृदय भीतर धर लूँ ॥

सुनकर शंकर के वचन गूढ़ जसोदा मात।
'नहीं' नहीं फिर कर सकीं, कढ़ी न मुँह से बात ॥
लौट गई फिर गेह में लिया कृष्ण को गोद।
किलकारी भरते हुए करते बाल-विनोद—
चले नाथ शंकर-निकट त्रिभुवन-सुन्दर रूप।
वह प्यारी छवि कौन कवि बरनन करे अनूप ॥

आँखों में अनखन लगा हुआ, नन्हे-नन्हे सब अंग भले।
आनंद झलकता आँखों में, अपवर्ग स्वर्ग जिन बीच पले ॥

वह रूप देखकर भोला के मन में आनन्द अपार हुआ।
निराकार परमेश्वर भी संसार बीच साकार हुआ ।।
जसुमति ने लाकर बालक को बाबा के पैरों पर डाला।
चटपट शंकर ने उठा लिया फिर जी भर कर देखा-भाला ।।
आसीस दिया लौकिक ढँग से, पुलकित हो आये अंग सभी।
बोले–जय हो, जय हो, जग में अपराजित जित हो नहीं कभी ।।
फिर सिंगी-नाद बजा करके जसुदा को बालक दे करके।
गौरीपति शंकर लौट चले कैलाश ओर मन मुद भरके ।।
हो गये धन्य सब ब्रजवासी, शंकर ने उसको दरस दिया।
थे बड़े पुण्य उन सबके जो दर्शन कर पातक नष्ट किया ।।
अब और एक लीला सुनिये एकाग्र चित्त होकर आगे।
शकटासुर को जैसे मारा हरि ने भक्तों के भय भागे ।।
मिली खबर जब दुष्ट कंस को मरी पूतना पापिन वह।
है आप मरी, डसती थी जो बच्चों को काली नागिन वह।

तब उसके मन में हुआ विस्मय अमित असीम।
मरी किस तरह राक्षसी, जिसका बल था भीम ।।
लगा सोचने इस तरह—सुनता हूँ ब्रज बीच।
छुद्र छोकरे ने उसे मारा पाय नगीच ।।
अहो प्रबल है कालगति, हुआ भाग्य का फेर।
जो ऐसी प्रबला हुई शिशु के हाथों ढेर ।।
कहीं यही तो है नहीं मेरा वैरी बाल।

जिसको देवों ने कभी बतलाया था काल ॥
कुछ भी हो, इसकी कुशल नहीं, मैं इसके जी का गाहक हूँ।
भेजूँगा और असुर अनुचर, मैं भी तो बड़ा भयानक हूँ ॥
बचने पावेगा शत्रु नहीं, हो कहीं वहीं पर मारूँगा।
मुझसे डरते इन्द्रादिक हैं, मैं बालक से क्या हारूँगा ॥
शकटासुर मेरा मित्र बड़ा, शुभचिंतक है, हितकारी है।
उसका मुझको आसरा बड़ा, बलवान वीर वह भारी है ॥
भेजता उसे हूँ अभी वहाँ, डालेगा कुचल उसे जाकर।
बच्चा बच कर उसके कर से जीता रह सकता क्या दम भर।
करके विचार इस तरह कड़ा शकटासुर को बुलवा भेजा।
सब काम सहेजा और कहा—मत सोचो मन में जा बेजा ॥
जाओ चट काम बना आओ फिर पुरस्कार पाओगे तुम।
मेरे अनुचर हो अभी, मगर आगे मंत्री हो जाओगे तुम ॥
शकटासुर ने तब कहा—सेवक हूँ मैं नाथ।
आज्ञा-पालन मैं अभी करूँ नवाकर माथ ॥
वह तो बच्चा है, अहो बड़े-बड़े बलवान।
मेरे आगे कुछ नहीं दिखा सके अभिमान ॥
मैंने मारे हैं बड़े वैरी वीर अनेक।
मिटा सका अब तक कभी एक न मेरी टेक ॥
छोड़ो चिन्ता चित्त की हे असुरों के नाथ।
मृत्यु बदी सच जानिए उसकी मेरे हाथ ॥

इस तरह अकड़ता हुआ वचन कहने के बाद घमंडी खल,
चल दिया नन्द के गोकुल को सोचता हुआ छलबल कौशल।।
था नन्द-भवन आनन्द भरा सब ओर भीड़ भी थी भारी।
घर के कामों में लगी हुई थीं बच्चों की भी महतारी।।
शकटासुर झटपट चला रख कर रूप कराल।
लाल-लाल लोचन किये कोपित मानो काल।।
दृढ़ निश्चय कर चित में निज जय का अज्ञान।
धूल उड़ाता चल पड़ा ज्यों कमान से बान।।
था समझ लिया मनमें उसने वैरी बालक को मारूँगा।
पल भर में होकर सफलकाम स्वामी के पास सिधारूँगा।।
ज्ञाना था उसने सहज बड़ा है काम श्याम का वध करना।
क्या जाने, उनके हाथों से होगा उलटे अपना मरना।।
उस तरफ नन्दजी के घर में आनन्द मनाते नर-नारी।
गोपियां सिंगार किये सोलह, पहने गहने सुन्दर भारी।।
गाती थीं गीत, बजाती थीं डफ ढोलक हर्षित हो मन में।
रोहिणी यशोदा लगी हुई आगत-स्वागत-अभिनन्दन में।।
लाड़ले ललन को पलना पर ललना ने लोरी गा-गा कर—
रोते रोते सोते सुत को चुपचाप सुलाया बिस्तर पर।
फिर कामों में फँस गईं, गईं न सुत के पास।
हुआ उधर से रोहिणी का भी नहीं निकास।।
इधर बड़े भूखे भये कृष्णचन्द्र भगवान।

करना चाहें काम सब लौकिक बाल समान ॥
आप लगे रोने बहुत हाथ-पैर फटकार ।
गाने में कुछ गोपियाँ सुन पाईं न पुकार ॥
खीझ भरे प्रिय पुत्र के रोने का स्वर नंद ।
सुन न सका कोई उधर जसुमति अथवा वृंद ।
इसी समय शकटासुर ने अंतःपुर बीच प्रवेश किया ।
उस कालरूप अपने वैरी अद्भुत बालक को ढूँढ़ लिया ॥
पूतना मरी इसके हाथों यह सोचा जब शकटासुर ने ।
तब क्रोध-वेग से दाँतों को पीसते हुए उस निष्ठुर ने,
सोचा मन में—बाहर से तो देखते हुए यह छोटा है ।
पर दानव कुल का काल महा मायावी ढोटा खोटा है ॥
मैं आज अभी इस बिच्छू को छूते ही छूते कुचलूँगा ।
अपने स्वामी की, असुरों की, आशंका जड़ से खो दूँगा ॥
दीपक की ओर झपटता है जैसे पतंग जल मरने को ।
वैसे ही दौड़ा साहस कर दानव भी हमला करने को ॥
पालना पड़ा था जहाँ वहाँ ऊपर छकड़ा था एक धरा ।
छोटे मोटे सामानों से वह था भारी भरपूर भरा ॥
उसको जाकर उस पापी ने उल्टा देना चाहा प्रभु पर ।
जिसमें नीचे ही पड़े-पड़े उसके बोझे से जावें मर ॥
पर दुष्टों के मन की बातें होती हैं पूरी कभी नहीं ।
जो ऐसा होता विश्व बीच तो रहते सज्जन भला कहीं ॥

दुर्जन की है पहचान यही, वह सदा बुराई करता है।
लेकिन अपने ही पापों से वह आप-आप ही मरता है॥
त्यों उसके मान का मनसूबा सब मन का मन में धरा रहा।
वह आप काल का कौर हुआ, उसका हो पाया कुछ न चहा।

रोते रोते कृष्ण ने ऊपर पैर उछाल।
छकड़े को उलटा दिया ठोकर से तत्काल॥
शकटासुर की हड्डियाँ हुई उसी में चूर।
करनी का फल पा गया कुटिल कपटपर क्रूर॥
मगन भये सब देवता कीन्हीं जयजयकार।
फूलों की वर्षा करी ब्रज पर बारम्बार॥

सुन इधर धमाका यह भारी ब्रजनारी सारी उठ धाईं।
कर हृदय अमंगल-आशंका घबराती घर भीतर आईं॥
देखा छकड़ा था उलट गया, टुकड़े टुकड़े सब अलग पड़े।
पर बालकरूपी परमेश्वर किलकारी मारें पग पकड़े॥
शकटासुर के मरने पर जो हुआ धड़ाका, वह सुनकर।
ब्रज की सब गोपी दौड़ पड़ीं छा गया हृदय में भारी डर॥
देखा जाकर बालरूप हरि मार मार कर किलकारी।
हाथ-पैर अपने उछाल कर हर्षित होते थे भारी॥
दौड़ी हुई यशोदा आई झपट लाल को उठा लिया।
मुँह चूमा और बलैया लीं न्योछावर फिर धन रत्न किया॥
तब रोहिणी आदि नर-नारी। करने लगे अचम्भा भारी॥

यह अनर्थ हो पाया कैसे। छकड़ा उलट गिराया कैसे ॥
आँधी या तूफान न आया। हालाडोला जान न पाया ॥
तरह तरह के तर्क तब होने लगे अनेक।
तभी पास में ही खड़ा बोला बालक एक ॥
जो कहती हो वह बात नहीं, ऊधमी बड़ा यह भैया है।
इस अनर्थ की जड़ मैया यह तेरा कुँवर कन्हैया है ॥
रोते ही रोते पैर मार कर इसने छकड़ा उलट दिया।
और किसी ने नहीं आनकर यह साहस का काम किया ॥
सुन बालक के वचन गोपिका कहने लगीं परस्पर यों—
सबकी रक्षा किया करें हो सदा सहायक ईश्वर यों ॥
यह कोई आफत आई थी, दूसरी अलप यह आज टली।
जो इसे मारने आवेगा वह जावेगा यमलोक-गली ॥
इस तरह कह रही सब गोपी सानन्द सिधारीं घर अपने।
इस तरफ नन्दजी के घर में भोजन धन रत्न लगे बँटने ॥
शकटासुर पापी के वध की यह कथा भक्ति से श्रवण करें।
वे नर वर सारे पापों से हो मुक्त, काल को नहीं डरें ॥
अब कथा तृणासुर के बध की हरिभक्तों, तुम्हें सुनाते हैं।
भवबंधन जिससे कटते हैं वह अस्त्र तुम्हें बतलाते हैं ॥
शकटासुर का बध हुआ यह सुनते ही कंस।
व्याकुल हो मन में डरा जान निकट विध्वंस ॥
मन में यों कहने लगा—कैसा है यह बाल।

क्या सचमुच ही है यही दानव कुल का काल ॥
मेरे अनुचर पूतना, शकटासुर बलवान।
इसने मारे यों सहज, यह क्या हे भगवान ॥
बड़े-बड़े जो देवता, वे भी जिनसे भीत।
उन्हें मारता बाल का, समय हुआ विपरीत ॥
तृणावर्त को तुरत बुलाया हरि की हत्या करने को।
बलवान असुर दौड़ा आया हत्यारा आपी मरने को ॥
बोला उससे यों कंस बली—हे तृणावर्त ,व्रज को जाओ।
है बालक मेरा शत्रु वहाँ, जल्दी यमपुर को पहुँचाओ ॥
उसके जो प्राण हरोगे तुम तो काम करोगे बहुत बड़ा।
मैं पुरस्कार तुमको दूँगा, असफल होने पर दंड कड़ा ॥
उसकी कोई भी चाल नहीं चल पावे, ऐसी युक्ति करो।
छलबल अथवा कौशल करके वैरी के मेरे प्राण हरो ॥
तृणावर्त ने तब स्वामी से उत्साहसहित ये वचन कहे—
महराज, आपके जो वैरी वे सब पृथ्वी पर नहीं रहे ॥
मैं जाते ही उस बालक को लेकर नभ में उड़ जाऊँगा।
बस गला घोट कर मारूँगा, ऊपर से उसे गिराऊँगा ॥
उसके प्राणों की कुशल नहीं, यह सत्य प्रतिज्ञा मेरी है।
इसके अब पूरा होने में बस जाने ही भर की देरी है ॥
डींग मारता इस तरह तृणावर्त मतिमन्द।
चला बवंडर रूप से नन्दभवन सानन्द ॥

आँधी या तूफान वह देख गोपियाँ गोप।
व्याकुल मन में सोचते—यह है दैवी कोप॥
मोटे-मोटे वृक्ष सब गिरे उखड़ कर आप।
और पहाड़ी के शिखर फटे, हटे चुपचाप॥
सागर का पानी उमड़ पड़ा, नदियों में बहिया देख पड़ी।
छा गया अँधेरा, धूल उड़ी, कोलाहल की थी गरज बड़ी॥
नर-नारी बालक, या बूढ़े अथवा जवान जो जहाँ रहे।
सन्नाटे में आकर वे सब बस चित्र-लिखे से वहाँ रहे॥
कंकड़ पत्थर के छर्रे से उड़-उड़कर आँखें फोड़ रहे।
झोंके छिन-छिन पर आँधी के साहस सब का था तोड़ रहे॥
इस तरह अनर्थ मचाता वह दानव तुरंत माया वाला।
कर कोप चला ब्रजमंडल को करने को अपना मुँह काला॥
श्रोतागण इसके आगे की श्रीकृष्ण-कथा कल सुनियेगा।
गोपाल लाल की लीलाएँ सुनकर उनके गुन गुनियेगा॥
अब आज प्रेम से एक बार श्रीकृष्णचन्द्र की जय बोलो।
अपने मन का सब मैल अहो आनन्द आसुओं से धो लो॥
जय जय गोकुलचन्द जय राधावर गोपाल।
जयति धर्म - रक्षा - करन गो - ब्राह्मण - प्रतिपाल॥

वकासुर-वध

पंचम भाग

नर नागर राधा रमण बंशी धर गोपाल।
प्रभु दानव दल के दलन धारे उर वनमाल॥
जयति यशोदा-लाडले व्रज रखवारे श्याम।
नन्द-नँदन आनन्दघन लीला लोक-ललाम॥
तृणावर्त दानव गया जैसे मारा दुष्ट।
सुनकर सो सारी कथा करिए मन संतुष्ट॥
विकट वकासुर वध हुआ फिर जैसे व्रज बीच।
वर्णन करते हैं सभी मरा जिस तरह नीच॥

तृणावर्त बलवान बड़ा अभिमानी जैसे व्रज आया।
आकाश बीच उड़कर उसने जैसा विप्लव कर दिखलाया॥
उसका वर्णन कुछ थोड़ा सा पहले तुमने सुन पाया है।
अब आगे का कुछ हाल सुनो जैसा कुछ कवि ने गाया है॥
छा गया अँधेरा अंधड़ से अंधे आँधी ने कर डाले।
आकाश तलक थी धूल उड़ी, सूझता न कुछ देखे-भाले॥
कंकड़ रोड़े बौछारों से बिछ रहे बराबर पृथ्वी पर।
आँधी के झोंके खा-खाकर गिरते पड़ते थे नारी नर॥
घबरा कर प्राणी पृथ्वी के सब लगे सोचने यों मन में।

क्या प्रलय काल आ गया अहो उत्पात मचा जो त्रिभुवन में ॥
कर हाहाकार बहुत व्याकुल घबराया था संसार सभी।
कहते थे लोग, नहीं देखा हमने ऐसा उत्पात कभी॥
तृणावर्त रख रूप भयानक पहुँचा। व्रज के बीच अचानक॥
व्याकुल ग्वाल बाल सब भागे। बछड़े और गऊ कर आगे॥
गऊ रँभाती पूछ उठाये। बछिया बछड़े सब घबराए॥

नन्द-भवन में रोहिणी और जसोदा मात।
घर के सारे काम निज करके प्रथम प्रभात॥
ले बैठीं फिर पुत्र को प्रीति सहित पुचकार।
मुख चुम्बन करके उठा उबटन अंग सँवार॥

मल मल कर सारे अंगों को फिर बड़े यत्न से नहलाया।
पोछे सब अंग अँगोछे से रेशमी वस्त्र तब पहनाया॥
आँखों में काजल लगा दिया, शृंगार किया फिर मन भाया।
मणि रत्न-जड़े आभूषण भी पहना कर मन में सुख पाया॥
इतने में लीला करने को श्रीकृष्णचन्द्र यों मचल पड़े।
मैया की गोदी चढ़ने को आँसू बरसाते अड़े खड़े॥
जसुमति ने उनको उठा लिया करके दुलार बहलाती थी।
फिर भी प्रभु रोते जाते थे जितना माता फुसलाती थी॥
फिर एकाएक हुए भारी, इतने भारी ज्यों पर्वत हो।
माता गोदी में रख न सकी बिठला ही दिया सुविव्रत हो॥
आश्चर्य लगीं मन में करने—यह कैसी दैवी माया है।

इतनी भारी किस तरह हुई नन्हें बालक की काया है ॥
इधर यशोदा सोचती मन में इसी प्रकार ।
तृणावर्त पहुँचा उधर किये कठोर विचार ॥
अंधे आँधी ने किये गो, गोपी, गोपाल ।
हुई यशोदा भी विकल लगी ढूँढ़ने बाल ॥
जहाँ बिठाये थे वहाँ मिले न उनको श्याम ।
बौरी सी दौरी फिरी ढूँढा सारा धाम ॥
बिना श्याम के व्याकुल मैया । बिन बछड़े के जैसे गैया ।
बेकल इधर-उधर फिरती थी । सिर पीटती और गिरती थी ।
मेरे लाल प्रान से प्यारे । मुझे छोड़ तुम कहाँ सिधारे ।
मेरा जीवन बिना तुम्हारे । होगा व्यर्थ नयन के तारे ।
रूठ गये अपनी मैया से । या बिगड़े हो बल भैया से ।
जीवन धन मेरे मिल जाओ । मेरी जी की लगी बुझाओ ।
तृणावर्त ने इधर पहुँचकर शत्रु अकेला ही पाया ।
तब हरि का वध करने को फैलाई यों अपनी माया ॥
तुरत उठाकर उन्हें गोद में असुर बवंडर रूप धरे ।
ऊपर को उड़ चला अचानक, देख दशा सब देव डरे ॥
सोचा मन में असुर घमंडी, काम सहज में कर लूँगा ।
बालक तो है ही, मैं इसको पृथ्वी पर दे पटकूँगा ॥
चूर-चूर हो जावेगी बस हड्डी-पसली सब इसकी ।
जीवन इसका बचा सके फिर इतनी शक्ति भला किसकी ॥

हल होगा यह प्रश्न सहल में, असुरों को आनन्द मिले।
कंस राज निश्चिंत बने त्यों हृदय-कली सानन्द खिले॥
ऐसा सोच-समझ कर पापी फूला नहीं समाता था।
किन्तु ईश क्या करनेवाले जान नहीं वह पाता था॥

हरि ने ऊँचे पर पहुँच मन में किया विचार।
हत्यारे को मारकर हरूँ भूमि का भार॥
तुरत तमक कर कृष्ण ने फैलाये निज हाथ।
गला दबाया दुष्ट का पूर्ण शक्ति के साथ॥
गला घोटने से हुआ दानव को अति कष्ट।
निकल न पाया शब्द फिर उसके मुख से स्पष्ट॥

बोला—बस छोड़ मुझे भाई, मैं तो तेरा अपना जन हूँ।
मामा हूँ तेरा ऐ बच्चे, सीधा हूँ और अकिंचन हूँ॥
मैं सैर कराने ऊपर से इस दुनिया की तुझको लाया।
उसका यह बदला भला मिला, प्राणों का शत्रु तुझे पाया॥
बस छोड़ छोड़, मैं मरा मरा, क्या आह, मार ही डालेगा।
कैसा हत्यारा बच्चा है, कितनों ही के घर घालेगा॥
मैंने तो प्यार दिखाया था, गोदी में लेकर आया था।
तू तो विष बुझी छुरी निकला, बच्चे का स्वाँग बनाया था॥
दौड़ो आओ मेरे मित्रों, मेरी पुकार सुन पाओ तो।
हा काल रूप इस बाल रूप से मेरी जान बचाओ तो॥
मैं मरता हूँ, मैं मरता हूँ, हा शोक, व्यर्थ ही मरता हूँ।

असहाय हाय इस तरह यहाँ मैं प्राण विसर्जन करता हूँ ॥

ऐसे चिल्लाता रहा करता हुआ विलाप ।
गया तुरन्त यमपुर असुर अपने पापों आप ॥
आँखें बाहर को निकल आईं फिर तत्काल ।
मुँह से फेना वह चला, दानव हुआ विहाल ॥
छटपट करता कर-चरण चला रहा विकराल ।
गिरा गगन से भूमि पर तृणावर्त तत्काल ॥

प्राण प्रथम ही निकल चुके थे गला दबाये जाने से ।
चूर हुई हड्डी - हड्डी भी पटक गिराए जाने से ॥
हाथ - पैर - फैला कर भू पर प्राणहीन हो असुर गिरा ।
मिटा तुमुल तूफान तुरत ही तम तमाम था जो कि घिरा ॥
आँधी का फिर नाम नहीं था, नहीं बवंडर कहीं रहा ।
स्वच्छ हुआ आकाश, सुनिर्मल दसो दिशा हो गईं अहा ॥
नीचे था दानव पड़ा हुआ उसकी छाती पर श्रीहरि थे ।
दर्शनीय प्रभु की शोभा थी सचमुच असुरों के अरि थे ॥
बालरूप असुरों के सचमुच काल रूप प्रत्यक्ष हुए ।
निर्भय खेल रहे थे हँसते दुखी सभी प्रतिपक्ष हुए ॥
देव सभी आकाश-मार्ग से फूलों की वर्षा करते ।
जय-जयकार सिद्धगण करके मन में मोद महा भरते ॥

लगी नाचने अप्सरा कर प्रभु के गुण-गान ।
बजी दुंदुभी स्वर्ग में उत्सव हुआ महान ॥

इधर ढूँढते सब ब्रजवासी । पहुँचे जहाँ कृष्ण अविनासी ।
दानव देह दबाकर नीचे । क्रीड़ा करते आँखें मीचे ।।
देख लाल को व्याकुल मैय्या । दौड़ उठाये कुँवर कन्हैया ।
बड़े प्यार से गले लगाया । मुँह चूमा, जी भर दुलराया ।।
आकर सभी गोपियाँ सुख से लेने लगीं बलैया फिर ।
कोई राई नोन उतारे कोई चूम रही थी सिर ।।
कोई फूँक डालती आकर समझी कोई फेर हुआ ।
रक्षाकवच किसी ने बाँधा और प्यार से अंग छुआ ।
आये नन्द देखकर घटना घबराये से सहम गये ।
और गोपगण भी सब आये असुर देख कर डरे भये ।।

भक्ति सहित मन लाय के हरि के बालक खेल ।
सुनिये श्रोतागण सकल मिले मुक्ति का मेल ।।
हुए बाल गोविन्द जब चार मास के बाल ।
घुटनों से चलने लगे उठकर प्रातःकाल ।।

पैरों में घुँघरू बँधे हुए बजते थे उनके चलने में ।
श्रीकृष्ण और बलदाऊ को सुख मिलता द्वार निकलने में ।।
गैय्यों के बछड़े आँगन में सब कूद कलोलें करते थे ।
किलकारी भरते देख उन्हें आने में पास न डरते थे ।।
घुटनों के बल से खिसक रहे जल्दी जाने को तत्पर हो ।
माताएँ देख हँसा करतीं, उनको आनन्द न क्यों कर हो ।।
जब पास पहुँच प्रभु जाते थे तब बछड़े और उछलते थे ।

श्रीकृष्ण पकड़ने को उनके फैलाकर हाथ मचलते थे ॥
रोहिणी यशोदा शंकित हो पीछे-पीछे ही रहती थीं।
लग जाय लाल के चोट नहीं, आप में ऐसा कहती थीं ॥
कुछ आगे बढ़ते हर्ष भरे पीछे हटते दोनों भाई।
पैरों के घुँघरू बजने से किलकारी भरते सुखदाई ॥

कभी वहाँ से रोहिणी लाती उन्हें उठाय।
पक्षी पिंजड़े पास तब खिसक पहुँचते जाय ॥
तोता मैना सारिका बोलें प्यारे बोल।
प्रभु उँगली देते उन्हें रखते खिड़की खोल ॥
हा हा करती दौड़ती मैय्या उनके पास।
उड़ न जायँ पक्षी कहीं कर मन में यह त्रास ॥

यों हीं प्रभु खेलते प्रसन्न बलदाऊ संग,
बालकेलि करने को और भी बड़े हुए।
एक दिन चन्द्रमा को निकला अकाश बीच,
देख उसे लेने को मचलते अड़े हुए।
बोले तुतलाते—मैया, यह है खिलौना कौन,
आसपास जिसके सितारे हैं जड़े हुए।
उँगली उठाए हठ लाए मन भाए कृष्ण,
माँग रहे चन्द्रमा को आँगन खड़े हुए।

बोली तब हँसकर यों माता। बेटा तू नाहक हठ लाता।
कोई नहीं खिलौना है यह। चन्दामामा लड़कों का यह।

देखें इसे दूर ही से सब । आता पास किसी के यह कब ।
सुन माता के वचन मचलकर कृष्णचन्द्र बोले, मैया—
चन्दा मामा को मैं लूँगा उससे खेलूँगा मैं, भैय्या ॥
कहती लाख लाख समझाती हार गई जसुदारानी ।
कृष्णचन्द्र ने एक न उनकी सुनी, न छोड़ी मनमानी ॥
सब खड़ी रोहिणी देख रही थीं, उन्हें युक्ति यक सूझ गई ।
चट थाली में जल भर लाईं युक्ति तुरत यह सफल भई ॥
पानी में प्रतिबिंब डालकर बोलीं यों रोहिणी वचन ।
लो भैय्या चन्दामामा को, इससे खेलो यहाँ मगन ॥
चन्दा को तब लगे पकड़ने हाथ डालकर थाली में ।
जल हिलने से चन्द्र बिंब भी हिलता छटा निराली में ॥
हाथ न आने से यों उसके रोते देख कन्हैया को ।
बहलाने की उन्हें युक्ति फिर सूझ गई यह मैय्या को ॥

बोलीं—रोते लाल क्यों, चन्दामामा खेल—
खेल रहा, तुमसे बड़ा रखता है यह मेल ॥
सुनकर माता के वचन कृष्णचन्द्र सानन्द ।
लगे खेलने चन्द्र से नित्य बिहँसते मंद ॥

एक रोज ऐसे ही अनेक ग्वालबालें,
साथ कृष्ण बलदाऊ दोनों खेलते थे द्वार पर ।
कृष्ण ने उठा के मिट्टी खाने में लगाया,
लग्गा उन्हें बलदाऊ ने मना किया ये देखकर ॥

माने नहिं कृष्ण बार-बार मिट्टी खाने लगे,
तब तो पकड़ उन्हें लाये बलदाऊ घर।
बोले यों यशोदा से तुम्हारा कान्ह मैय्या, बड़ा
ऊधमी है ढीठ है नहीं है डर रत्ती भर॥
तब यों यशोदा बोलीं मन्द मुसकाती हुई,
ऊधम कन्हैया ने तुम्हारे आज क्या किया ?
बोले बलदाऊ—खाता मिट्टी बार-बार यह,
मना करने से नहीं मानता बखेड़िया॥
फिर भी उठाई खाई मिट्टी आज ऊधमी ने,
मैंने हार मानी मुझे इसने हरा दिया॥
अब तुम जानो औ तुम्हारा काम जाने बाबा,
इसको तुम्ही ने मैय्या है सिर चढ़ा लिया॥
सुन बलदाऊ के वचन देखा माता ओर।
आँखों में आँसू भरे डर से नन्दकिशोर॥
बोली जसुदा कोपकर क्यों रे कान्हा ढीठ।
मिट्टी भी खाने लगा माखन गया उबीठ॥
यों डाँट डपटकर साँटी ले मारने चलीं जब नँदरानी।
तब कृष्णचन्द्र ने सिसक सिसक इस तरह सुनाई निज बानी॥
मैय्या, यह झूठ लगाते हैं, बलदाऊ मुझे चिढ़ाते हैं।
मैंने मिट्टी कब खाई है, ये ही लड़के सब खाते हैं॥
कह ऐसे कृष्ण लगे रोने, जसुदा ने पकड़े हाथ झपट।

अच्छा जो मिट्टी नहिं खाई तो फिर मुँह खोल दिखा झटपट ॥
तब कृष्णचन्द्र ने मुँह खोला अचरज से देखें नँदरानी ।
उस मुँह के भीतर भरे पड़े थे तीन लोक के सब प्रानी ॥
आकाश, भूमि, तारे सारे थे मुख के भीतर चमक रहे ।
नद नदी और नाले बहते, पक्षी पेड़ों पर चहक रहे ॥
पर्वत, झाड़ी, खाड़ी, झरने, जंगल दिखलाई देते थे ।
साती सागर जलराशि बड़े रत्नाकर लहरें लेते थे ॥

डरकर आँखें मूँद लीं जसुदा ने तत्काल ।
लगीं सोचने, कौन है मायावी यह लाल ॥
है अवतार अपूर्व यह, माया इसकी देख ।
मुझे अचंभा हो रहा, लगती नहीं निमेख ॥

नँदरानी के मुख से सुत की ये बातें सुनकर नंद डरे ।
ब्राह्मण बुलवाये उसी समय जप शांति-पाठ व्रत होम करे ॥
इसी तरह नित न्यारी लीला और खेल प्रभु करते थे ।
माता - पिता गोप सब गोपी मन में आनँद भरते थे ॥
लड़कों के संग कभी चकई डोरी ले उसे नचाते थे ।
डोरी लपेट कर झिटके से चकई दमदार दिखाते थे ॥
दम-जीत खेलकर औरों की चकई डोरी जीता करते ।
इस तरह बड़े दिन उन सबके इक पल समान बीता करते ॥
छुली छुलैया खेल कभी लड़कों के साथ रचाते थे ।
इक चोर हुआ सब शाह बने, सब छूते और छुआते थे ॥

श्रीकृष्ण चोर जब होते थे तब चोरी सबको देने में,
आनाकानी कर दिखलाते थे दोष आप छू लेने में ॥
सब लड़के हल्ला करते थे, पर कृष्ण एक की सुनें नहीं।
सब दौड़ें पीछा करने को, जा कृष्णचन्द्र फिर छिपें कहीं ॥
ऊँचा टीला का खेल रचें फिर कभी बुझौवल या फल की।
बलदाऊ कान्हा की गुइयाँ चड्ढी देते दोनों दल की ॥

हुए कृष्ण जब पाँच-छः वर्षों के सुकिशोर।
ले बछड़े जाने लगे तब वे वन की ओर ॥
पड़े पलँग पर सो रहे बलदाऊ औ श्याम।
माता उन्हें जगा रही छोड़ और सब काम ॥

उठो लाल, भोर हुआ, पक्षी गण जाग पड़े,
पूरब दिशा में छाई लाली भानु आने की।
बीती रात, तारे छिपे, विमल प्रकाश हुआ,
सुरति तुम्हें न अभी बाँसुरी बजाने की ॥
उठ मुँह धोओ मत सोओ गई मैय्या बलि
हो रही हमें अबेर माखन फिराने की।
ग्वाल बाल ले ले निज बछड़े खड़े हैं द्वार,
तुझको पुकारें भई वेला वन जाने की ॥

उठ बैठे तब कृष्ण भी मलते दोनो नैन।
ग्वाल वाल सब कब गये? कहते ऐसे वैन ॥
मैय्या ने ले गोद में मुँह धोया तत्काल।

कहा, अभी कोई नहीं गया ग्वाल गोपाल ॥
मुँह पोछ अँगोछे अंग सभी आँखों में काजल लगवाया ।
'राजा बेटा बन जा कान्हा' पुचकार दुलारा, समझाया ॥
माखन मिसरी, पूरी हलवा बहु भाँति कलेवा करवाया ।
पहनाये कपड़े आभूषण वर-वेष बनाया मन भाया ॥
फिर लेकर लकुटी कृष्ण चले बलदाऊ संग वृन्दावन को ।
बछड़े कर आगे हर्ष सहित हाँकते हुए निज गोधन को ॥
सब ग्वाल बाल भी साथ चले कुछ पकड़ परस्पर हाथ भले ।
खेलते उछलते कुछ चलते जो थे घर से पीछे निकले ॥
बन में जाकर बछड़े छोड़े सब लगे मौज से वे चरने ।
इस तरफ कृष्ण बलदाऊ भी मन भाये खेल लगे करने ॥
जाकर ढाई को छू लेता दौड़ता एक सबके आगे ।
दूसरे पकड़ने को उसको बालक साहस करके भागे ॥
इसी तरह आनन्द से कोई-कोई बाल ।
मल्ल-युद्ध करने लगे हो प्रसन्न गोपाल ॥
कोई कोकिल-काकली कुहू-कुहू के बोल ।
नकल उसी की कर रहा हँसता था जी खोल ॥
कोई उड़ते आकाश बीच पक्षी की छाया पकड़ रहा ।
कोई बंदर की घुड़की पर वैसे ही उससे अकड़ रहा ॥
कोई हँसों की चाल चले कोई वायस सा बोल रहा ।
कोई मोरों की पूँछ पकड़ उनकी चोरी को खोल रहा ॥

कोई गोली लुढ़काता था, कोई गोली को पीट रहा।
कोई अपने ही साथी का पीछे को पैर घसीट रहा॥
कोई पेड़ों की छाया में विश्राम कर रहा पड़ा हुआ।
कोई यमुना की धारा की लहरों को देखे खड़ा हुआ॥
कोई कमलों के फूल तोड़ उनकी माला था बना रहा।
कोई वन-कुसुमरचित माला था कृष्णचन्द्र को पिन्हा रहा॥
कोई फल वाले वृक्षों पर चढ़ कर मीठे फल तोड़ रहा।
नीचे जो साथी खड़े हुए उनके सिर ही पर छोड़ रहा॥
कोई कंदुक की क्रीड़ा में कुछ लड़कों को उलझाये था।
कोई किलकारी मार रहा बेढब आकार बनाये था॥
कोई गाता था ग्रामगीत, कोई सुन शीश हिलाता था।
कोई सहर्ष उसके स्वर से स्वर अपना खूब मिलाता था॥

कोई मुख-तबला बजा देता जाता ताल।
कोई ताली पीटकर देता धूल उछाल॥
इसी तरह दिन भर वहाँ करके क्रीड़ा बाल।
सब बछड़े लौटाल घर आते सायंकाल॥

अघासुर-वध

छठा भाग

अघ-ओघ अघासुर आदि अनेक असुर अपराधी जिन मारे,
द्विज अधम अजामिल, गणिका, गज वानर नर अधमअसुर तारे,
भक्तों के संकट कोटि कठिन पल भर में करुणा कर टारे,
वह कृष्णचन्द आनन्दकन्द हरि नन्दनन्द हैं रखवारे ॥
अब आगे उनकी और अधिक उपयोगी लीला कहते हैं ।
जिस अमृत श्रवण के लिए सदा लालयित सुरगण रहते हैं ॥
जब अत्याचारी अनुचर गण व्रजमंडल में जा अस्त हुए ।
त्यों कंस कुचाली के सारे कुमनोरथ अस्त-व्यस्त हुए ॥
तब तो घबराया वह मन में, कुछ सूझ उपाय नहीं पड़ता ।
ऐसा कोई भी सुभट नहीं जो हरि से आ करके लड़ता ॥
तब अजगर-रूप अघासुर को असुरेश कंस ने बुलवाया ।
अपना सारा संकट उसको हर तरह सुझाकर समझाया ॥
बोला—अब तुमही एक मुझे सब भाँति सहायक देख पड़ो ।
तुम चाहो तो रिपु को मारो छलबल कौशल से लड़ो, अड़ो ॥
और न कोई है असुर तुम जैसा बलवान ।
जो मारे उस दुष्ट को कर उपकार महान ॥
कहा अघासुर ने, प्रभो, तुच्छ एक हूँ दास ।

स्वामी इतने के लिए होते वृथा उदास ॥
वह बलशाली है अगर, मैं भी हूँ बलवान ।
मायावी मैं भी बड़ा जो वह छली महान ॥
जाता हूँ व्रज को अभी रखकर अजगर रूप ।
ग्वाल बाल होंगे सभी पड़े मृत्यु के कूप ॥

यों कहकर वह चला भयंकर कालरूप दानव भारी ।
मानव की क्या बात, देवतों की भी शक्ति देख हारी ॥
व्रजमंडल के बीच पहुँच वृंदावन में वह लेट रहा ।
बन अजगर एक बड़ा भारी जैसे गिरि की कंदरा महा ॥
जो कोई पशु अथवा पक्षी उसके मुख में जा समा गया ।
वह काल-कवल तत्काल हुआ, इस दुनिया से वह चला गया ॥
उस समय वसंत वहाँ वन में फैला था, शोभा भारी थी ।
डाली डाली पर फूलों की रंगत न्यारी ही न्यारी थी ॥
पीपल, बरगद, गूलर, चंपा, पुन्नाग, नागकेसर सारे ।
कोमल कोंपल की लाली से लख पड़ते थे प्यारे प्यारे ॥
थे ताल, तमाल, पनस, पाकर छाया के आकर घने-घने ।
फैले फूले फल-भार-झुके अगणित वृक्षों के तने 'तने' ॥
हर ओर निराली ही बहार छाई थी मन को मोह रही ।
शृंगार किये जैसे सोहे वर वृन्दावन की विशद मही ॥
मृग और मृगी, उनके छौने छोटे छोटे थे दौड़ रहे ।
पत्तों की छाया में बैठे बानर आँखें मूँदे सुख से ॥

गउएँ बछड़ों को साथ ले तरु के तले प्रसन्न।
बैठी पागुर कर रहीं चरने से अवसन्न॥
ठंडी-ठंडी वायु भी चलती चारो ओर।
पल भर में श्रम दूर कर करती हृदय विभोर॥
फूले कचनार औ अनार सहकार फूले,
भौंरन की भीर डोलि रही डार-डार है।
ठौर-ठौर जीवन के जीवन बदल गये,
मदन महीपति को छायो अधिकार है॥
पशु और पक्षी नर सहित समस्त मस्त,
अस्तव्यस्त नीति रीति प्रीति को विचार है।
बार-बार वासित वसंती सु बयार वहै,
वृन्दावन वीथिन वसंत की बहार है॥
ग्वाल बाल सब लेकर गउएँ बछड़े वन को प्रात चले।
मुरली मधुर बजाते जाते गाते सुन्दर गीत भले॥
कोई था साथी के सिर पर चपत जमा कर दूर गया।
कोई खड़ा खिलखिला करके हँसता हुआ प्रसन्न भया॥
जिसके सिर पर चपत पड़ी वह दौड़ा बड़ा क्रोध करके।
उसे मारनेवाला भागा अपने मन में कुछ डरके॥
पकड़ा पहले ने जब उसको दौड़धूप करके भारी।
बीच-बचाव किया औरों ने मन-मैली मेटी सारी॥
इसी तरह सब क्रीड़ा करते वृन्दावन में जा पहुँचे।

उन्हें देख कर अब दानव ने निज शिकार समझा पहुँचे ।।

यों ग्वाल बाल प्रसन्न सब क्रीड़ा सतत करते हुए,
चलते उछलते कूदते उत्साह उर भरते हुए,
सानन्द वृन्दावन पहुँच ब्रजचंद हरि के साथ वे,
शोभा निरखते खेलते निर्भय समस्त सनाथ वे ।।

कोई बालक गौवें वन में । लेकर बढ़ा हर्षयुत मन में ।
कोई हाँक चला बछड़ों को । बुला-बुलाकर सब पिछड़ों को ।।
कुछ लड़के अपनी कर टोली । लगे खेलने मिलकर गोली ।
खेले कोई ऊँचा टीला । कोई करते प्रभु की लीला ।।
कुछ बालक वय में बड़े खड़े बाँसुरी मधुर सुर बजा रहे ।
गा रहे रागिनी राग मगन सुन रहे ध्यान से, सुना रहे ।।
कुछ थिरक-थिरक कर नाच रहे दोनों हाथों को फैला कर ।
भौंरों की कोई नकल करें, हँस रहे ठठाकर ठट्ठा कर ।।
डालों के अन्दर बन्दर जो बच्चों के साथ उछलते थे ।
बालक भी उनकी नकलें कर कुछ चलते और मचलते थे ।।
कुछ भरें छलाँगें ज्यों हिरने लोखड़ी खड़ी जो पाते थे ।
तालियाँ पीट कर पीछा कर सब उसको दूर हँकाते थे ।।
इस तरह खेलते हुए सभी आपस में रंग मचाते थे ।
श्रीकृष्ण पड़े पीछे ही थे, पर वे सब बढ़ते जाते थे ।।
अजगर भी उधर विकट मुख को खोले था मग में अड़ा हुआ ।
औरों को काल-कवल करने खुद काल-गाल में पड़ा हुआ ।।

देखा जो उसको लड़कों ने देखने उसी को दौड़ चले।
कुछ सोच-विचार लगे करने, यह सहसा काम कहीं न खले ॥
तब बालक होकर खड़े करने लगे सलाह।
यह आगे क्या वस्तु है जिधर हमारी राह ॥
देखो यह आगे पड़ा जैसे अजगर एक।
दोनों होठों को गगन पृथ्वी पर ज्यों टेक ॥
अथवा कोई कंदरा पर्वत की सुविशाल।
जिसके भीतर ज्यों पड़ा सब जीवों का काल ॥
यह साँसे हैं ले रहा गरम गरम अति घोर।
दावानल की आ रहीं लपटें या इस ओर ॥
ये दाढ़ें हैं उस अजगर की अथवा हैं वृक्ष बड़े भारी।
लाल लाल यह जीभ लपकती अथवा राह बनी न्यारी ॥
बालक सब यों आपस में कर तर्क वितर्क चले आगे।
अजगर का संशय करके भी पीछे को नेक नहीं भागे ॥
कुछ ने यों कहा, न अब आगे पग रखना है भय से खाली।
ठहरो, आ जानेदो हरि को, पीछे हैं अब तक बनमाली ॥
कुछ ने तब उत्तर दिया—अहो, इसमें क्या संकट आवेगा ?
जो कोई होगा दुष्ट छली तो पल भर में मारा जावेगा ॥
यों कहकर ताली पीट सभी गो-वत्सों को आगे करके।
अजगर के मुँह में घुसे यथा जावें दरवाजे में घरके ॥
श्रीकृष्णचन्द्र ने सब देखा, होनी ऐसी ही है, जाना।

तब तो यह बालक कर बैठे इस घड़ी काम यह मनमाना ॥
सोचा तब यों प्रभु ने मनमें। मारूँगा इसको मैं वन में।
उधर सभी को पल में ग्रसकर। मुंह खोले ही रहा सुअजगर॥
कहने लगा, कृष्ण भी आवें। उनको मार सफलता पावें।
पीछे से हरि ने भी आकर। किया प्रवेश उसी मुख भीतर॥

आधे ही भीतर गये सुन्दर श्याम-शरीर।
लगे बढ़ाने अंग को, अजगर हुआ अधीर॥

साँस का लेना हुआ दूभर उसे,
मृत्यु का होने लगा तब डर उसे।
चढ़ गये लोचन, फिरीं फिर पुतलियाँ,
दम घुटा त्यों दिख पड़ा यम-घर उसे।
सिर पटक कर गिर पड़ा वह दुष्ट तब,
धर दबोचा काल ने सत्वर उसे॥

कृष्ण निकल आये फिर बाहर, अघी अघासुर नष्ट हुआ।
देवों को आनन्द हुआ त्यों दुष्ट जनों को कष्ट हुआ॥
कृष्णचन्द्र ने देखा साथी ग्वाल बाल सब मरे पड़े।
विष से भस्म हुए तन सबके, अजगर-उर में भरे पड़े॥
अमृत-वर्षिणी मृत-सँजीवनी दृष्टि सभी पर तब डाली।
मरे हुए सब जीवित होकर लगे मनाने खुशियाली॥
सुर गण ने तब नभमंडल में प्रभु का जय-जयकार किया।
ऋषि-मुनियों ने हो आनन्दित वेद-मंत्र उच्चार किया॥

पापी असुर छिपे जो वन में यह लीला थे देख रहे।
उनके हृदय निराशा दुख की विकट अग्नि से गये दहे॥
समाचार लेकर वे दौड़े कंस नृपति के पास तभी।
निष्कंटक हो स्वर्ग-निवासी उत्सव करने लगे सभी॥
अब ब्रह्मा को मोह हुआ ज्यों, वह भी कथा श्रवण करिये।
लीलामय की अद्भुत लीला सुन कर भव का भय हरिए॥
यह अघ-निधन कृष्ण की लीला ग्वालों ने अपने घर में।
जाकर कही सभी स्वजनों से पूरे एक वर्ष भर में।
इसका जो कुछ है रहस्य वह अब मैं तुमसे कहता हूँ।
कृष्ण-कथा कहने में राजन, सदा मगन मैं रहता हूँ॥
जिस दिन वध हुआ अघासुर का उस दिन बालक सब निज घर से।
भोजन बनवाकर भाँति-भाँति लाये थे माओं के परसे॥
कोई लाया था भात कढ़ी, कोई चटनी रोटी लाया।
कोई लाया था खीर मधुर, हलवा घी से तर मन भाया॥
कोई लाया खिचड़ी भूनी, पापड़ के साथ दही मीठा।
पूरी तरकारी और सभी कड़वा खट्टा मीठा सीठा॥

जब अघ दानव का निधन कर पाये ब्रजचन्द।
तब सब बालक जी उठे बोले यों सानन्द—
अब तो भूख हमें लगी, गई दोपहर बीत।
आओ सब भोजन करें मगन हुये मन मीत॥
कृष्णचन्द्र ने भी किया अनुमोदन उस काल।

तब तो यह बालक कर बैठे इस घड़ी काम यह मनमाना ॥
सोचा तब यों प्रभु ने मनमें । मारूँगा इसको मैं वन में ।
उधर सभी को पल में ग्रसकर। मुंह खोले ही रहा सुअजगर॥
कहने लगा, कृष्ण भी आवें । उनको मार सफलता पावें ।
पीछे से हरि ने भी आकर । किया प्रवेश उसी मुख भीतर ॥

आधे ही भीतर गये सुन्दर श्याम-शरीर ।
लगे बढ़ाने अंग को, अजगर हुआ अधीर ॥

साँस का लेना हुआ दूभर उसे,
मृत्यु का होने लगा तब डर उसे ।
चढ़ गये लोचन, फिरीं फिर पुतलियाँ,
दम घुटा त्यों दिख पड़ा यम-घर उसे ।
सिर पटक कर गिर पड़ा वह दुष्ट तब,
धर दबोचा काल ने सत्वर उसे ॥

कृष्ण निकल आये फिर बाहर, अघी अघासुर नष्ट हुआ ।
देवों को आनन्द हुआ त्यों दुष्ट जनों को कष्ट हुआ ॥
कृष्णचन्द्र ने देखा साथी ग्वाल बाल सब मरे पड़े ।
विष से भस्म हुए तन सबके, अजगर-उर में भरे पड़े ॥
अमृत-वर्षिणी मृत-संजीवनी दृष्टि सभी पर तब डाली ।
मरे हुए सब जीवित होकर लगे मनाने खुशियाली ॥
सुर गण ने तब नभमंडल में प्रभु का जय-जयकार किया ।
ऋषि-मुनियों ने हो आनन्दित वेद-मंत्र उच्चार किया ॥

पापी असुर छिपे जो वन में यह लीला थे देख रहे।
उनके हृदय निराशा दुख की विकट अग्नि से गये दहे॥
समाचार लेकर वे दौड़े कंस नृपति के पास तभी।
निष्कंटक हो स्वर्ग-निवासी उत्सव करने लगे सभी॥
अब ब्रह्मा को मोह हुआ ज्यों, वह भी कथा श्रवण करिये।
लीलामय की अद्भुत लीला सुन कर भव का भय हरिए॥
यह अघ-निधन कृष्ण की लीला ग्वालों ने अपने घर में।
जाकर कही सभी स्वजनों से पूरे एक वर्ष भर में।
इसका जो कुछ है रहस्य वह अब मैं तुमसे कहता हूँ।
कृष्ण-कथा कहने में राजन, सदा मगन मैं रहता हूँ॥
जिस दिन वध हुआ अघासुर का उस दिन बालक सब निज घर से।
भोजन बनवाकर भाँति-भाँति लाये थे माओं के परसे॥
कोई लाया था भात कढ़ी, कोई चटनी रोटी लाया।
कोई लाया था खीर मधुर, हलवा घी से तर मन भाया॥
कोई लाया खिचड़ी भूनी, पापड़ के साथ दही मीठा।
पूरी तरकारी और सभी कड़वा खट्टा मीठा सीठा॥

जब अघ दानव का निधन कर पाये ब्रजचन्द।
तब सब बालक जी उठे बोले यों सानन्द—
अब तो भूख हमें लगी, गई दोपहर बीत।
आओ सब भोजन करें मगन हुये मन मीत॥
कृष्णचन्द्र ने भी किया अनुमोदन उस काल।

इक कदंब के वृक्ष के नीचे पहुँचे बाल ॥
यमुना का तट था निकट वहीं जल शीतल लहरें लेता था।
मृदु मंद सुगंध पवन चलकर सब जीवों को सुख देता था ॥
गो वत्स सभी थे छोड़ दिये वे चरने बन में निकल गये।
सब बालक एक शिला ऊपर मंडलाकार आसीन भये ॥
पहले चक्कर में बड़े बड़े, फिर उनसे छोटे, इस क्रम से।
प्रत्येक पंक्ति में गोलाकृति बैठाये बालक ब्रजपति ने ॥
जैसे कोई हो कमल खिला दल विकसित फैले हों उसके।
हो पीत वर्ण झुमका जैसे शोभित भीतर उनमें घुसके ॥
वैसे ही उन सब बालों के मध्यस्थ विराजे बनवारी।
श्रीकृष्णचन्द्र की शोभा थी अति सुन्दर त्रिभुवन से न्यारी ॥
जो जो भोजन ले आये थे वे सब बालक अपने घर से।
सब सबने ले अपने अपने आगे आनन्द सहित पर से ॥
खाते थे फिर कृष्ण को वहीं चखाते बाल।
नर लीला यों कर रहे गोकुल में गोपाल ॥
इसी समय आकाश में ब्रह्मा बाबा आन।
हरि माया-मोहित हुए मिटा सभी वह ज्ञान ॥
ग्वालों की जूठन वहाँ हरि को खाते देख।
ब्रह्मा के मन में हुई शंका यों सविशेष ॥
यह कैसे हैं परमेश्वर जो इस तरह यहाँ पर लख पड़ते।
खाते उच्छिष्ट अहीरों का, लड़कों की तरह पकड़ लड़ते ॥

छीनाझपटी कर ग्वालों से माखन रोटी मोटी खाते ।
जैसे यह छप्पन भोग इन्हें, ऐसे भोजन कर सुख पाते ॥
जो तीन लोक का भर्ता हो, कर्ता धर्ता कहलाता हो ।
कैसा अचरज, वह साधारण बालक सा ढुंद मचाता हो ॥
परमेश्वर का अवतार यहाँ पृथ्वी पर होने वाला था ।
यह तो निश्चित है; पर वह क्या यों महिमा खोने वाला था ॥
पूतना, बकासुर आदि यदपि मेरे ही आगे मारे हैं ।
सब सिद्ध सुरासुर समझ रहे उनके ये ही रखवारे हैं ॥
और आज भी अति विकट दानव को संहार ।
किया इन्होंने अघ असुर कंस-दूत को मार ॥
तो भी यह ईश्वर मुझे जान न पड़ते ठीक ।
ईश्वर की ऐसी कभी होती नहीं प्रतीक ॥
अच्छा है, इसकी परख करना उचित अवश्य ।
गो गोपाल सभी हरूँ जो हैं इनके वश्य ॥
अपनी दुर्बोध कठिन माया वृन्दावन में फैलाता हूँ ।
पल भर में बछड़े गोप गऊ सब ब्रह्मलोक ले जाता हूँ ॥
ईश्वर जो होंगे यह सच्चे घबराहट नहीं दिखायेंगे ।
देखते-देखते ही मेरे सब बिगड़ा काम बनावेंगे ॥
पर होंगे जो साधारण नर यादव-कुल-बालक वीर कहीं ।
तो इनके किये न कुछ होगा, रह जावेंगे बस खड़े यहीं ॥
राजन्, यों मन में सोच रहे उस ओर विधाता सठियाये ।

इस ओर कृष्ण भी जान गये अन्तर्यामी मृदु मुस्काये ॥
योग माया धन्य है परमेश की,
है चकित गति देखकर भुवनेश की ।
पार पा सकते भला नर किस तरह,
जब भ्रमाती मति विधाता शेष की ॥
आप ही अवतार के वानी बने,
दी खबर पीड़ित मही संदेश की ।
आप ही शंका लगे करने अहो,
धन्य माया है अजेय व्रजेश की ॥
ब्रह्मा के मन का भाव कृष्ण, चट ताड़ गये अन्तर्यामी ।
ग्वालों से बोले लीलामय इस तरह सकल जग के स्वामी ॥
देखो सब बछड़े किधर गये ? गउएँ भी दिखती नहीं यहाँ ।
ढूँढना चाहिए शीघ्र उन्हें, जानें वे जावें चले कहाँ ॥
तुम लोग सभी तब तक बैठो इस जगह करो सुखसे भोजन ।
आता हूँ जल्दी ढूँढ उन्हें, लाता हूँ, जाता हूँ कानन ॥
कोई आपत्ति न आवेगी, तुम लोग न कुछ भी घबराना ॥
जो देर लगे भी कुछ मुझको तो तुम उठकर न चले आना ।
इस तरह साथ के बालों को आश्वासन देकर वनमाली ।
कर में मक्खन रोटी रक्खे वन ओर चले विक्रमशाली ॥
इधर विधाता ने रची माया होकर मूढ़ ।
जान सके वह भी नहीं हरि की लीला गूढ़ ॥

पहले तो वह ले गये सब बछड़ों को आन।
फिर गउओं को ले गये, छाया यों अज्ञान॥
बछड़ों गउओं को कृष्णचन्द्र खोजने गये जिस दम वन में।
ब्रह्मा जी आकर बालों को ले गये इधर वृन्दावन में॥
हरि ने जब दूर तलक जाकर गो बछड़े कहीं नहीं पाये।
तब वह लौटे वृन्दावन को अन्तर्यामी मन में मुसकाये॥
इस ओर न देख पड़े बालक उस जगह जहाँ पर छोड़े थे।
संख्या में गोपालों के बालक सैकड़ों, न थोड़े थे॥
सोचा तब हरि ने यों मन में, दिखलाऊँ विधि को माया मैं।
वह समझ रहे होंगे मन में इस घटना से घबराया मैं॥
पर दिखला दूँगा मैं उनको, उनको है भूल बड़ी भारी।
मेरी माया है प्रबल बड़ी, है शक्ति विश्व भरसे न्यारी॥
बायना दिया अच्छे घर में चतुरानन बूढ़े बाबा ने।
सठियाय गये हैं सचमुच वह यह काम किया जो ब्रह्मा ने॥
ऐसा मन में सोच कर गो, बछड़े, गोपाल।
बने आप उतने सभी कृष्णचन्द्र तत्काल॥
जैसे थे जिस रंग के जितने बछड़े और—
गउएँ सब वैसे वहाँ देख पड़े उस ठौर॥
ग्वाल बाल जिस रूप के जितने जैसे जौन।
उतने वैसे ही वहाँ देख पड़े सब तौन॥
बंशी-धुन करते हुए निज रूपों के साथ।

पहुँचे ब्रज भीतर मगन गोपालक ब्रजनाथ ॥
वंशी का शब्द श्रवण करके गउओं के स्नेह उमड़ आया ।
ब्रजबालाओं के भी मन में एकाग्र प्रेम छिन में छाया ॥
श्रीकृष्ण-रूप निज बछड़ों से मिलने को गउएँ दौड़ पड़ीं ।
रस्सों को उछल उछल करके मग ही में पगही सहित अड़ीं ॥
वे लगीं चाटने बच्चों को, था रोम रोम में स्नेह भरा ।
गोपियाँ देख निज बालों को पुलकित हो उठीं अतीव त्वरा ॥
बिठला कर उनको गोदों में मुख लगीं चूमने फिर उनका ।
था प्रेम कृष्ण पर जैसा बस वैसा ही देखा थिर उनका ॥
यह देख तमाशा बलदाऊ हो उठे चकित अपने मन में ।
ऐसा तो दृश्य नहीं देखा दाऊ ने अहो कभी बन में ॥
फिर मन में अपने सोच यही, होगी यह भी प्रभु की लीला ।
इस ओर विचार हुआ जो था कर दिया उन्होंने वह ढीला ॥
यों बीते कुछ एक दिन होते यह भ्रम जाल ।
ब्रह्मा आये देखने ब्रज की दशा बिहाल ॥
उस दिन दाऊ थे नहीं बन को गये अनन्त ।
जिस दिन यह लीला हुई थी संध्या पर्यन्त ॥
ब्रह्मा के आधे पल का भी बीता शतांश था नहीं जभी ।
पृथ्वी पर बीत गये कुछ दिन आये बस ब्रह्मा यहाँ तभी ॥
देखा घबरा कर विधना ने उतने ही वैसे ही वन में ॥
बालक बछड़े दिख पड़ते हैं क्रीड़ा करते हर्षित मन में ॥

आश्चर्य चकित हो चित्र सदृश आँखों को फाड़-फाड़ करके।
वह बार बार थे देख रहे फिर लोक गये अपने डर के॥
देखा तो वहाँ सभी बालक बछड़ों के साथ पड़े सोते।
माया में मोहित बेसुध सब कुछ भी हैं नहीं सजग होते॥
आकुल होकर चतुरानन तब हाथों से उन्हें टटोल टटोल।
देखने लगे भौचक्के से उनके मुँह से निकले ये बोल—
यह क्या सपना मैं देख रहा, बालक बछड़े तो यहाँ पड़े।
फिर अभी अभी बृन्दावन में मैंने देखे क्या खड़े खड़े॥

मुझको क्या भ्रम हो रहा, या दोनो हैं सत्य।
मेरा ज्ञान अमोघ है छुए न उसे असत्य॥
जाऊँ देखूँ फिर भला बृन्दावन के बाल।
बछड़े अब भी हैं वहाँ, या था वह भ्रमजाल॥

यों मन में सोच विधाता ने बृन्दावन को प्रस्थान किया।
देखा तो दृश्य वही सब था, जिसने उनका हर ज्ञान लिया॥
ज्यों मकड़ी अपने जाले में जा आप जकड़ती जाती हो।
वैसे ही अपनी माया में सुध बुध ब्रह्मा जी ने दी खो॥
मूर्छा सी अपने लगी उन्हें, यह देख दया प्रभु को आई।
तब लीलामय परमेश्वर ने अपनी प्रभुता यों दिखलाई॥
देखा ब्रह्मा ने विस्मित हो बालक या बछड़े थे जितने।
सब नारायण का रूप बने दिखलाई पड़ते प्रभु उतने॥
थे श्याम वर्ण, जलयुत घन से, पीताम्बर बिज़ली सी सोहैं।

कानों में मकराकृत कुण्डल सिर पर किरीट मन को मोहे ॥
कर शंख चक्र थे गदा पद्म आँखों में अभय विराज रहा।
मुसकान सुधा सी बरसाती था कोटि सूर्य सा तेज महा ॥
चतुरानन लखते रहे गये बहुत क्षण बीत।
लगे सोचने मैं भला कैसे जाता जीत ॥
तीन लोक चौदह भवन वासी जग के जीव।
मैं महेश इन्द्रादि भी अनुगत रहे अतीव ॥
जो पल में प्रलय किया करते जिनकी इच्छा से सृष्टि हुई।
उन देवदेव की यह मुझपर कैसी अकृपा की दृष्टि हुई ॥
यह अधम अनोखा अविश्वास अपने अन्तर्यामी पर था।
संदेह अहो अविनाशी उस कारणमय निज स्वामी पर था ॥
मैं मुख अपना दिखलाऊँ क्या, अपराध हुआ मुझसे भारी।
तैयार परीक्षा लेने को हो गया दास आज्ञाकारी ॥
जो कुछ हो चलकर प्रभु की सेवा में दोषी शरणागत।
मैं दंड शीश पर लेने को जाने को इसी घड़ी उद्यत ॥
मागूँगा उनसे क्षमा, भला मुँहचोर रहूँगा मैं कब तक।
अपराधी पर प्रभु की करुणा होती ही आई है अब तक ॥
यों कहकर ब्रह्मा ब्रह्मलोक जाकर बालक बछड़े लाये।
फिर तुरत गगन से पाहि पाहि कहते पृथ्वीतल पर आये ॥
आते ही चरणों पर गिरकर। बोले—त्राहि त्राहि जगदीश्वर।
जय जय अनादि जय जय अनन्त जय महापुरुष जय दयावन्त ॥

प्रत्येक रूप के आगे थे कर जोड़े सिद्ध महर्षि खड़े।
चतुरानन इन्द्र महेश वरुण चरणों पर भक्ति समेत पड़े॥

आठो वसु पावक पवन ग्यारह रुद्र कुबेर।
भूत प्रेत राक्षस असुर करें विरद की टेर॥
सिद्ध नाग गंधर्व गण नारद व्यास महर्षि।
स्तुति करते भगवान की बड़े बड़े ब्रह्मर्षि॥

ध्रुव प्रहलाद विभीषण नामी। जनक आदि पृथ्वी के स्वामी।
सनक सनंद सनातन मुनिवर। सनतकुमार ज्ञान के आगर॥
मेरु मन्दराचल हिमवाना। त्यों कैलाश आदि गिरि नाना।
गंगा यमुना और गोमती। नदियों में उत्तम सरस्वती॥
इसी तरह त्रिभुवन के वासी। सेवा करें जान अविनासी।

देख कृष्ण भगवान की महिमा, प्रकट प्रभाव।
आँखें ब्रह्मा की खुलीं, गया मोह का भाव॥
तब वह हो लज्जित व्यथित और परम भयभीत।
स्तुति हरि की करने लगे रखकर भाव विनीत—

जय निर्गुण निर्मल निराकार। जय विविध रूप जय निर्विकार।
साकार सगुण जय जय विराट। आकाश तुम्हारा है ललाट॥

पृथ्वीमंडल पेट है, पैर हुआ पाताल।
सूर्य चन्द्र हैं नेत्र युग बाहें हैं दिगपाल॥
श्रवण दिशाएँ हैं, श्वसन श्वासा, हाड़ पहाड़।
रोम रोम सम विश्व के वृक्ष लताएँ झाड़॥
जब जब होता भूमि पर दुष्टजनों का भार।

तब तब होता आपका अंश कला अवतार ।।
मेरा जाना तत्त्व था यद्यपि यह सब नाथ ।
तो भी मायावश भिड़ा मैं प्रभु ही के साथ ।।
जो दंड उचित समझें स्वामी वह मुझको है स्वीकार सभी ।
जब दंड कठिन मैं पाऊँगा होगा मेरा उद्धार तभी ।।
इस अहंकार ने मुझे किया निज प्रभु के आगे अपराधी ।
प्रभु ने भी मुझे छकाने को इस तरह अहो चुप्पी साधी ।।
अच्छा ही हुआ सचेत हुआ, होगा अपराध न ऐसा फिर ।
यह बालक बछड़े हैं स्वामी, चरणों पर मेरा भी यह सिर ।।
ब्रह्मा के सुन यों वचन दया-दृष्टि के साथ ।
अंतर्हित बहु रूप कर हुए एक ब्रजनाथ ।।
बोले फिर क्यों आप यों करते हैं मन खिन्न ।
मुझसे क्या कुछ आप हैं किसी तरह से भिन्न ।।
मेरी ही इच्छा से प्रपंच यह रचा आपने ब्रह्माजी ।
मेरी ही इच्छा से संशय यह किया आपने ब्रह्माजी ।।
भला आप को मेरी लीला कौन बनाना इस जग में ।
जाना बूझा हुआ आपका मेरा आना इस जग में ।।
इसके सिवा प्रबल है मेरी लोकविजयिनी यह माया ।
इसका पार भला चतुरानन, कैसे किसने कब पाया ।।
बड़े-बड़ों को मेरी माया मोहित करती रहती है ।
उसकी शक्ति जगत से न्यारी, भारी महिमा महती है ।।

ग्लानि न कुछ तुम मन में लाओ, मुझको हर्ष-विषाद नहीं।
ध्यान नहीं अपमान मान का होता कभी गुमान नहीं॥
जाओ अब निज लोक को करो सृष्टि के काम।
मैं भी निज कर्तव्य कर आऊँ अपने धाम॥
ये सुन कर प्रभु के वचन ब्रह्मा हुए विशोक।
गुण गाते श्रीकृष्ण के पहुँचे अपने लोक॥
इधर गये निज गेह को कृष्ण सहित गोपाल।
अघ-वध की लीला कही, हुई मनो तत्काल॥
एक वर्ष अंतर हुआ पर मोहित सब बाल।
समझे मन में आज ही का है सारा हाल॥
यह अघ दानव का निधन जो सुनते चित लाय।
उनके फिर रहते नहीं सारे अघ-समुदाय॥

तब तब होता आपका अंश कला अवतार ॥
मेरा जाना तत्त्व था यद्यपि यह सब नाथ ।
तो भी मायावश भिड़ा मैं प्रभु ही के साथ ॥
जो दंड उचित समझें स्वामी वह मुझको है स्वीकार सभी ।
जब दंड कठिन मैं पाऊँगा होगा मेरा उद्धार तभी ॥
इस अहंकार ने मुझे किया निज प्रभु के आगे अपराधी ।
प्रभु ने भी मुझे छकाने को इस तरह अहो चुप्पी साधी ॥
अच्छा ही हुआ सचेत हुआ, होगा अपराध न ऐसा फिर ।
यह बालक बछड़े हैं स्वामी, चरणों पर मेरा भी यह सिर ॥
ब्रह्मा के सुन यों वचन दया-दृष्टि के साथ ।
अंतर्हित बहु रूप कर हुए एक ब्रजनाथ ॥
बोले फिर क्यों आप यों करते हैं मन खिन्न ।
मुझसे क्या कुछ आप हैं किसी तरह से भिन्न ॥
मेरी ही इच्छा से प्रपंच यह रचा आपने ब्रह्माजी ।
मेरी ही इच्छा से संशय यह किया आपने ब्रह्माजी ॥
भला आप को मेरी लीला कौन बताना इस जग में ।
जाना बूझा हुआ आपका मेरा आना इस जग में ॥
इसके सिवा प्रबल है मेरी लोकविजयिनी यह माया ।
इसका पार भला चतुरानन, कैसे किसने कब पाया ॥
बड़े-बड़ों को मेरी माया मोहित करती रहती है ।
उसकी शक्ति जगत से न्यारी, भारी महिमा महती है ॥

ग्लानि न कुछ तुम मन में लाओ, मुझको हर्ष-विषाद नहीं।
ध्यान नहीं अपमान मान का होता कभी गुमान नहीं ॥

जाओ अब निज लोक को करो सृष्टि के काम।
मैं भी निज कर्तव्य कर आऊँ अपने धाम ॥
ये सुन कर प्रभु के वचन ब्रह्मा हुए विशोक।
गुण गाते श्रीकृष्ण के पहुँचे अपने लोक ॥
इधर गये निज गेह को कृष्ण सहित गोपाल।
अघ-वध की लीला कही, हुई मनो तत्काल ॥
एक वर्ष अंतर हुआ पर मोहित सब बाल।
समझे मन में आज ही का है सारा हाल ॥
यह अघ दानव का निधन जोसुनते चित लाय।
उनके फिर रहते नहीं सारे अघ-समुदाय ॥

माखनचोरी लीला

७वाँ भाग

जय जय श्री राधारमण जय जय नन्द-किशोर।
जय गोपी-चितचोर प्रभु जय-जय माखन-चोर॥
अब वृन्दावनचन्द्र की लीला सुनो ललाम।
भक्तों को आनन्द हो माखनचोरी नाम॥
कृष्णचन्द्र जब और कुछ बड़े हुए तब आप।
भक्त गोपियों के लगे हरने उर के ताप॥
चाहती सभी गोपी मन में श्रीकृष्णचन्द्र की वह शोभा,
आँखों से देखा करें सदा, जिस पर मुनियों का मन लोभा॥
उनके मन में अभिलाषा थी मुरलीधर उनके घर आवें।
माखन मिसरी रुचि से अपनी अपने ही हाथों वह खावें॥
श्री नन्दनन्द आनन्दकन्द ठहरे सबके अन्तर्यामी।
गोपी गण की यह इच्छा भी प्रभु जान गये त्रिभुवनस्वामी॥
तब ग्वाल बाल एकत्र किये, सब से बोले—मित्रो, आओ।
इन सूम नारियों का माखन मनमाना लूट-लूट खाओ॥
सुन कर यह प्रभु के वचन उछल पड़े सब बाल।
लगे तालियाँ पीटने हो प्रसन्न तत्काल॥
कहा श्याम ने—इस तरह करो न भाई शोर।

जान जाय कोई कहीं होगा भंडाफोर ॥
ऐसे कर निश्चय कृष्णचन्द्र नित नई लगे लीला करने ।
माखनचोरी के मिससे वह भक्तों के मन आनँद भरने ॥
इक दिन लेकर श्रीदामा को दो एक और बालक संगी ।
श्री कृष्णचन्द्र इक गोपी के घर घुसे अचानक बहुरंगी ॥
गोपी की सास पड़ी अंधी, थी नन्द गई पति के घर को ।
थी एक जिठानी, वह भी तो इक रोज सिधारी पीहर को ॥
स्वामी उसका था हाट गया घर का सौदा कुछ लाने को ।
था जेठ ठेठ अक्खड़ वन को गउएँ ले गया चराने को ॥
गोपी भी ले दधि की मटकी बेचने चली व्रज की मग में ।
यह देख सुअवसर श्याम गये कुछ ग्वाल बाल लेकर सँग में ॥

बाहर था ताला लगा थे दृढ़ बन्द किवाड़ ।
चार ओर ऊँची खड़ी थी दिवाल की आड़ ॥
हरि ने इसका भी लिया सहज उपाय निकाल ।
एक सखा के सीस पर पहुँचा दूजा ग्वाल ॥
फिर भी जब पहुँचे नहीं पाई नहीं दिवाल ।
तब मन में यों सोचने लगे कृष्ण तत्काल ॥

कौन उपाय यहाँ पर करिए। भीतर घर के सहज उतरिए ।
इतने में इक पेड़ पुराना । जिसकी शाखा फैली नाना ॥
घर के पास देख जो पाया । दीवालों के ऊपर छाया ॥
तब उछल पड़े हर्षित होकर, "बस मार लिया, अब काम बना" ।

यों कहकर कान्हा झपट पड़े, मोटा सा उसका पकड़ तना ॥
आनन कानन में ऊपर जा फिर कूद पड़े चट आँगन में।
साथी भी उनके साथ सभी झट पहुँच गये हर्षित मन में ॥
ताले को तोड़ा और कोठरी के किंवाड़ भी खोल लिये।
सब तरफ ढूँढने लगे सभी आभूषण ही बन गये दिये ॥
देखा छीके पर माखन की मटकी लटकी है बहुत बड़ी।
पर पहुँच नहीं सकते उस तक, बाधा आगे यह एक खड़ी ॥
तब कृष्णचन्द्र ने मित्रों से यों कहा—बड़ी चातुर यह है।
माखन ऊँचे पर छीके में रक्खा इसने, देखो, वह है।

अच्छा आओ हम भी बड़े चतुर चोर हैं मित्र।
इसे लूटने के लिए रचें उपाय विचित्र ॥
यों कहकर इक ग्वाल के कन्धे ऊपर श्याम।
खड़े हुए, फिर भी बना नहीं कृष्ण का काम ॥

तब चौकी ऊँची इक लाये। उस पर ग्वाल खड़े करवाये।
दोनों के कंधों के ऊपर। पैर धरे पहुँचे तब उस पर ॥
मगर न मटकी का मुँह पाया। किये-धरे कुछ बन नहिं आया।
तब लोढ़ा ले एक बड़ा मटकी की पेंदी तोड़ दई ॥
गिर चली एक धारा उसमें वह चली नदी सी एक नई।
मुँह लगा दिया बारी बारी, जी भर सबने खूब पिय ॥
फिर बचा हुआ मक्खन हरि ने बन्दर आदिक को लुटा दिया।
चलते चलते वह मटकी भी सब तोड़ फोड़ कर दे पटकी ॥

बछड़ों बछियों को खोल दिया, फिर राह गही वंशीवट की।
फिर लगे खेलने वहाँ मौज से ऊँचा टीला टीलों का खेल॥
इस ओर गोपिका घर लौटी आकर देखा ऊधमी झमेल।
देखा सब बासन गिराये हुए औंधे पड़े,
खाट काट डाली गई ताले में न खटके।
मारे मारे फिरते हैं बछड़े व बछियाएँ,
टूटी अलगिनियाँ गिरे हैं जामें पटके।
ऊधम मचाया गया ऐसा घर भर में है,
नाचते रहे हैं मानो पूत वहाँ नट के।
मिट्टी मिला माखन लुटाया गया चारों ओर,
टूक टूक टूटे पड़े माखन के मटके।

पूछा तो एक ग्वाल से विदित हुआ सब हाल।
जिसने आते दूर से देखे वहाँ गुपाल॥
आपे से बाहर हुई समझ गई सब बात।
देन उलहना तब चली जहाँ जसोदा मात॥

वह जाकर बोली यों गोपी—मैं आज उलहना लाई हूँ।
मैय्या, मैं सच कहती हूँ, बेहद मैं गई सताई हूँ॥
मेरे घर को खाली पाकर सब ग्वाल बाल घुस गये वहाँ।
उनका मुखिया बन कान्हा ने उत्पात मचाये बड़े वहाँ॥
जो माखन ही को खाना था तो खूब पेट भर खा लेते।
माँगते आप मुझसे जाकर अथवा घर में मँगवा लेते॥

इस तरह लुटाना खाना भी इक बूँद न उसकी रह जावे।
कैसा ऊधम है तुम्हीं कहो यह हानि भला क्यों सह जावे॥

सुन गोपी के यह वचन बिगड़ यशोदा मात।
बोलीं उसको झिड़क कर—कहती है क्या बात?
तू है साह बनीं बड़ी, कान्हा मेरा चोर।
लाज तुझे आती नहीं, तू है बड़ी छिछोर॥

मेरे यहाँ लाखों गउओं का झुंड रहता है,
दूध दही माखन का सिंधु लहराता है।
ऐरे-गैरे राह-चलतों को दिया जाता दूध,
जिनसे किसी भी ब्रजवासी का न नाता है।
आज तू हमारे प्रानप्यारे पुत्र ही के लिए,
कहती है माँग के न माखन क्यों खाता है?
घर में तो कहे कहे छूता नहीं माखन है,
और तेरे घर जाके चोरी कर आता है।

जब गोपी को दी यों झिड़की रिसियानी जसुदा रानी ने।
तब कहे बचन घबरानी सी बानी में उस खिसियानी ने॥
तुम तो रानी जी बिगड़ उठीं, मेरा ही दोष बताती हो।
जो किया कन्हैया ने ऊधम उसपर विश्वास न लाती हो॥
उसको माखन खाने की तो रत्ती भर भी परवाह नहीं।
जो कभी बुलाकर देती हैं तो कहता इसकी चाह नहीं॥

टटके माखन के भरे मटके पटके फेंक।

हमें खिझाने के लिए ऊधम किये अनेक ॥
देते हैं भीतर बँधे बछिया बछड़े खोल ।
इन्दारे में डालते मय रस्सी के डोल ॥
इसी तरह यह नित्य नये उत्पात रात दिन करता है ।
अब जब तुमसे भी कुमक मिली तब भला किसे वह डरता है ॥
जसुदा ने गोपी का कहना सुन लिया, उसे फिर फटकारा ।
बोलीं—तू सब सच कहती है, है ठीक उलहना यह सारा ॥
मैं हूँ झूठी मेरा लड़का है डाकू चोर बड़ा पाजी ।
तेरा ही कहना मान लिया, तू किसी तरह हो तो राजी ॥
अब तो तू अपने घर को जा, मुझको इतना अवकाश नहीं ।
जो तुमसे झगड़ा खड़ा करूँ या लड़ा करूँ, अभ्यास नहीं ॥
मेरा नन्हा सा बच्चा है, उसको तू झूठ लगाती है ।
वह लूटेगा तेरे घर को, ऐसा गुंडा उत्पाती है ॥
जिसके आगे यह बातें तू बेतुकी कहेगी गढ़गढ़ कर ।
तुझको थूकेगा वहीं वही बस खरी-खरी खोटी कहकर ॥
इस तरह लताड़ी गई, गई गोपी उठ कर अपने घर को ।
माखनचोरी कर कृष्ण लगे करने कृतार्थ गोकुल भर को ॥
अब और एक दिन की लीला वर्णन करते हैं, सुनियेगा ।
ये सगुण रूप निर्गुण प्रभु के गुण का रहस्य मन गुनिएगा ॥
ये रत्न यत्न से परख-परख पारखी हृदय में रख देना ।
ये मोल-तोल में भारी हैं बस भक्ति भाव से ले लेना ॥

अच्छा तो आगे सुनो एक दिवस की बात।
ग्वालबाल सब साथ ले कृष्ण लगाये घात॥
गोपी एक गई कहीं माखन रखकर मौन।
दही दूध की गागरी धरी भरी थी जौन॥
देख सुअवसर इक सखा आया हरि के पास।
सूने सदन सिधारिए अच्छा अवकाश॥
सब साथी अपने छोड़ वहीं केवल बलदाऊ श्रीदामा।
ये दोनों अपने साथ लिये पहुँचे करके पूरा सामा॥
दरवाजे होकर घर भीतर जाकर फिर इधर-उधर ताका।
था कोई कहीं नहीं ग्राम सब ओ ननाका का साका॥
कुछ मिला न जब दालानों में कोठरी कृष्ण ने तब खोली।
पट खोल गये झटपट भीतर खोजने लगे माखन गोली॥
मटकियाँ कई खाली निकलीं गोरस की थी बू-बास नहीं।
सब तरफ देख बरतन छू छे फिर भी हरि हुए निरास नहीं॥
है कहीं अवश्य छिपा रक्खा इस गोपी ने चतुराई से।
मैं भी अब उसे उड़ा दूँगा क्षण भर में बड़ी सफाई से॥
मैं भी सब ढूँढ निकालूँगा माखन को छोड़ न जाऊँगा।
पाऊँगा खूब लुटाऊँगा धरती पर सभी गिराऊँगा॥
करते यों विचार निज मन में। माखन ढूँढें श्याम भवन में।
मिला न जब बाहर कुछ माखन। गये कोठरी बीच श्याम घन॥
भरी मटकिया थीं धरी, उसे देख नँदलाल।

उछल पड़े आनन्द से, बोले यों तत्काल—
दाऊ, माखन है यहाँ, गोपी गई छिपाय।
पर उसकी यह चातुरी मुझसे नहीं बसाय॥
श्रीदामा, आओ इधर, मटकी लेव टिकाय।
बाहर ले चलकर इसे जी भर लेंगे खाय॥
और बचेगा जो कुछ उसको सखा और सब खावेंगे।
फिर भी जो बच जावेगा धरती पर वह ढरका देंगे॥
गोपी को चतुराई का हम दण्ड आज यों देवेंगे।
यह याद जन्म भर रक्खेगी ऐसा बदला ले लेवेंगे॥
इस ओर श्याम मंसूबे ये थे बाँध रहे दाऊजी से।
उस ओर उधर से गोपी भी आ गई भवन में जल्दी से॥
बस देख किवाड़े खुले हुए माथा ठनका उस गोपी का।
कुछ दाल में काला है घर में, पैरा पहुँचा उत्पाती का॥
ईश्वर ही घर की कुशल करे, यों कहता वह भीतर आई।
देखा सब अस्त-व्यस्त पड़ा, धाई फिर भीतर घबराई॥
पीठ किये थे द्वार को माखन खाते श्याम।
दबे पैर पहुँची वहाँ रोष भरी ब्रज बाम॥
श्रीदामा दाऊ छिपे आती गोपी देख।
अवसर पाकर भग गये बाला कोपी देख॥
अब तो बस ब्रजराज ही रहे अकेले आप।
मुँह में उनके थी लगी माखन-चोरी छाप॥

आते ही उसने कान्हा का कर पकड़ लिया पूरे बल से।
बोली–क्यों ? अब तो पकड़ लिया ! बच जाओगे अब भी छल से ?
तुम नित्य सभी के घर जाकर माखन की चोरी करते हो।
है राज्य तुम्हारा ही जैसे ऐसे बरजोरी करते हो ॥
माखन ही जो खा लेते तुम तो भी हम ऊधम सह लेतीं।
जितना तुमसे खाया जाता उतना हम तुमको दे देतीं ॥
पर तुम तो करते हो हानि बड़ी, यों नाक में दम कर रक्खा है।
लुढ़काया है सारा माखन, केवल थोड़ा सा चक्खा है ॥
हम मिलकर ब्रज की सब गोपी उत्पात नहीं करने देंगी।
राजा है कंस बड़ा न्यायी, बस शरण उसी की हम लेंगी ॥

तुमको हम यों ही पकड़ राजा के दरबार।
ले जावेंगी आज ही वहाँ पड़ेगी मार ॥
तभी तुम्हारा यह सभी ऊधम और प्रताप।
देख पड़ेगा फिर नहीं, सीधे होंगे आप ॥
सुन गोपी के यह वचन कृष्णचन्द्र महराज।
बोले—क्यों बकती वृथा, तुझे न आती लाज ?
भरी जवानी में ऐसी करती अपनी बात।
गली गली है घूमती इठलाती दिन रात ॥

सूना घर तेरा पड़ा हुआ हमने देखा तो आये थे।
मालूम नहीं किसने आकर बरतन भाँड़े लुढ़काये थे ॥
बंदर अंदर थे भरे हुए, यह ऊधम उनका सारा है।
हमने तो की है रखवाली सामान सँभाला सारा है ॥

यह कपड़े पड़े अलगनी में इनकी ऐसी दुर्गति होती ।
हम नहीं बचाते तो आकर अपने कर्मों को तू रोती ॥
एहसान मानना भूल गई, उलटे यों डाँट बताती है ।
हम राजों के राजा हैं, हमको चोरी बेहया लगाती है ॥
क्या कंस हमारा कर लेगा, क्या तू हमको धमकाती है ।
हम देख लेयँगे उसको भी वह बड़ी जल्द ही आती है ॥

गोपी ने हँसकर कहा—बड़े वीर हैं आप ।
जग जाहिर है आप का विक्रम और प्रताप ॥
वीर अहीर तुम्हीं हुए कंस नृपति के काल ।
चलो जसोदा से कहूँ पहले सारा हाल ॥
यों कहती गोपी पकड़ कृष्णचन्द्र का हाथ ।
नन्दराय के घर चलीं बड़ी तमक के साथ ॥

गोपी ने यह जान न पाया । कौन जान सकता प्रभु-माया ।
बड़े-बड़े ऋषि मुनि भरमाये । शिव विरंचि भी जान न पाये ।
तब फिर वह साधारण नारी । जान सके क्या भला विचारी ।
यों लगी उलहना तब देने जाते ही गोपी जसुदा को ।
तुम नहीं मानती थीं रानी लाई हूँ गह कर कान्हा को ॥
दाऊ भी थे श्रीदामा था, वे मुझे देख कर भाग गये ।
कान्हा को मैंने पकड़ लिया, देखो अब तो यह चोर भये ॥

सुनकर गोपी के बचन, बोली जसुदा मात ।
आँख खोल कर देख तो दिन है अरी, न रात ॥

सुनीं यशोदा की बातें गोपी ने घबराकर देखा ।

तो कृष्णचन्द्र के बदले में निजकर में सुत का कर देखा ॥
घबराकर तब तो वह बोली—यह तो अचरज की बात हुई ।
मैंने पकड़ा था कान्हा को, यह कैसे दिन की रात हुई ॥
मेरा ही लड़का देख पड़े, कुछ कहा न मुझसे जाता है ।
रानी मैं सच कहती कुछ   में आता है ॥

कुपित जसोदा ने कहा—हुई बावली आज ।
मेरे बच्चे को दोष दे तुझे न आवे लाज ॥
रोग रतौंधी का सुना जाता था, पर आज ।
तुझे दिनौंधी हो गई, पड़ी समझ पर गाज ॥

जा, जा, जा, अपने घर को, मैं सुना चाहती और नहीं ।
यों मस्ती दिखलाने को क्या तुझे और है ठौर नहीं ॥
इठलाकर जोश जवानी का दिखलाना हो तो और कहीं ।
कोई जवान तू देख नया, मेरा बच्चा इस जोग नहीं ॥
नँदरानी की इस झिड़की से झेपी व्रजबाला वह मन में ।
कुछ बात न फिर मुँह से निकली गोपी के पक्ष-समर्थन में ॥
कुछ देर तलक सन्नाटे में पत्थर की मूरत बनी रही ।
फिर गोपी बोली जसुदा से—मेरी रानी जी, यही सही ॥
अबकी तो बेशक चूक गई, मैंने भारी धोखा खाया ।
चालाक कन्हैया ने मुझको उलटे यों उल्लू बनवाया ।
भोले भाले इस लड़के को फुसलाया और निकल आया ।
मौके से हाथ छुड़ाया फिर इसका कर मुझको पकड़ाया ॥
होगा, जाने दो, और कभी मैं पकड़ इन्हें जो पाऊँगी ।

तुमको लाकर दिखलाऊँगी, करनी का दंड दिलाऊँगी ॥

आदत है इनकी यही, ऐसे ही हैं काम।
कसर निकालूँगी तभी सभी दिनों की श्याम ॥

नन्दभवन से जब निकल आई बाहर बाम।
तब मग में उसको मिले हँसते श्री घनश्याम ॥

देख उन्हें जल उठी गोपिका बोली बानी क्रोध भरी।
तुम खूब हँसी हँस लो इक दिन निकलेगी सारी मुटमर्दी ॥
बच गये आज यों छल करके कौशल यह कब तक चल सकता।
आँखों में धूल झोंक कोई कब तलक किसी को छल सकता ॥
सौ दिन सुनार की एक दिना होगी लुहार की चोट कड़ी।
मालूम तुम्हें हो जावेगा कबुला लेंगी सब खड़ी-खड़ी ॥
ब्रजबालाएँ नन्द महर जी से सब हानि उसी दिन भर लेंगी।
जो कुछ करना होगा हमको सब जी भर कर तब कर लेंगी ॥
बोले कान्हा—क्यों बढ़-बढ़कर बातें बेकार बनाती है।
लड़के की चोरी छिपा रही औरों को चोर बताती है ॥
जो कुछ तुमसे बन पड़े वही कर लेना, डर है मुझे नहीं।
तुमको मैं लाख चुनौती दूँ, डरता हूँ कुछ भी तुझे नहीं ॥

कृष्णचन्द्र इस तरह कह गये कुंज की ओर।
गोपी भी घर को गई भजती नन्दकिशोर ॥

माखनचोरी की कथा जो सुनता मन लाय।
सब सुख पाकर अंत को परमधाम को जाय ॥

बकासुर-वध और वत्सासुर-वध

८ वाँ भाग

दुष्ट दलन जसुमति ललन भगतन के रखवार।
पूरन हरि अवतार जिन हर्‌यो भूमि को भार॥
मायावी दानव बड़े कंस असुर के दास।
जो आये ब्रज में कियो तिनको तुरत विनास॥
अब सुनिये ज्यों बक असुर मर्‌यो कृष्ण के हाथ।
ब्रजवासिन को सुख मिल्यो साथी भये सनाथ॥

जब प्रबल पूतना पापिन के प्रिय प्राण गये हरि के हाथों।
तब मन में कंस हुआ व्याकुल, क्या मरना है अरि के हाथों॥
इतना सा नन्हा बच्चा ही जब ऐसा अद्‌भुत कर्म करे।
वह बालघातिनी बड़ी विकट पूतना, न उसको तनिक डरे॥
हाथों से उसके पल भर में राक्षसी काल का कौर हुई।
मुझको तो याद नहीं ऐसी घटना हो कोई और हुई॥
वह विष का बुझा हुआ बालक जीने देने के योग्य नहीं।
कुछ दिन में और बड़ा होगा फिर संभव उसकी मृत्यु नहीं॥
जो कुछ हो, जैसे बने, अभी अपना यह कंटक दूर करूँ।
पूरे बल से छल कौशल से यह चिंता चित की चूर करूँ॥

बक असुर बुला भेजा उसने इस तरह सोच मन में अपने।
दम भर में शत्रु-नाश निश्चय कर लगा देखने सुख-सपने ।।

स्वामी की आज्ञा सुनी हुआ बहुत संतुष्ट ।
भूप-कृपा अनुमान कर चला बकासुर दुष्ट ।।
सादर उसका कर पकड़ नीतिनिपुण नृप कंस ।
बोला—तुम ही कर सको मित्र, शत्रु-विध्वंस ।।
इसीलिए मैंने तुम्हें बुलवाया है आज ।
कहो, कर सकोगे भला मेरा इतना काज ?

अभिमानी मानी बक दानव बोला घमंड से भरे वचन—
स्वामी, यह बात बड़ी क्या है ? क्यों आप उदास किये हैं मन ?
किसके सिर मौत सवार हुई, किसको यमराज बुलाते हैं ?
किसकी अब आयु रही थोड़ी, किसके दिन अंतिम आते हैं ?
महाराज, नाम उसका कहिए, मैं उसे अभी जाकर मारूँ ।
अपना जीवन तन मन धन सब स्वामी के ऊपर मैं वारूँ ।।
सुन ये उत्साह-भरी बातें बोला नृप कंस बकासुर से ।
शाबास मित्र, तुम निडर रहो, जानूँ मैं, मनुज सुरासुर से ।।
यह बात ज्ञात तुमको होगी, देवकी-तनय से भय मुझको ।
बस इसी लिए उस बालक से रहता हरदम संशय मुझको ।।

ब्रज में रहता एक है नन्द नाम का गोप ।
उसका सुत है शत्रु मम, चाहूँ उसका लोप ।।
पुत्र नहीं वह नन्द का, रख आये वसुदेव ।

यह मुझको बतला गये आकर नारद देव ॥
उसने मारे पूतना तृणावर्त से वीर ।
मुझको है अब कर रहा उसका ध्यान अधीर ॥
जिस तरह बने उसको जाकर तुम छल बल कौशल से मारो ।
यह काम मित्र का मित्र, करो असुरों की माया विस्तारो ॥
बच सकता तुमसे कभी नहीं, विश्वास मुझे यह पूरा है ।
तुमने कर डाले काम बड़े, कोई छूटा न अधूरा है ॥
बोला फिर वचन वकासुर यों—स्वामी, मैं ब्रज को जाता हूँ ।
उस शत्रु तुम्हारे बालक को बस मार इसी दम आता हूँ ॥
स्वामी का प्रबल प्रताप बड़ा, सुन नाम देव थर्राते हैं ।
कर जोड़े भेंट लिये आगे दौड़ते स्वर्ग से आते हैं ॥
यह नन्हा सा नर-बालक क्या अपकार अजी कर सकता है ।
स्वामी के एक इशारे से जैसे मच्छड़ मर सकता है ॥
यों ढाढस कंसासुर को दे पूतना-अनुज बक विकट बड़ा ।
ब्रजमंडल यात्रा करने के लिए उसी दम हुआ खड़ा ॥
था भारी उसका वह शरीर यक योजन तक घेरता हुआ ।
थे दोनों पंख हजारों गज जिनको वह था फेरता हुआ ॥
थे पैर ताड़ के पेड़ सदृश, उनमें उँगली जैसे हल हों ।
नाखून नुकीले काँटे से भयभीत कर रहे चंचल हों ॥
वह चोंच नोच ले अंगों को ज्यों कठिन काल की चुटकी थी ।
जिसने लाखों की आयु-डोर बरजोरी खींची खुटकी थी ॥

उसका विकट शरीर लख होते वीर अधीर।
था पहाड़ ज्यों उड़ रहा नभमंडल को चीर॥
पलक मारते वह असुर पहुँचा ब्रज के बीच।
लगा कृष्ण की घात में आप मृत्युवश नीच॥
सुन्दर वन में छा रही शोभा प्रातःकाल।
बछड़े लेकर साथ में विचर रहे सब ग्वाल॥
बहु साल तमाल ताल के तरुवर जिनकी छाया सुखद घनी।
मौलसिरी पीपल बरगद थे शोभा जिनकी अधिक बनी॥
लता-वितान तने थे चहुँ दिशि मन्द सुगंध पवन चलती।
पथिक बैठ विश्राम कर रहे, लम्बी राह नहीं खलती॥
बंदर बच्चे-बच्चे लेकर उछल-कूद थे मचा रहे।
हिरने झुंड बनाकर चरते चपल चौकड़ी दिखा रहे॥
हरी हरी थी घास घनी ज्यों फर्श मखमली बिछा हुआ।
चारो ओर पुष्प थे विकसित गुल्लाला सा खिला हुआ॥
चिड़ियाँ चहक रही अति सुन्दर जिनकी बोली मन हरती।
बैठी आम-डाल पर कोयल कुहू कुहू कूका करती॥
फैलाये निज पंख मनोहर मोर नाचते मस्त हुए।
कुंज-अंधेरी को घन समझे, सुख-सामान समस्त हुए॥
धूप सुनहरी छन छन आती पत्तों के भीतर होकर।
हरी घास पर धूप सुनहरी चमक रही थी इधर उधर॥
जैसे धरती ने हरी सारी पहनी, वाह!

बेल बूटियाँ सुनहरी उसमें बनी अथाह ॥
ऊँचे टीले सोहते कालिन्दी के फूल ।
उन पर नाना रंग के फूल रहे सब फूल ॥
वालू की बेला विमल बड़ी ओर से छोर ।
चाँदी का सा चौतरा चमक रही चहुँ ओर ॥

सब ग्वाल बाल बछड़े छोड़े आपस में क्रीड़ा करते थे ।
वे दूर-दूर तक उस वन में मनमाना खूब बिचरते थे ॥
थे कहीं कबड्डी खेल रहे, ऊँचा टीला खेले कोई ।
थी लुकीलुकैया कहीं रची हो चोर कष्ट झेले कोई ॥
खेलता कहीं कोई गोली गेंड़ी गुल्लीडंडा होता ।
कोई बालक लड़ता भिड़ता गरमाता फिर ठंडा होता ॥
कुछ गेंद-धड़क्का खेल रहे धक्कामुक्की धींगामुश्ती—
करते थे, छीना-झपटी में लड़ने लगता कोई कुश्ती ॥
इस तरह मौज में मस्त हुए सब बालक क्रीड़ा करते थे ।
लड़ते भिड़ते फिर हँसते थे सानन्द प्रसन्न विचरते थे ॥

इतने में बालक कई पहुँचे यमुना-तीर ।
जहाँ बकासुर था विकट बैठा विपुल शरीर ॥
देख उसे तो कुछ डरे, कुछ भागे घबराय ।
कुछ अचेत हो गिर पड़े, दशा न कुछ कह जाय ॥
कुछ बालक जो ढीठ थे, डटे रहे उस ठौर ।
बातें यों करने लगे आपस में कर गौर ॥

उसका विकट शरीर लख होते वीर अधीर।
था पहाड़ ज्यों उड़ रहा नभमंडल को चीर॥
पलक मारते वह असुर पहुँचा ब्रज के बीच।
लगा कृष्ण की घात में आप मृत्युवश नीच॥
सुन्दर वन में छा रही शोभा प्रातःकाल।
बछड़े लेकर साथ में विचर रहे सब ग्वाल॥

बहु साल तमाल ताल के तरुवर जिनकी छाया सुखद घनी।
मौलसिरी पीपल बरगद थे शोभा जिनकी अधिक बनी॥
लता-वितान तने थे चहुँ दिशि मन्द सुगंध पवन चलती।
पथिक बैठ विश्राम कर रहे, लम्बी राह नहीं खलती॥
बंदर कच्चे-बच्चे लेकर उछल-कूद थे मचा रहे।
हिरने झुंड बनाकर चरते चपल चौकड़ी दिखा रहे॥
हरी हरी थी घास घनी ज्यों फर्श मखमली बिछा हुआ।
चारों ओर पुष्प थे विकसित गुल्लाला सा खिला हुआ॥
चिड़ियाँ चहक रही अति सुन्दर जिनकी बोली मन हरती।
बैठी आम-डाल पर कोयल कुहू कुहू कूका करती॥
फैलाये निज पंख मनोहर मोर नाचते मस्त हुए।
कुंज-अंधेरी को घन समझे, सुख-सामान समस्त हुए॥
धूप सुनहरी छन छन आती पत्तों के भीतर होकर।
हरी घास पर धूप सुनहरी चमक रही थी इधर उधर॥
जैसे धरती ने हरी सारी पहनी, वाह!

बेल बूटियाँ सुनहरी उसमें बनी अथाह ॥
ऊँचे टीले सोहते कालिन्दी के कूल ।
उन पर नाना रंग के फूल रहे सब फूल ॥
बालू की बेला विमल बड़ी ओर से छोर ।
चाँदी का सा चौतरा चमक रही चहुँ ओर ॥

सब ग्वाल बाल बछड़े छोड़े आपस में क्रीड़ा करते थे ।
वे दूर-दूर तक उस बन में मनमाना खूब विचरते थे ॥
थे कहीं कबड्डी खेल रहे, ऊँचा टीला खेले कोई ।
थी लुकीलुकैया कहीं रची हो चोर कष्ट झेले कोई ॥
खेलता कहीं कोई गोली गेंड़ी गुल्लीडंडा होता ।
कोई बालक लड़ता भिड़ता गरमाता फिर ठंडा होता ॥
कुछ गेंद-धड़क्का खेल रहे धक्कामुक्की धींगामुश्ती—
करते थे, छीना-झपटी में लड़ने लगता कोई कुश्ती ॥
इस तरह मौज में मस्त हुए सब बालक क्रीड़ा करते थे ।
लड़ते भिड़ते फिर हँसते थे सानन्द प्रसन्न विचरते थे ॥

इतने में बालक कई पहुँचे यमुना-तीर ।
जहाँ बकासुर था विकट बैठा विपुल शरीर ॥
देख उसे तो कुछ डरे, कुछ भागे घबराय ।
कुछ अचेत हो गिर पड़े, दशा न कुछ कह जाय ॥
कुछ बालक जो ढीठ थे, डटे रहे उस ठौर ।
बातें यों करने लगे आपस में कर गौर ॥

कहा किसी ने यह पहाड़ है नया बनाया चूने का।
गोवर्धन गिरिराज हमारा हैगा इसी नमूने का॥
कहा किसी ने—नहीं मित्र, यह धरती पर की वस्तु नहीं।
आसमान पर से है उतरा अद्भुत रूप पदार्थ यहीं॥
कहा किसी ने—यह अंडा है किसी स्वर्ग के पक्षी का।
कहा किसी ने—यह पृथ्वी के दिया किसी ने है टीका॥
ऐसे तर्क-वितर्क कर रहे सब कोलाहल मचा रहे।
ताली पीट चले आगे को नया खेल सा रचा रहे॥
कुछ बालक जो बड़े वयस में समझदार थे, वे बोले—
नहीं देखते, यह बगला है गला उठाये मुँह खोले।
उड़ने ही को है यह जैसे दोनों पर ऊपर तोले।
समझे-बूझे बिना भाइयो, खबरदार जो तुम डोले॥
क्या जाने क्या आफत ढावे, क्या विपत्ति ऊपर आवे।
कोई बालक पास न इसके हरगिज अभी उधर जावे॥
पहले जाकर कृष्ण को समाचार यह देव।
फिर आकर इस जीव की खबर सभी मिल लेव॥
सबके मन भाई तुरत यह सलाह, तब बाल।
पहुँचे बैठे थे जहाँ बलदाऊ नँदलाल॥
बोले सब श्रीकृष्ण से—सुनिये प्यारे मित्र।
हम सब ने जाकर अभी देखा दृश्य विचित्र॥
बहुत बड़ी है वस्तु यह बगला रूप विशाल।

देख उसे डर लग रहा ऐसा है विकराल ॥
चलकर देखो तो नन्दलाल, क्या चीज कहाँ से आई है।
सुखदाई होगी हम सबको, अथवा अनर्थ दुखदाई है ॥
सोचे श्रीकृष्ण, चलें देखें किसकी कैसी क्या लीला है।
मायावी असुरों का ही कुछ मायामय हमला, हीला है ॥
कोई है असुर अगर आया तो उसको मौत यहाँ लाई।
पूतना सदृश वह भी पल में मर जावेगा अब दुखदाई ॥
गोपियाँ गोप गौएँ गोकुल इनके हम ही रखवारे हैं।
उन पर आने की आँच नहीं, ब्रजवासी हमको प्यारे हैं ॥
मैंने अवतार इसी कारण इस पृथ्वी पर इस समय लिया।
भू-भार उतारूँ खल मारूँ मैंने मन में प्रण यही किया ॥
इस तरह सोचकर कृष्णचन्द्र बोले लड़कों से मधुर वचन—
हाँ चलो मित्र, मैं भी चलकर कर लूँ उसके अद्भुत दर्शन ॥
यों कहकर श्रीकृष्ण जी बलदाऊ के साथ।
लिये सखा साथी सभी चले उधर ब्रजनाथ ॥
जहाँ बकासुर दुष्ट वह मन में बड़ा प्रसन्न।
बैठा था निज घात में, माया से प्रच्छन्न ॥
देख दूर ही से उसे समझ गये नँदलाल।
अनुज पूतना का विकट बक है यह विकराल ॥
देख कृष्ण को उधर बकासुर लगा सोचने यों मन में—
बस यही शत्रु है स्वामी का, मिल गया सहज ही इस वन में ॥

मैं आज मनुज का मांस मधुर जी भरकर खुश हो खाऊँगा ।
हाँ बहुत दिनों के बाद अहो नर-रुधिर से प्यास बुझाऊँगा ॥
नादानो, काल तुम्हारा हूँ ; मेरे भोजन, आओ आओ ।
पल भर में चट कर जाऊँगा, यह संभव नहीं कि बच जाओ ॥
यों उधर बकासुर मंसूबे बाँधता हुआ था फूल रहा ।
पाखंडी घोर घमंडी वह विधि के विधान को भूल रहा ॥
जो त्रिभुवन का सिरजनहारा रखवारा और विनाशक है ।
जो सारे जग के जीवों में बल-विद्या-बुद्धि-विधायक है ॥
जिसके बस एक इशारे से संहार त्रिलोकी का होता ।
यह सारा विश्व विवश होकर अस्तित्व अलग अपना खोता ॥
उस महाकाल महिमामय को मायावी मारा चहता है ।
सच है, विनाश के अवसर पर मन में विवेक कब रहता है ॥
श्रीकृष्णचन्द्र ने लड़कों को बस उसी जगह पर रोक दिया ।
मारना बकासुर का मन में ब्रजपालक प्रभु ने ठान लिया ॥

लड़कों को रोका वहीं, गये निकट फिर आप ।
एक दृष्टि में हर लिया उसका सकल प्रताप ॥
चोंच खोलकर तब असुर कर कोलाहल घोर ।
चला क्रोध मन में किये कृष्णचन्द्र की ओर ॥
खड़े रहे श्रीकृष्णजी, किया न कुछ प्रतिकार ।
निगल गया उनको असुर छाया हाहाकार ॥

खड़े गगन में देवों ने तब हाहाकार किया भारी ।

वे भूल गये श्रीकृष्णचन्द्र कैसे अजेय हैं बलधारी ॥
श्रीकृष्ण कंठ में जब पहुँचे तब गरम अग्नि के सदृश हुए।
यह हुआ असंभव कोई भी उनके उस तन को तनक छुए ॥
जलने जब लगा गला उसका, तब व्याकुल होकर राक्षस ने।
श्रीकृष्णचन्द्र को उगल दिया, श्रीकृष्ण लगे तब यों हँसने ॥
इस पर होकर आगबबूला घोर शब्द दानव करके।
पंख उठाये दौड़ पड़ा सब ग्वालबाल भागे डरके ॥
किन्तु निडर श्रीकृष्णचन्द्र ने झपट चोंच उसकी पकड़ी।
किये बीच से दो टुकड़े तब जैसे फट जाती ककड़ी ॥
सभी देवता थे विमान पर बैठे लीला देख रहे।
दानव का वध देख उन्होंने हो प्रसन्न यों वचन कहे—
जय जय अजेय, जय कृष्णचन्द्र, जय देवकाज करनेवाले।
जय जगत्पिता आनन्दकंद भूभार सदा हरने वाले ॥

फूलों का वर्षा हुई जय-जय ध्वनि के साथ।
बजे नगाड़े स्वर्ग में, सब सुर हुए सनाथ ॥

रंभा आदि अप्सरा मिलकर। मंगल गान करें सुमनोहर।
ऋषि-मुनि देने लगे बधाई। नृत्य गीत ध्वनि चहुँदिशि छाई ॥
बड़े-बड़े गन्धर्व निपुण अति। बाजे लगे बजाने बहु गति।
बक का निधन देख ग्वालबाल गले मिले,
कान्हा को बढ़ावा लगे देने शोक तज के।
उत्सव मनाने चले घर ओर आते वन-

फूलों के सुहाते नये-नये साज सज के।
धन्य उनके हैं भाग खेलें कृष्णचन्द्र साथ,
ऋषि-मुनि जिनके हैं चेरे पदरज के।
आकर सुनाई कथा सबने सुहाई,
सुन विस्मय में डूबे सभी गोपी गोप ब्रज के ॥

रक्षा की है कृष्ण की हो देवता सहाय।
यही सोच हरि को सभी मन में रहे मनाय ॥
तुरत बुलाये विप्रवर ब्रज के सब विद्वान।
शांति स्वस्त्ययन नन्द ने करवाया सुमहान ॥
उत्सव घर-घर में हुए जप तप पूजा पाठ।
ब्रज-बीची बिच विचरते ग्वाल बाल कर ठाठ ॥
बक-वध की सुन्दर कथा जो सुनते चित लाय।
सदा सुखी जग में रहें अंत परम गति पाय ॥
निधन बकासुर का हुआ हरषे सुर समुदाय।
वत्सासुर-वध की कथा अब सुनिये मन लाय ॥
जो दो आये थे असुर विकट बकासुर संग।
भागे भय-विह्वल हुए देख रंग में भंग ॥
घबराये आये निरख निज भृत्यों को कंस।
समझ गया मन में तुरत हुआ असुर-विध्वंस ॥
बोला तब अनुचरों से कंस—अरे इस तौर,
घबराये गिरते हुए आते हो क्यों दौर ॥

क्या हुआ, बकासुर कैसा है, उसका दिखता कुछ पता नहीं।
क्या उसने मारा है अरि को, विश्राम कर रहा आप वहीं ॥
तुम आये देने समाचार इस तरह दौड़ते हुए यहाँ।
कुछ भी हो जल्दी कह डालो है विकट बकासुर वीर कहाँ ॥
सुनकर बोले घबराये से लम्बोदर लम्बकरन दोनों—
सुनिए स्वामी, ले प्राण भगे हम तो रख शीश चरन दोनों ॥
वह बालक कहने ही को है, विष-बुझा बड़ा वह नटखट है।
जिससे वह हारे या उसको जो मारे वह दुर्लभ भट है ॥
बक वीर विकट का वध उसने देखते देखते कर डाला।
वह बाल न बाँका कर पाया, था पड़ा मौत ही से पाला ॥
हम भागे उसके आगे से दौड़ते हुए ही आये हैं।
जो जान पड़े जल्दी करिए सब समाचार सुन पाये हैं ॥

सुनकर असुरों के वचन महाप्रतापी कंस।
भय से विह्वल हो उठा, जाना निज विध्वंस ॥
पर न प्रकट होने दिया अपने मन का भाव।
लाल-लाल लोचन लिये ललकारा—बस जाव !
कायर हो, डरपोक हो, तुम दोनों ही दुष्ट।
कुशल कहाँ उसकी अरे जिससे मैं हूँ रुष्ट ॥
कहाँ तुच्छ वह छोकरा, कहाँ प्रतापी कंस।
कौन बड़ाई जो करूँ मैं उसका विध्वंस ॥

इसी लिए मैंने अबतक और ही और को मार दिया।

यह भी है करनी देवों की, बालक ने सबको मार दिया ॥
अब मैं भेजूँगा ऐसे को जो उसे मारकर ही आवे ।
जिसके बल-विक्रम के आगे वह बालक बस घबरा जावे ॥
वत्सासुर को तुम ले आओ, मैं उसको ब्रज में भेजूँगा ।
जितने मेरे अनुचर मारे उन सबका बदला ले लूँगा ॥
सुनकर यह आज्ञा स्वामी की दोनों दानव द्रुत दौड़ पड़े ।
वत्सासुर से सब हाल कहा दरवाजे पर ही खड़े-खड़े ॥
वत्सासुर झटपट झपटा जाने की कर ली तैयारी ।
राजा के पास हुआ हाजिर फिर वीर शिरोमणि बलधारी ॥
राजा ने उसे बढ़ावा दे वृत्तांत अन्त तक बतलाया ।
उत्साहित किया बहुत कुछ फिर संपूर्ण भरोसा जतलाया ॥
वत्सासुर भी ब्रज जाने को । शत्रु मार कर ही आने को ।
प्रस्तुत हुआ, कहा भूपति से । जाता हूँ प्रभु की अनुमति से ॥
कृपा आपकी मुझ पर भारी । निश्चय होगी विजय हमारी ।
यों कहकर वत्सासुर ब्रज को । चला शीश रख प्रभु पदरज को ।
वज्र के समान अंग उसके कठोर सभी,
पूँछ को उठा के आसमान से मिला दिया ।
खोदता खुरों से भूमि धूल को उड़ाता हुआ,
सींग दोनों ताने जैसे शंकर का नाँदिया ।
करता उपद्रव उखाड़ तोड़फोड़ पेड़,
जान पड़े जैसे मद किसी ने पिला दिया ।

खोल लाल लोचन निकाल देखे चारो ओर,
घोर-रव दानव ने जग को हिला दिया।
धूल उड़ी इतनी कि बादल उसी के छाये,
देख नहीं पाता कोई हाथ और पग को।
देवता दहल उठे चहलपहल गई,
सहल न जीना हुआ विह्वल विहग को।
भरता कुलाँचें ऐसी हिल-हिल जाती मही,
सह न सके हैं शेष एक एक डग को।
अस्तव्यस्त करके समस्त ब्रजमंडल को,
मस्त वृषभासुर ने त्रस्त किया जग को॥

यों उत्पात मचाता दानव विकट शब्द कर रहा बड़ा॥
आकर ब्रज के मग में यम सा महा भयंकर हुआ खड़ा।
उस दहाड़ से पेड़ फट पड़े गर्भ गिरे अबलाओं के॥
फिसल पड़े दिग्गज घबराये जो आधार दिशाओं के॥
बच्चे चौंक पड़े सोते से, दहल गईं माताएँ भी।
श्वानों के कानों के परदे फट-फट गये, शिलाएं भी—
चिटक-चिटक कर छिटक-छिटक कर दूर-दूर जा गिरीं अहो।
कहने लगे लोग आपस में मरने को तैयार रहो॥
महाप्रलय का समय आ गया, नहीं बचेगा कोई भी।
अपनी अपनी पड़ी सभी को, साथ न देगा कोई भी॥
इधर जगत का हाल बुरा था, उधर कृष्ण के सखा डरे।

कहने लगे अचानक कैसी यह आफत आ गई अरो ।

देखो देखो आ रहा कैसा अद्भुत बैल ।
लाल-लाल आँखें किये छेके सारी गैल ॥
बैल नहीं, यह भी कोई वैसा ही उत्पात ।
जैसे अबतक आ चुके बार-बार कर घात ॥
कान्ह इसे भी मारकर कर देंगे विध्वंस ।
यह क्या, मारा जायगा जो आवेगा कंस ॥
दूर वहाँ से कृष्ण थे बंशीवट के तीर ।
अधर धरे मुरलीमधुर सुन्दर श्याम शरीर ॥
होकर वह निश्चित से पूरन आनँद-कंद ।
राग अलाप रहे विविध मंद मंद व्रजचन्द ॥

इतने में उनके कई सखा घबराये से दौड़े आये ।
हे कृष्ण ! कृष्ण ! हम ग्वालबाल वेहोश हो रहे भय पाये ।
यह देखो बैल बड़ा भारी उत्पात मचाता आता है ।
खोदता खुरों से खुरपो सा धरती को, दुन्द मचाता है ॥
सींगों से पेड़ पुराने ये जड़सहित उखाड़ पछाड़ रहा ।
कानों के परदे फाड़ रहा ऐसा विकराल दहाड़ रहा ॥
गउएँ बछड़े सब काँप रहे पक्षी वृक्षों पर एक नहीं ।
इससे रक्षा व्रज की करिए, वह देखो आता दुष्ट यहीं ॥
सुनकर बातें प्रिय ग्वालों की हँस दिये कृष्ण बलधान महा ।
फिर ढाढस देते उन सबको मृदु वचनों से इस तरह कहा ॥

घबराते हो किस लिए जैसे अब तक और—
दुष्ट आप ही हैं मरे हुए काल के कौर ॥
वैसे ही यह नीच भी मरने आया आप।
खा जावेगा बस इसे मित्र, इसी का पाप॥
जो कोई निर्दोष को चहे सताना व्यर्थ।
करना चाहे विश्व में कोई बड़ा अनर्थ॥
ईश्वर उसको शीघ्र ही दे देते हैं दंड।
दैव-कोप का शीश पर गिरता वज्र प्रचंड॥
तुम सब जाओ इस तरफ मेरे पीछे दूर।
मैं इस पापी को अभी कर देता हूँ चूर॥

यों कहकर पीताम्बर अपना कटितट में तुरत लपेट लिया।
घुंघराले बालों को प्रभु ने हाथों से स्वयं समेट लिया॥
बढ़कर बोले वृषभासुर से—रे दुष्ट, इधर आगे बढ़ आ।
इन निबलों को क्या डरा रहा, बलवानों के सनमुख चल आ॥
तुझसे पापी दुष्टों का मद मर्दन करनेवाला मैं हूँ।
तू जिसे ढूँढता फिरता है वह काला नँदलाला मैं हूँ॥
बस बहुत हुआ, कुछ बल हो तो छल कौशल माया तज दे सब।
मैं तुझको मारूँगा पल में तेरे प्राणों की कुशल न अब॥
वह असुर क्रोध से गरज उठा सुनकर प्रभु के ये वचन कड़े।
पर इधर कृष्ण जी हँसते थे वह क्रोध देखकर खड़े खड़े।
देवता विमानों पर बैठे उत्कंठित से घबराये से।

वृषभासुर के मायाबल को लखकर मन में भय पाये से ॥

इधर असुर यों सींग कर आगे दौड़ा घूमि ।
चाहा हरि को ले उठा और पटक दे भूमि ॥
किन्तु कृष्ण थे ताक में पहले ही से आप ।
इसी लिए अपनी जगह खड़े रहे चुपचाप ॥
आया दानव पास जब तब आगे कर हाथ ।
पकड़ सींग उसके उसे लगे रेल ने नाथ ॥
रेलारेली मे असुर हुआ हीनबल आप ।
छुटा पसीना देह से शिथिल हो पड़ा पाप ॥
सींग उमेठे जोर से जब कुछ हुआ दुचित्त ।
तब धरती पर कृष्ण ने उसे गिराया चित्त ॥
एक साथ मल-मूत्र के निकले उसके प्रान ।
निकल पड़ी आँखें बड़ी मरा असुर सुमहान ॥
हर्षित होकर देवगण करते दुंदुभि-नाद ।
आपस में करने लगे ऋषिमुनि शुभ संवाद ॥
फूलों की वर्षा हुई, धन्य धन्य के साथ ।
सिद्ध देव गंधर्वगण लगे नवाने माथ ॥
पूर्ण ब्रह्म के लिए यह कठिन नहीं कुछ काम ।
वह तो हैं आनन्दघन पूर्णकाम निष्काम ॥
उनके भय से मृत्यु भी रहता है भयभीत ।
महाकाल भी भक्ति से गाता गौरव गीत ॥

गोवर्द्धन-धारण

६वाँ भाग

जय गोविन्द, मुकुन्द, हरि, मोहन, मदनगोपाल ।
इन्द्रमान-मर्दन सदा भक्तों के प्रतिपाल ॥
वृन्दावन वीथी विशद वंशीवट के पास ।
कालिन्दी के कूल पर नटवर वेष विलास ॥
जिस विधि गोवर्धन धरा सुन्दर नन्दकिशोर ।
छत्र सदृश शोभित हुआ गिरि छिगुनी के छोर ॥
सो लीला अचरज-भरी वर्णन करूँ विशेष ।
सुनिये सब मन लायके रहे न लेश कलेश ॥

व्रजमंडल में उत्साह अधिक चौमासा आने पर छाया ।
हर एक गोप ने निज घर को था भाँति-भाँति से सजवाया ॥
सब झाड़-बुहार अजिर आँगन भीतर बाहर लीपापोता ।
दीवारों पर बहुरंगों के चित्रों का जमघट भी होता ॥
द्वारों पर स्वस्तिक शंख कमल आदिक के चित्र बनाये थे ।
अंटियाँ अटारी आदिक पर झंडे बहुविधि फहराये थे ॥
गउओं बच्चों को गेरू से हल्दी से रंगा, सँवारा था ।

उनके कंठों में मालाएँ पहनाकर खूब सिंगारा था ॥
लड़के पट-भूषण पहन उछल-कूद सानन्द ।
करते थे क्रीड़ा विध इधर-उधर स्वच्छन्द ॥
छोटी-छोटी लड़कियाँ और गोपिकावृन्द ।
कामकाज थे कर रहे सहित यशोदा नन्द ॥
भट्ठियाँ बड़ी खुदवाई थीं, पकवान विविध बनवाये थे ।
हलवा पूरी तरकारी के पर्वत से ढेर लगाये थे ।
कपड़े नवीन धारण करके सब गोपवृन्द आनन्द सहित ।
तैयार इन्द्र की पूजा को सामग्री करते थे संचित ॥
सब ओर हो रही धूम बड़ी, इक ओर बड़े बूढ़े ब्रज के—
आपस में बातें करते थे, कपड़े नवीन तन पर सज के ॥
श्रीकृष्णचन्द्र उस घड़ी वहाँ सब देख अचानक हो आये ।
बोले फिर भरी सभा में यों मन ही मन में कुछ मुस्काये ॥
क्यों पिता, धूम यह देख पड़े ? होनेवाला क्या उत्सव है ?
कुछ समझ नहीं पड़ता मुझको यह काम कौन-सा अभिनव है ॥
कौतूहल सा हो रहा लखकर यह उत्साह ।
हाल सभी बतलाइए, हो प्रसन्न ब्रजनाह ॥
घर-घर में ग्वालों के छाया उत्साह अनूपम अभिनव है ।
बिना किसी कारण के होना यह उत्साह असंभव है ॥
जो मुझसे कहने लायक हो तो इसका कारण बतलाओ ।
मैं बालक हूँ, क्या मुझे पड़ी, यह भाव न मन में तुम लाओ ॥

जानना चाहिए उन्हें सभी, बालक ही बूढ़े होते हैं।
कुलधर्म जानकर करने में उसके सब संशय खोते हैं॥
सुनकर यह हरि के वचन गोपवृन्द उपनन्द।
बोले यों पुचकार कर कर दुलार सानन्द—
भैया, यह तुमने किया प्रश्न बहुत उपयुक्त।
होनहार हो तुम बड़े, बुद्धिमान श्रीयुक्त॥
मैं बतलाता हूँ तुम्हें, क्यों है यह उत्साह।
उत्सव क्यों हम कर रहे सहित नन्द ब्रजनाह॥
खेती ही हम सब करते हैं गोपालन बनिज हमारा है।
खेती चारे की बढ़ती को वर्षा का हमें सहारा है॥
वर्षा अच्छी तब होती है जब सुरपति इन्द्र कृपा करते।
मेघों के स्वामी हैं वे ही, दुर्भिक्ष दुःख वह ही हरते॥
हम योग यज्ञ पूजा करके, करते संतुष्ट पुरंदर को।
वह भी तब अच्छी वर्षा कर करते हैं तृप्त चराचर को॥
वर्षा से खेतों में पानी पड़ता है, अन्न अधिक होता।
संतुष्ट वही दिख पड़ता है जिसने कुछ खेत कहीं जोता॥
हरियाली होती घनी उपजे कोमल घास।
पृथ्वी पर कोई कहीं रहता नहीं उदास॥
जगत चराचर हर्ष से होता मनो सजीव।
पाते हैं उत्साह नव जितने जगके जीव॥
उगती है घास हरी, गउएँ बछड़े आनन्द मनाते हैं।

चरते हैं और विचरते हैं, हम सब भी लाभ उठाते हैं ॥
इसलिए गोप हम सब ब्रज के हर साल बाल-बच्चों वाले ।
सुरपति की पूजा करते हैं, होते उत्सव में मतवाले ॥
जो अन्न और घृत सुरपति से सामग्री सारी पाते हैं ।
हम वही उन्हें फिर भक्ति सहित सादर सानन्द चढ़ाते हैं ॥
इस उत्सव का सारा रहस्य मैंने तुमको बतलाया है ।
भैया, तुमको भी यह उत्सव हमलोगों का मन भाया है ?

बोले तब श्रीकृष्ण यों—बुद्धिमान हैं आप ।
बूढ़े और बड़े सभी प्रकट प्रभाव प्रताप ॥
जो कुछ करते आप हैं, है पहिले की लीक ।
मुझको तो कुछ भी नहीं जान पड़े यह ठीक ॥
क्षमा कीजिएगा मुझे, स्वल्पबुद्धि हूँ बाल ।
वर्षा में तो इन्द्र का कुछ भी नहीं कमाल ॥
यह लीला है प्रकृति की, वर्षा ऋतु में आप ।
बादल जल-वर्षा करें क्या है इन्द्र-प्रताप ॥

यह सब ईश्वर की लीला है, यह प्रकृति आप सब करती है ।
वर्षाऋतु में जल वर्षा कर प्राकृतिक नियम अनुसरती है ॥
इसलिए आप की यह पूजा, यह उत्सव व्यर्थ महाशय है ।
झूठा विश्वास पुराना है, यह मूर्खों का सा अभिनय है ॥
कुछ भी उपकार हमारा जो करता सो यह गोवर्धन है ।
इसकी घासों को चरने से बढ़ता यह सारा गोधन है ॥

बेकार इन्द्र की पूजा को छोड़ो, मेरा कहना मानो।
प्रत्यक्ष देवता उपकारी अपना गोवर्धन गिरि जानो॥

जो कुछ यह तुमने किया पूजा का सामान।
इससे चलकर शैल की पूजा करो महान॥
वह तुमको तत्काल ही देंगे दर्शन देव।
इन्द्रदेव का भय तजो सब उत्तम वर लेव॥
मेरी तो सम्मति यही, तुम भी करो विचार।
पूज्य बड़े हो बुद्धि में मुझसे सभी प्रकार॥

अभिमान इन्द्र को था भारी अब अहंकार वह ढाने को।
इस तरह मान का मर्दन कर निज प्रकट प्रभाव दिखाने को॥
श्रीकृष्णचन्द्र ने गोपों की मति को पल भर में फेरा।
सुन वचन कृष्ण के सबने तब सब भाँति सराहा बहुतेरा॥
बोले जो वृद्ध वहाँ पर थे—कहना तो सच है बालक का।
पूजन तो ठीक सभी विधि है अपने सच्चे प्रतिपालक का॥
हैं इन्द्र प्रकृति के दास सही, वह आप न कुछ कर सकते हैं।
जो रहे प्रकृति प्रतिकूल, न तो फिर वह अकाल हर सकते हैं॥
यह बात कृष्ण की सच्ची है, इसलिए चलो गोवर्धन को—
पूजा श्रद्धा के साथ करें कामना पूर्ण हो सब मन की॥

अनुमोदन सबने किया जो थे गोप प्रधान।
गोवर्धन को ले चले पूजा का सामान॥

पकवान पुए पूड़ी मठरी बूँदी सार्खे सु सकरपारे।

पापड़ पपड़ी हलआसोहन नुक्ती के थाल भरे सारे ॥
खस्ता सुहाल बर्फी पेड़े स्वादिष्ट सुगंधित खीर बनी।
हलवा खुग्मा घेवर तर थे रबड़ी भी लच्छेदार घनी ॥
इस तरह बहुत से व्यंजन भी ढेरों उत्तम बनवाये थे।
सामग्री सुरपति-पूजा की सब गोप बनाकर लाये थे ॥
कुछ सिर पर लादे हुए चले छकड़ों में कुछ सामग्री थी।
श्रद्धा से भक्ति सहित सबने गोवर्धन तक पहुँचा दी थी ॥

ग्वाल बाल आनन्द से करके उत्तम साज।
चले गीत गाते हुए पूजन को गिरिराज ॥
गउएँ बछड़े विविध विधि करके शुभ सिंगार।
हाँक चले गिरि ओर को सुन्दर गोपकुमार ॥
चले उछलते कूदते करते मगन कलोल।
पूँछ उठाये राह में रहे वत्सगण डोल ॥

ललित लहरिया की लहरें लहर रहीं,
ओढ़नी अनूठी थीं लजाती स्वर्ग साज को।
घेरदार घाँघरे घरेलू पहनावा नया,
सकुच समाती लख अप्सरा समाज को।
लाल, पीली, नीली, हरी कंचुकी कुचों पै कसी,
देती रति रानी के शची के मन लाज को।
बालिका जवान बूढ़ी सब ही उमंग-भरी,
गाती हुई गीत गोपी चलीं गिरिराज को ॥

सुन्दर बलवान शरीर लिये कसरती जवान छबीले थे ।
ऐंठते और इठलाते वे रंगीन स्वभाव रँगीले थे ॥
कंधों पर लाठी धरे हुए दिखलाते उसके खेल भले ।
मस्ताने स्याने गोपों के जत्थे आनन्दित हुए चले ॥
रोहिणी यशोदा ब्रजरानी पालकी सवार चली जाती ।
सब आसपास उनके गोपी हँस बोल रही थीं मदमाती ॥
वृषभानु-भौन से कीरति भी सँग लिये सहेली अलबेली ।
राधिका किशोरी सहित चलीं मारग में करती रँगरेली ॥
ब्रजराज नन्द उपनन्द चले वृषभानु आदि सब ठाठ किये ।
पगड़ी पहने पोशाक डटे सिर से ऊँची लाठियाँ लिये ॥

श्रीदामा प्रिय मनसखा वनमाली सानन्द ।
संग सखा सारे लिये चले कृष्ण ब्रजचन्द ॥
दम भर में पहुँचे वहाँ जहाँ उपस्थित काज ।
ब्रज-शोभा का सार वह था सुन्दर गिरिराज ॥
गोपों ने सिर से दिया सब सामान उतार ।
छाया में बैठे सभी दोनों पैर पसार ॥
इतने में सब विप्रगण वैदिक वर विद्वान ।
पीछे से पहुँचे वहाँ धार्मिक तपोनिधान ॥
गोवर्धन के सामने था सुन्दर मैदान ।
उसे सफा करने लगे सेवकगण सब आन ॥

हो गई सफाई गोबर का चौका तब वहाँ लगा भारी ।

आकर उस जगह पुरोहित ने डलवाये आसन सुखकारी ।।
पूरने लगे चौकें ब्राह्मण नाना आकार प्रकारों की।
कमलाकृति, गोल, त्रिकोण कई रंगीन कोण समचारों की ।।
इक कलश बिठाया सथिए पर आगे गणेश को स्थापित कर।
नवग्रह षोड़श मातृका धरीं गौरी गोबर की उस स्थल पर ।।
लकड़ियाँ आम की ले ले कर फिर होम कुंड को सजा दिया।
इस तरह भली विधि विप्रों ने सब पूजा का सामान किया ।।

हाथ पैर धोकर स्वयं नन्द बने यजमान।
आसन पर बैठे पुनः ले पूजा-सामान ।।
गौरी, भूमि, गणेश त्यों नवग्रह सोलह मात।
और सभी जो देवता पूजा में प्रख्यात ।।
सब की पूजा विधि सहित करके श्रीयुत नंद।
तिल तंदुल जब घृत हवन करते थे सानंद ।।
गोप ग्वाल सबने किया पूजन हवन समाप्त।
चारों ओर सुगंध युत हुआ धूम तब व्याप्त ।।

सबके पीछे गोवर्धन की पूजा कान्हा ने करवाई।
पकवान मिठाई वह सारी गिरिवर के आगे धरवाई ।।
बोले फिर आप—अहो गिरिवर तुमको प्रणाम हम करते हैं।
ये भक्ति सहित गोपाल सभी सामग्री आगे धरते हैं ।।
प्रत्यक्ष देवता तुम ही हो गोधन का पालन करते हो।
अपने तृण से अपने जल से सब भूख प्यास तुम हरते हो ।।

होकर कृपालु यह सब पूजा हम सबकी तुम स्वीकार करो।
आपत्ति कष्ट संकट सारे अपने भक्तों के सदा हरो॥
यों कहकर श्रीकृष्ण ने रखा दूसरा रूप।
गिरिवर दिखलाई पड़े महिमा के अनुरूप॥
सहस बाहु, सिर भी सहस, सहस चरन, मुख, कान।
देख स्वरूप विचित्र सब विस्मित हुए महान॥
तब प्रभु ने जय-जय-जय कहकर गोपालों से इस भाँति कहा—
हम धन्य हो गये यह लखकर गिरिवर का रूप अनूप महा॥
कब इन्द्र तुम्हें यों देख पड़े, पकवान उन्होंने कब खाया।
प्रत्यक्ष निहारी आँखों से तुम सबने कब उनकी काया॥
यह तो देखो सब हाथों से बैठे भोजन भी करते हैं।
मुस्काते हुए प्रसन्न वदन हम सब के भय को हरते हैं॥
तुम लोग सभी श्रद्धा संयुत आदर से इन्हे प्रणाम करो।
मनमाने वर इनसे माँगो, अपने मन में कुछ भी न डरो॥
सुनकर यह प्रभु के वचन ब्रजवासी सब ग्वाल।
और गोपियाँ भी, सभी मन में हुए निहाल॥
सब गोपी-गोपों ने मिलकर गिरि को प्रणाम सप्रेम किया।
गिरि ने भी उन्हें स्पष्ट स्वर से आशीष बहुत सानन्द दिया॥
इस तरह शैल की पूजा कर ब्रजवासी हर्षित हुए महा।
उपनन्द नन्द आदिक गुरुजन आपस में कहने लगे—अहा
यह बालक कृष्ण प्रतापी है, है बुद्धिवान गुणवान बड़ा।

इसके विरुद्ध होकर कोई अरि है रह सकता नहीं खड़ा ॥
इतने दिन से हम बूढ़ों को जो बात न सूझी थी देखो।
दम भर में इसने उसे समझ शुभ राह दिखाई हम सबको ॥

पूजा हम सब इन्द्र की करते थे हर साल।
इसने बतलाया हमें समझाया तत्काल ॥
अब हम सब हर साल यों पूजेंगे गिरिराज।
होंगे मन चाहे सभी हम लोगों के काज ॥

यों बातें करते आपस में व्रजवासी सब व्रज को आये।
उस ओर इन्द्र के पास गये उनके अनुचर गण घबराये ॥
करके प्रणाम कर जोड़ खड़े वे इन्द्रदेव के सब किंकर।
यह देख इन्द्र ने प्रश्न किया—हैं समाचार क्या भूतल पर ?
घबराये से तुम आये हो इसका क्या कारण है, बोलो।
क्यों काँप रहे क्यों हाँफ रहे सुस्ता कर जिह्वा को खोलो ॥
मैं तीन लोक का हूँ स्वामी, तुम मेरे सेवक हो करके।
यह दशा बनाये हो अपनी, बतलाओ तो किससे डरके ॥

सुन सुरपति के यह वचन हाथ जोड़ कर दूत।
बोले—भूतल पर हुआ है अपमान प्रभूत ॥
व्रजवासी हैं सब हुए गर्वित बड़े गँवार।
इन्द्र-यज्ञ को बंद कर किया अनर्थ अपार ॥

बालक की बातों में आकर बूढ़ों ने सभी समझ खो दी।
जिसके स्वामी थे अधिकारी वह पूजा गोवर्धन को दी ॥

भय से नहीं, क्रोध के कारण काँप रहे हैं हाँफ रहे।
जी मे आया था शिक्षा दें इन दुष्टों को हम बिना कहें॥
इनकी हेकड़ी हरें सारो सारे ब्रज को बरबाद करें।
ऐसा दें दंड कड़ा इनको, यह जो जीवन भर याद करें॥
पर प्रभु की आज्ञा थी नहीं मिली, इससे हम मन को मार रहे।
अब ऐसा करिए पृथ्वी पर जिससे भय का संचार रहे॥

वचन सेवकों के सुने, बढ़ा क्रोध विकराल।
सहस नयन सब इन्द्र के तुरत हो उठे लाल॥
इन गोपों का हुआ इतना साहस आज।
मेरी पूजा बंद कर पूज लिया गिरिराज॥

मेरा अपमान सहज समझा बालक अबोध के कहने से।
त्रिभुवन-विनाश हो सकता है पल भर में मेरे चहने से॥
इसको इनको कुछ खबर नहीं, ये किस घमंड में भूले हैं।
पत्थर की पूजा से निर्भय अपने को समझे, फूले हैं॥
इसका मैं दंड अभी दूँगा सारा ब्रज आज बहाऊँगा।
देखूँ वे कैसे बचते हैं, सबका विनाश कर आऊँगा॥
वह बालक या गिरिराज वही अब उनकी रक्षा कर लेंगे।
जिनके कहने पर भूले बस वे ही अब शरण उन्हें देंगे॥
संवर्तक मेघ प्रलयकारी जो सदा बँधे ही रहते हैं।
जिनकी वर्षा से लोक सभी सागर के जल में बहते हैं॥

उनके वन्धन खोल दो इसी समय तुम लोग।
ब्रज के ऊपर घोर हो प्रलय काल का योग॥
बड़े-बड़े पत्थर गिरें पवन चलें उन्चास।
गोपों के सिर चूर हों, जो हों ब्रज के पास॥
ऐरावत पर आरूढ़ हुआ मैं भी अब ब्रज को जाता हूँ।
इन मूढ़ों को इस करनी का भरपूर दंड दिलवाता हूँ॥
बालक बच्चे भी बचें नहीं ऐसा उत्पात मचाऊँगा।
करना मेरा अपमान सहज कुछ नहीं, यही दिखलाऊँगा॥
सच है, कोई पदवी पाकर नर कैसे, अमर भटकते हैं॥
होता है गर्व उन्हें भारी, काँटे से बने खटकते हैं॥
श्रीकृष्णचन्द्र के दासों के दासों के दास समान नहीं—
जो इन्द्र, उन्हें इस दम इसका कुछ भी था मन में ध्यान नहीं॥
उलटे वह श्रीकृष्ण को साधारण सा बाल।
समझ चले यों दंड के देने को तत्काल॥
घहराते ऊँचे उमड़ रहे घनघोर घने घर-घर छाये।
नीले-नीले नभ-मंडल पर ब्रज भूमि डुबाने को आये॥
अंधी आँधी के अंधड़ ने अंधेर किया अँधियारी की।
चकचौंधे कौंधे से लोचन सत्ता मेरी उजियारी की॥
कड़-कड़-कड़-कड़ बिजली कड़के कानों उगली दें नरनारी।
धड़-धड़-धड़-धड़ छाती धड़के आतंक वहाँ छाया भारी॥
छौनें छाती से चिपकाए आँचल से शीश छिपा करके।

गोपियाँ घरों से भाग रहीं सब वज्रपात से डर डरके ॥

कोई सिर पर सूप रख भागी घर के द्वार ।
कोई घर के काम सब छोड़ चली घर बार ॥
किसी-किसी को होश ही मन में रहा न नेक ।
इसी दशा में हो रहीं व्याकुल स्त्रियाँ अनेक ॥

ले रही राम का नाम खड़ी कोई भगवती मनाती थी ।
कोई छाती को पीट रही कोई रोती चिल्लाती थीं ॥
थी करुणा को करुणा आती ब्रज में उत्पात मचाता यों ।
सब गोपी गोप विहाल हुए सुरपति ने चक्र रचाया यों ॥
इस तरह उपद्रव होने पर हरि ने हिय बीच विचारा यों ।
इस मूढ़ इन्द्र ने गोकुल पर है रोष आज विस्तारा यों ॥
वह समझ रहा मन में अपने लूँ गोपी गोपों से बदला ।
अपनी पूजा का उठ जाना है उसे अहो बेतरह खला ॥

किन्तु न वह कुछ कर सके मम भक्तों की हानि ।
अंत हार कर होयगी उसको मन में ग्लानि ॥
अभी अभी मैं योग बल दिखलाऊँगा आज ।
छिगुनी ही के छोर पर रक्खूँगा गिरिराज ॥
गोकुल की रक्षा करूँ हरूँ इन्द्र का मान ।
प्रकट करूँ गिरिराज की महिमा सभी महान ॥

इधर कृष्ण यों सोच रहे थे खड़े द्वार पर निज घर के ।
उस ओर गोपियाँ गोप सभी दौड़े आये मन में डर के ॥

बोले सभी एक स्वर में यों व्रज डूबा कृष्ण कन्हैया अब।
कर कृपा बचाओ तुम इसको हैं शरण तुम्हारी भैया सब॥
देखो मूसल सी धारा से वर्षा व्रज ऊपर होती है।
गिर रही गाज रह रह करके धीरज हम सबका खोती है॥
छत छप्पर छानी टूट गई प्राणों पर संकट आया है।
यह बीस बिसे कोपित होकर सुरपति ने दुन्द मचाया है॥

सुन कर सबके ये वचन बोले यों ब्रजराज—
घबराते हो किस लिए, चलो जहाँ गिरिराज॥
शैल शक्ति शाली बड़े उनके हो तुम भक्त।
क्या कर सकते इन्द्र भी होकर महा विरक्त॥

सुनकर हरि के यह मधुर वचन व्रजवासी चले निकल घर से।
हरि ने गिरिवर के निकट पहुँच बस उठा लिया उसको कर से॥
धरती का फूल उखाड़ यथा कोई छोटा बालक पकड़े।
उस तरह कृष्ण ने उठा लिया पर्वत को बस जड़ तक पकड़े॥
सब गोपी गोप डरे मन में भारी पर्वत गिर जाय नहीं।
बालक का बल ही है कितना ऐसा हो सकता भला कहीं॥
लेकिन जब उसे उठा करके हरि ने आसानी से ताना।
तब चिंता सबकी दूर हुई सबने श्रीहरि का बल जाना॥
घबराई हुई यशोदा जी व्याकुल कान्हा के पास खड़ीं।
कह रहीं सहारा करो अरे, व्रज पर है यह आपत्ति पड़ी॥
बच्चा मेरा दुधमुहाँ कहाँ गिरिराज कहाँ इतना भारी।

गिर पड़े न कर से छूट छिटक दब जायें न सारे नरनारी ॥
सब लोग सहारा दे दोजी अपनी-अपनी लकुटी लेकर ।
गिरिवर का बोझ सँभाल सके जिससे मेरा कान्हा कर पर ॥
बातें ये यशुमति की सुनकर श्रीकृष्ण खड़े मुस्काते थे ।
ब्रजवासी यद्यपि घबराते पर रक्षा से हरखाते थे ॥
शैल उठाने से हुआ जो कि गर्त उस ठौर ।
घुसे सभी गो-गोपगण गोपी घर से दौर ॥
उनकी रक्षा के लिए हुए कृष्ण तैयार ।
गो-गोपी गोपाल सब मान रहे आभार ॥
राधा हरि की शक्ति प्रिय लखती कृष्णचरित्र ।
शंका मन में कुछ नहीं, जानें शक्ति विचित्र ॥
बरस-बरस कर थके मेघ बृज की कर सकते हानि नहीं ।
कर में गिरिराज लिये कान्हा होती उनको कुछ ग्लानि नहीं ॥
यह देख पुरंदर सब लीला मन में अपने लज्जित होकर ।
यों लगे सोचने घबराकर हैं कृष्णा खड़े सज्जित होकर ॥
पल में प्रलयंकर अति भीषण मेरे ये मेघ भयंकर हैं ।
वर्षा तो मूसलधार करें छाये बृजमंडल ऊपर हैं ॥
पत्थर भारी-भारी गिरते गिरि पर प्रभाव कुछ पड़े नहीं ।
हँसते हैं सारे नर-नारी गिरिवर के नीचे खड़े यहीं ॥
परब्रह्म हैं कृष्ण क्या, हुआ महा मैं मूढ़ ।
भूल गया, मोहित हुआ, हरि की माया गूढ़ ॥

चल कृष्ण के पास मैं, दीनबन्धु प्रभु आज।
क्षमा करेंगे वह मुझे रखें भक्त की लाज॥
चाहे जितना हो बड़ा भक्तों का अपराध।
क्षमा प्रभू की है बड़ी, करुणा अमित अगाध॥

यों सोच हृदय में इन्द्र चले, उनकी आज्ञा से बादल भी।
फट गए हट गए पल भर में उन्चास पवन के वे दल भी॥
आकाश स्वच्छ सब ओर हुआ वह नष्ट दृश्य सब घोर हुआ।
जिस तरह रात हो बीत गई, पल ही भर में ज्यों भोर हुआ॥
गो गोपी गोप निहाल हुए, हरि ने उनसे इस भाँति कहा—
तुम लोग चलो अब सब व्रज में उत्पात अनर्थ न नेक रहा॥
आनन्द सहित जाओ घर को आशंका कुछ भी करो नहीं।
गिरिराज तुम्हारे रक्षक हैं, अब मन में अपने डरो नहीं॥

गये गेह को गोप गण करते जय जय कार।
व्रजमंडल में मच गया तब आनन्द अपार॥
देखी जब यह इन्द्र ने लीला अपरम्पार॥
मन में तब लज्जित हुए हिय में हरि से हार॥
इन्द्र लोक से आय के पड़े प्रभू के पैर।
पहले जो हरि से किया भूले वह सब बैर॥

आकर श्री हरि के पैरों पर पड़ गये पुरन्दर कर जोड़े।
पहले का घोर घमंड घटा इन्द्रादिक पद का मद छोड़े॥
बोले जय-जय त्रिभुवन नायक, शरणागत हूँ, प्रति पाल करो।

मम मानस तामस लीन हुआ, मद मोह महान विकार हरो ॥
अविनाशी घट-घट वासी हो, परमेश रमेश स्वयं स्वामी ।
मैं तुच्छ त्रिलोकीपति होकर भूला तुमको क्रोधी कामी ॥
शिव शंकर ब्रह्मा आदि बड़े देवेश जगत्पति किंकर हैं ।
पूजते तुम्हारे दासों को सचराचर सिद्ध मुनीश्वर हैं ॥
अवतार तुम्हारे अगणित हैं, संसार भार भू का हरते ।
असुरों को मार उबार सुजन हरि सुखी सुरों को तुम करते ।

क्षमा करो अपराध जो मैंने किया महान ।
मैं सेवक हूँ आपका देवदेव अनजान ॥
इन्द्र-विनय सुनकर विशद मुस्काये भगवान ।
बोले यों फिर इन्द्र से करके अभय प्रदान ॥

हे इन्द्र, न तुम लज्जित होना, माया मेरी अति दुस्तर है ।
त्रिभुवन में कोई कभी नहीं उससे बच सकता सुर नर है ॥
अब जाओ तुम निजलोक अरो जो होना था हो गया, न अब—
चाहिए तुम्हें पछताना कुछ, मेरी ही इच्छा यह थी सब ॥
मेरी इच्छा के बिना नहीं त्रिभुवन में पत्ता हिलता है ।
जो कुछ चाहूँ वह होता है, जो देता हूँ वह मिलता है ॥
पूजा मैंने जो मेटी है, उसमें भी भरी भलाई है ।
तुमको अभिमान हुआ था सो मिट गया सकोच सवाई है ॥

गिरने का कारण सदा होता है अभिमान ।
उसे छोड़ने से सुनो मिलता है सम्मान ॥

अब जाओ निजलोक को करो सदा सुख-चैन ।
भक्ति भाव रखकर करो भजन इन्द्र, दिन-रैन ॥
यो कहकर श्रीकृष्ण ने ब्रज को किया पयान ।
कर प्रणाम तब इन्द्र भी गवने अपने स्थान ॥
गिरि-धारण त्यों इन्द्र का मदभंजन जो भक्त ।
सुनते हैं यह भक्ति से होते हैं अनुरक्त ॥
उन्हें न होता भय कभी अथवा माया मोह ।
वे नर रहते हैं सुखी, रखें न मन में द्रोह ॥

१०वाँ भाग

चीरहरण लीला सुनो सब श्रोता चित लाय।
जैसे गोपकुमारिका, धन्य भईं हरि पाय॥
चतुरानन ऐसे चतुर, जिन चरणों की धूल।
चेरे हो सिर पर रखें, जान सजीवन मूल॥
सनकादिक योगी सकल, करते जिनका ध्यान।
व्यास आदि मुनिवर करें, भक्ति सहित गुणगान॥
उन हरि की लीला ललित, करो सुधा सम पान।
यहाँ धर्म हो, मोक्ष हो, हों प्रसन्न भगवान॥

व्रज में जो गोप-कुमारी थीं, श्रुतियाँ निगूढ़ वे सारी थीं।
परमेश्वर का परिचय देने वाली सब हरि की प्यारी थीं॥
दिन रात कृष्ण का ध्यान धरें तन्मय तल्लीन रहा करतीं।
आपस में प्रेम सहित हरि की महिमा महनीय कहा करतीं॥
मगसिर का मास सुखद आया हेमंत-हवा हिय हरती थीं।
जाड़े की पवन झकोरे ले दाँतों को बजा, विचरती थी॥
इस अवसर में बालाओं ने देवी-पूजा मन में ठानी।

वर कृष्णचन्द्र को पाने की यह युक्ति सभी ने मन मानी ॥
देवी जो कात्यायनी पूजा उनकी इष्ट।
उसके करने से मिटें जितने घोर अनिष्ट ॥
उठकर गोपकुमारिका घर से चलें प्रभात।
यमुना तट को सुन्दरी हिल मिल बीते रात ॥
मधुर स्वरों से गीत मनोहर मन्द-मन्द वे गाती थीं।
गज-गामिनी हंसिनी को भी निज गति से शरमाती थीं ॥
रंग-विरंगे चीर पहिनकर यमुना तीर नहाती थीं।
मिट्टी की देवी की प्रतिमा अपने हाथ बनाती थीं ॥
चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप दे, घृत से दीप जलाती थीं।
भोग लगाकर कर प्रदक्षिणा त्यों प्रणाम स्तुति गाती थीं ॥
भक्तों का अनुरक्तों का जो कुछ भी मनोरथ होता है।
वह हर दम पूरा होता है बस शत्रु भक्त का रोता है ॥
कहती थीं—जगदम्बिका, जानो मन की बात।
पूर्ण करो मनकामना हे देवी, हे मात ॥
महिमा जाने जग सकल आदिज्योति विख्यात।
चंडी दश-भुजधारिणी काली काले गात ॥
रक्तबीज-संहारिणी धूम्रकेतु का काल।
शुंभ निशुंभ महाबली मारे अति विकराल ॥
भक्तों के काज सँवारे हैं तुमने दानव दल मारे हैं।
सुर सेवक सभी तुम्हारे हैं, चरणों के सदा सहारे हैं ॥

हम सब भी सेवा करती हैं, वर कृष्ण मिलें, यह चहती हैं।
बस इसीलिए दुख कष्ट सभी झेलती शीत यह सहती हैं॥
हे दयामयी माया तुम हो शंकर की काया या छाया।
वेदों ने भी महिमा वैभव जगदम्ब तुम्हारा है गाया॥
इस तरह गोपियाँ स्तुति करती मनवांछित फल के पाने को।
उठ बहुत सवेरे यमुना तट जाती थीं नित्य नहाने को॥

अंतर्यामी कृष्ण विभु निष्कलंक निष्पाप।
उनके मन की कामना सभी जानते आप॥
भक्तों की मनकामना पूरी करने हेतु।
पृथ्वी पर अवतार ही निराकार प्रभु लेत॥

गोपी तो उनको अनन्य एकाग्रचित्त से भजती थीं।
जिससे उनका सम्बन्ध नहीं, उसको उदास हो तजती थीं॥
फिर उनकी इच्छा को कैसे श्रीकृष्ण न पूरा कर देते।
थे परब्रह्म, फिर श्रुतियों को कैसे न भला अपना लेते॥
बीता जब एक महीना यों पूजन करते देवी जी का।
तब पूर्ण मनोरथ किया कृष्ण ने एक दिवस उनके जी का॥
बोले ग्वालों के बालों से यकदिन क्रीड़ा करते करते।
भाइयो, चलो कल यमुना तट तड़के उत्साह हृदय भरते॥

कल खेलेंगे खेल हम नया निराला एक।
कौतुक होंगे उस जगह देखो मित्र अनेक॥
शीतल मंद सुगंध युत चलती होगी पौन।

स्पर्श मनोहर प्राप्त कर सुखी न होगा कौन ॥
खिल-खिलकर आनन्द से झूम-झूमकर डाल ।
महक रहे होंगे वहाँ फूले फूल निहाल ॥
चहचहा रही चिड़ियाँ होंगी कलरव उनका मन भावेगा ।
ऊँचा टीला टीलो खेलें आनन्द बड़ा ही आवेगा ॥
सब लड़कों ने ब्रज नायक का कहना सादर यह मान लिया ।
उठकर प्रभात को नन्द-भवन जाकर श्रीहरि को जगा दिया ॥
गउएँ लेकर बृन्दावन को सब ग्वालबाल घर से निकले ।
हँस बोल रहे सब हिल-मिलकर श्रीकृष्ण सहित सानंद चले ॥
जाकर वन में लीला करने की निज मन में हरि ने ठानी ।
कुछ खास बालकों की टोली निज निकट रखी सारँग पानी ॥
भेज दिये चहुँ ओर सब ग्वालबाल वे और ।
आप चले ब्रज-बालिका स्नान करें जिस ठौर ॥
क्रीड़ा करते सुख सहित और मचाते शोर ।
उछल-कूद में लग गये बालक चारों ओर ॥
कहीं खिली थी मल्लिका कहीं मालती बेल ।
कहीं चमेली खिल रही कर जूही से मेल ॥
अलबेला बेला कहीं कहीं गुलाब सुगंध ।
जिन्हे सूँघते ऊँघते जाते भौंरे अंध ॥
पशु पक्षी आनन्द से सभी हो रहे मस्त ।
उस वन की शोभा भली को कह सके समस्त ॥

क्रीड़ा करते देखे साथी श्रीकृष्णचन्द्र ने उस वन में।
तब ठानी कुंजबिहारी ने लीला रचने की यों मन में॥
मेरी प्यारी व्रज की गोपी ये आज उघारी हों सारी।
यमुना के जल में स्नान करें करके पूजा की तैयारी॥
हो गया महीना भर पूरा इनको देवी-पूजा करते।
मुझको क्या देर मनोरथ वह इन सबका पूरा करते॥
अब देर लगाना ठीक नहीं, यह आया सुन्दर अवसर है।
गुरुजन भी कोई यहाँ नहीं हो सकता फिर किसका डर है॥

अपने मन में सोच यों भक्तबन्धु भगवान।
वन की शोभा देखते चले प्रसन्न महान॥
अरुणोदय के बाद ही निकला रवि का बिम्ब।
जल, थल, तीनों लोक में डाल रहा प्रतिबिम्ब।

देखा कपड़ों का ढेर लगा जब कृष्ण गये यमुनातट पर।
सब रंग-बिरंगे सूती थे, रेशमी अनेकों चीर सुघर॥
श्रीकृष्णचन्द्र उन सबको ले पास ही कदम की डाली पर।
चढ़ गये आप हँसते-हँसते लीलामय सुन्दर नट नागर॥
गोपियाँ देखकर यह लीला पहले तो मन में चकराईं।
हो गईं मूढ़ सी आपस में मुँह ताक रहीं सब घबराईं॥
तट पर उनके थे वस्त्र नहीं, कुछ चिह्न न दिखलाई पड़ता॥
सर्दी से ठिठुर रहीं जल में तन में ज्यों छाय रही जड़ता॥
आ गया कौन सा चोर अभी ? की पलक मारते यह चोरी॥

पहनेंगी बाहर जाकर क्या ? यों मन में सोचें सब गोरी ॥

असमंजस मन में हुआ कैसा यह उत्पात ।
किसने आकर कष्ट यह दिया बहुत ही प्रात ॥
देख नहीं पड़ता कहीं कोई नर या नारि ।
व्याकुल हुईं अधीर अति तब तो गोपकुमारि ॥
इतने में सबकी पड़ी दृष्टि कदम पर जाय ।
देखे उसकी डाल पर बैठे हैं ब्रजराय ॥
वस्त्र डालियों पर सभी बिखरे चारो ओर ।
तब तो कुछ चिंता घटी देखे जब पटचोर ॥

थी गोपकुमारी एक बड़ी ही ढीठ, वही पहले बोली ।
श्रीकृष्णचन्द्र पर तान तान छोड़ने लगी बोली-गोली ॥
यह ठीक कन्हैया काम किया, भलमंसी की ये बातें हैं ।
उज्ज्वल कुल के यह छौना हैं, चोरी करने की घातें हैं ॥
माखन की चोरी अब तक की, उससे तो केवल पेट पला ।
अब कपड़ों की चोरी सीखो, पूरी ही सीखो यही कला ॥
कुछ दिन में डाका डालोगे, ब्रज में उत्पात मचाओगे ।
ब्रजराज कहाने के बदले नामी डाकू कहलाओगे ॥

ललिता ने जब यों कहा, तब चन्द्रा बलि बाम ।
बोली— इनके तो बहन, सभी अनोखे काम ॥
पहले तो माखन चुरा खाया माखन चोर ।
चित्तचोर होकर हुए अब कपड़ों के चोर ॥

यों ही करते जायँगे उन्नति यह नँदलाल।
किसी समय होंगे बड़े डाकू अति विकराल॥
बोली फिर सखी विशाखा यों—हम लोग सहेंगी नहीं कभी।
दिखलावेंगी इस ऊधम का परिणाम इन्हें हम यहीं सभी॥
ले चलें पकड़ कर सब इनको हम कठिन कंस नृप के द्वारे।
चोरी का दंड दिलावेंगी, उत्पात भूल जावें सारे॥
होंगे यह नन्द यशोदा के आँखों के तारे या प्यारे।
हम इन्हें नहीं कुछ दबती हैं, रह नहीं सकें मन को मारे॥
हम सबको सीधी पाकर यह ऊधम नित नये मचाते हैं।
गोरस लूटें, मग को रोकें, कुछ कहो तो आँख दिखाते हैं।
आज नई लीला रची वस्त्र चुराये प्रात।
अब तो बस हद हो गई करने की उत्पात॥
कपट-कोप के ये वचन सुनकर कटु आरोप।
मन ही मन में हरि हँसे ब्रह्म अकाय, अकोप॥
बोले फिर यों प्रेम-मय प्रेम-सने ये बैन।
निपट निरंजन नित्य नव लीलाओं के ऐन॥
क्या भला मुझे धमकाती हो, अन्यायी भी बतलाती हो।
पर भोलीभाली तुम अपना अपराध न मन में लाती हो॥
यह प्रातःकाल देव-बेला है, वरुणदेव जब सोते हैं।
तब वस्त्र बिना तुम स्नान करो इससे बहु पातक होते हैं॥
मुझ पर करती हो कोप वृथा; तुमको है इसका ज्ञान नहीं।

मैं तो सखियों, शुभचिंतक हूँ, त्याँ मान और अपमान नहीं ।।
तुम मुझको चोर बताती हो, मैंने क्या भला चुराया है ?
ये वस्त्र तुम्हारे रक्खे हैं, इनको तो नहीं छिपाया है !

चंपत हो जो चीज ले कहते उसको चोर ।
प्रकट खड़ा हूँ सामने तकूँ तुम्हारी ओर ।
फिर मैं कैसे चोर हूँ, करो तुम्हीं कुछ न्याय ।
नहीं पराये पूत की विकट पड़ेगी हाय ।।

मेरा क्या विगाड़ सकता है कंस राजा भला,
उसकी प्रजा हूँ नहीं, उसके न कर में मैं ।
दंड वह देगा जो प्रचंड अपराधी उसे,
यहाँ रहता हूँ सदा अपने ही घर में मैं ।।
लाख तुम मिलके पुकार करो जाय जाय,
हाय हाय व्यर्थ है समान चराचर में मैं ।
देखोगी पछाड़ूँगा पहुँच मथुरा में उसे,
कंस का विनाश करूँ, मारूँ पल भर में मैं ।।
सुनके वचन ये विहारी के विहँस एक,
गोपी कहने लगी यों शीश हिला करके ।
ठीक कहते हो, है अलीक कुछ भी तो नहीं,
कंस को बताओगे इसी तरह चरके ।।
पूतना, वकासुर, अघासुर को मार मार,
वीर बन बैठे और बार-बार परके ।

कंस के तो सामने भी जाना है कठिन बड़ा,
वचन-बहादुर भले ही बनो घर के ॥
इस पर एक सखी यों बोली। यह बकवाद कर रही भोली ॥
तुम ब्रजराज हमारे राजा। जो कुछ करो तुम्हें सब साजा ॥
कंस कुमति को क्यों हम जोहैं। हमको तुम जो समझो सो हैं ॥
हम सब सदा तुम्हारी दासी। सेवक हैं जितने ब्रजवासी ॥
अब कर कृपा दीजिए सारे। वस्त्र हमारे ये ब्रजप्यारे ॥
शीत-भीत हम काँप रही हैं। नग्न खड़ी तन झाँप रही हैं ॥
ये सुन वचन कृष्ण यों बोले। सबके मन का भाव टटोले ॥
सुनो सखी, तुम जो हो दासी। मेरी कृपा-सुधा की प्यासी ॥
तो फिर जो मैं कह रहा वही करो मन लाय।
हाथ जोड़ तुम वरुण को पहले लेव मनाय ॥
नंगे होकर स्नान जो किया सभी ने नित्य।
उसके प्रायश्चित्त को पूजो सब आदित्य ॥
जोड़े हुए हाथ फिर जल के बाहर सभी निकल आओ।
तुरत वस्त्र तुम सब तो अपने मेरे निकट यहाँ पाओ ॥
कपड़े पहनो और इसी दम अपने अपने घर जाओ।
जो व्रत किया महीने भर वह सफल बनाओ, हरपाओ ॥
सुनकर हरि के बचन सखी फिर एक तमक कर यों बोली।
जो कि बड़ी प्यारी राधा की और मुँहलगी हमजोली ॥
वाह वाह—क्या बात कही है ! धन्य धन्य तुम हो ब्रजराज।

सब कुछ करके थके आज अब लेना चहो हमारी लाज ॥
नंगी होकर हम सभी करती हैं जो स्नान।
वरुण देव इससे हुए हम पर कुपित महान ॥
किन्तु तुम्हारे सामने होकर वस्त्र-विहीन।
लोकलाज कुलकानि तज तुम्हरी बनें अधीन ॥
तो प्रसन्न सब देवता हम पर होंगे, वाह।
कैसी अच्छी दे रहे हमको आप सलाह ॥
यह कथन तुम्ही को सोह सके, है और न कोई कह सकता।
कुल-कन्याओं से कौन भला यों कहकर सुख से रह सकता ॥
जो दोगे वस्त्र न तुम हमको तो जाय यशोदा रानी को।
सब हाल सुनावेंगी, मैया, नाको दम है! दधिदानी को—
तुमने ही इतना ढ़ीठ किया। वह कुछ भी ऊधम कहीं करे,
तुम उन्हें न नेक हटकती हो, बस इसी लिए वह नहीं डरे ॥
यह सुन उलाहना जसुदाजी तुमको, कर देंगी ठीक अभी।
नटखटी भूल यह जाओगे, ऊधम यह करना नित्य सभी।
हरि ने तब हँस कर कहा जाती हो तुम क्यों न ?
मैया तो तुमको सखी अभी मिलेगी भौन ॥
कौन रोकता है तुम्हें, तुमको शपथ प्रचंड।
जो न अभी जाकर सखी, मुझे दिखाओ दंड ॥
बोली तब दूजी सखी—हम सब के ले वस्त्र।
जा बैठे हो कदम पर यही तुम्हारा अस्त्र ॥

धमकाते हो तुम हमें अहो इसी से आज ।
खूब जानते हो हमें जाते लगती लाज ॥

दो वस्त्र हमारे तुम हमको फिर देखो हम क्या करती हैं ।
तुम समझ रहे अपने मन में हम सब तुमको कुछ डरतीं हैं ॥
सो बात नहीं है, सच समझो, इस समय तुम्हारी बन आई ।
जो चहो कहो हम विवश खड़ीं पानी के भीतर घबराई ॥
पर याद रखो हम सब का भी कोई अवसर फिर आवेगा ।
जब तुमको खूब छकावेंगी तब याद यही दिन आवेगा ॥
हम भी तब हाथ जुड़ावेंगी तुमको लूलू बनवायेंगी ।
तुम करो खुशामद खड़े-खड़े हम तुमको बहुत बनावेंगी ॥

बोले श्रीब्रजराज यों मैं डरने का नाहिं ।
कर लेना जो बन पड़े तुमसे इस ब्रज माहिं ॥
आज हाथ जोड़े बिना मिलें न तुमको वस्त्र ।
लाख कहो, छोड़ो कड़ी वाणी के तुम अस्त्र ॥
कहूँ भले के वास्ते मैं तुमसे यह बात ।
बुरा लगे तुमको, यथा रोगी को दधि-भात ॥
लो मैं जाता हूँ चला, लेकर वस्त्र समस्त ।
तुम जल में होती रहो खड़ी खड़ी सब पस्त ॥

हरि के वचन श्रवण करके गोपियाँ बहुत ही घबराईं ।
मुँह तकने लगीं परस्पर वे यद्यपि मन में थी शरमाईं ॥
आँखों-आँखों में बातें कर बस सबने यह निश्चय ठाना ।

श्रीकृष्णचन्द्र का कहना ही करना मन में उत्तम माना ॥
सब मिलकर बोलीं—कृष्णचन्द्र, तुम इष्टदेव सबके प्यारे।
हम अबलाओं की क्या हस्ती है, जब बड़े-बड़े तुमसे हारे !
ऐसे कहकर वे सब गोपी केशों में अपना तन ढककर।
यों लज्जा की रक्षा करके श्री कृष्णचन्द्र का कहना कर ॥
यक हाथ उरोजों पर रक्खा, इक हाथ प्रणाम लगी करने।
यह देख इस तरह वचन कहे व्रज नायक श्रीनटनागर ने—

नहीं, नहीं, चलनी नहीं, सखी तुम्हारी चाल।
देवों को भी इस तरह छल से दोगी टाल ?
अरे देवता जानते सबके मन की बात।
अप्रसन्न होकर वरुण करें महा उत्पात ॥
दोनों हाथों से सखी इससे करो प्रणाम।
दूर होंय पातक सभी पूर्ण होंय मन-काम ॥

तुमको यों दुख देने से कुछ मेरा नहीं प्रयोजन है।
बस भला तुम्हारा हो जिसमें उसका ही यह आयोजन है ॥
मैं यहाँ सामने बैठा हूँ इस कारण जो शरमाती हो।
तो लूँगा आँखें मूँद जभी जानूँगा बाहर आती हो ॥
यों कहकर हँसने कृष्ण लगे, गोपियाँ बहुत हैरान हुईं।
क्या करें और क्या करें नहीं ठहरा न सकीं अनजान हुईं ॥
शंका कोई भी करे नहीं, ईश्वर की लीला न्यारी है।
भक्तों की सदा परीक्षा लें, निष्ठा ही हरि को प्यारी है ॥

एकनिष्ठ हो भक्त जो तन मन धन सर्वस्व।
श्रीहरि को अर्पण करें, मन में नहीं निजस्व॥
उनको हरि करके कृपा देते अपना धाम।
त्रिभुवन में वे धन्य हैं भक्त नित्य निष्काम॥
गोपियाँ कृष्ण की भक्त वही, इसलिए परीक्षा ली प्रभु ने।
इनके मन में है भेद नहीं, यह जाना चाहा था विभु ने॥
सुनकर गोविन्द के वचन हुआ वह ज्ञान गोपियों के मन में।
ऋषि मुनि जन जिसके पाने को तप करते हैं निर्जन वन में॥
उनके मन में यह भास गया, यह तो परमात्मा ईश्वर हैं।
इनसे पर्दा क्या रखना है, यह व्यापक विश्व चराचर हैं॥
सबके हृदयों में बसें यही, यह सबके अंतर्यामी हैं।
नारी में नर में रमे यही, त्रिभुवन के पालक, स्वामी हैं॥
यह लज्जा लौकिक बन्धन है, इसका सम्बन्ध हृदय से है।
लज्जा करने का कारण क्या निज आत्मलीलामय से है?
मन में अपने सोच यों जोड़े दोनों हाथ।
तन मन की सुध भूलकर गोपी हुईं सनाथ॥
बोली राधा इस तरह—हे वृन्दावनचन्द्र।
तव माया मोहित महा हम नारी मतिमंद॥
हम अबला हैं, अज्ञानी हैं, हमको कुछ भी है ज्ञान नहीं।
पर परमेश्वर की अनुकंपा से अब रहा हमें अभिमान नहीं॥
हम वरुण देव को क्या जानें, हैं सूर्य कौन हम जानें ना।

केवल तुमको ही हम मानें बस और किसी को मानें ना ॥
तुमको ही भक्ति भरे मन से हम गोपियाँ प्रमाण करें ।
बिनती है यही कृपाल प्रभू हम सबके उर में धाम करें ॥
यों कहकर गोपी सब जल से कर जोड़ निकल आईं बाहर ।
यह देख परम संतुष्ट हुए श्रीकृष्णचन्द्र हरि करुणाकर ॥

हरि ने सबके चीर तब दिये हाथ से आप ।
और कहा प्रिय गोपियों, मिटे तुम्हारे पाप ॥
अब तुम जाओ निज भवन, सफल हुआ व्रत आज ।
मैं प्रसन्न हूँ, बन गये सभी तुम्हारे काज ॥
तुम समान कोई नहीं मेरा भक्त अनन्य ।
लोग तुम्हारी भक्ति को कहा करेंगे धन्य ॥
जो कोई अति प्रेम से यह लीला सुखमूल ।
कहे—सुनेगा मैं सदा उसके हूँ अनुकूल ॥
यों कहकर श्रीकृष्ण सब ग्वाल बाल के साथ ।
वृन्दावन से चल दिये, गोपी हुईं सनाथ ॥
सभी गोपियाँ हर्ष से हरिलीला सुखपाय ।
गईं भवन को अति मगन, शोभा कही न जाय ॥
चीर-हरण लीला कही कवि ने भक्ति समेत ।
पढ़ने सुनने से इसे हरि पातक हरि लेत ॥

———

११ वाँ भाग

जयति जयति कालियदमन जय नाशक भव-व्याल ।
जयति अघासुर-वध-करन नंद-नँदन गोपाल ॥
जैसे कालिय नाग को नाथ लिया ब्रजनाथ ।
सो लीला सुनिए ललित भले भक्ति के साथ ॥

कंसासुर के अनुचर जितने श्रीकृष्णचन्द्र का वध करने—
ब्रज में आये वे सभी मरे, यह सुनकर कंस लगा डरने ॥
एक समय मथुरा में राजा कंस सोचने बैठा था ।
श्रीकृष्णचन्द्र के बल से उपजे भय-सागर में पैठा था ॥
बोले नारद—मैं हरि-जन हूँ, हरि-सेवा मेरा अभिमत है ।
ईश्वर की इच्छा को पूरा करना ही बस मेरा व्रत है ॥
मैं घूमता त्रिलोकी सारी मथुरा में पहुँचा आकर ।
देख दंडवत करके आसन दिया कंस नृप ने सादर ॥

देख दशा नृप कंस की मैं बोला, हे भूप ।
चिंतित से तुम दीखते, बदला हुआ स्वरूप ॥
क्या कारण है आज जो तुम सा नृप बलवान ।

ऐसा चिंतित हो रहा ? है आश्चर्य महान ॥
सुनकर ये वचन हमारे तब बोला वह मथुरा का स्वामी।
महराज, आप तो ऋषिवर हैं ब्रह्मा के सुत अंतर्यामी ॥
सब तरह सुखी हूँ, वैभव है, है कुशल कृपा से मुनिवर की।
केवल चिंता है एक मुझे, है बात विकट कुछ भीतर की ॥
ब्रज में दो बालक ऐसे हैं, जो नन्द गोप के बेटे हैं।
जिनसे मुझको भय रहता है, जो मुझको सदा सखेटे हैं।
उनका वध करने को मैंने भेजे थे दानव बड़े बली।
पर उनके आगे एक नहीं ऋषिराज, किसीकी कला चली ॥
बृज में जो कोई गया, गये उसी के प्राण।
किसी तरह उसका हुआ कभी नहीं फिर त्राण ॥
पूतना, बकासुर आदि सभी हो गये काल का कौर अहो।
कोई उपाय उनके वध का मुनिनायक, अब तो आप कहो ॥
मन में हँसकर तब तो मैंने गंभीर भाव लाकर मुख पर।
इस तरह कहा—हे नरनायक, चिन्ता न कीजिए रत्ती भर ॥
मैं सहज उपाय बताता हूँ, जो एक पंथ दो काज करे।
तुम अलग रहो निन्दा भी न हो वह शत्रु आप से आप मरे ॥
यमुना जल के भीतर विषधर कालिया नाग इक रहता है।
जो अपने विष से तट पर के तरुलता फूल फल दहता है।
वहाँ उसी के कुंड में खिले कमल के फूल।
माँगो तुम वे नन्द से, मिटे हृदय का शूल ॥

भेज दूत अपना अभी माँगो फूल हजार ।
कहो—न आये फूल तो होगा अत्याचार ॥
तब नन्द-तनय कालोदह में कूदेगा ही साहस करके ।
कालिया नाग तब डस लेगा, लौटेगा घर को वह मर के ॥
इस तरह काम बन जावेगा उद्योग तनिक ही करने में ।
हे कंसराज, चिन्ता न करो शोभा न तुम्हारी डरने में ॥
मेरे यह वचन श्रवण करके कंसासुर को आनंद हुआ ।
बोला—बस मुनिवर, मैं अब तो निश्चित और स्वच्छंद हुआ ॥
मैंने भी ले अपनी वीणा हरि-गुण गाते प्रस्थान किया ।
उस ओर कंस ने पत्र लिखा, इक दूत बुलाकर उसे दिया ॥
वह लेकर पत्र चला ब्रज को फिर नन्द निकट जाकर पहुँचा ।
शंकित मन में तब नन्द हुए, सोचे, क्यों खल-अनुचर पहुँचा ॥
किन्तु प्रकट में दूत से करके शिष्टाचार ।
पूछी राजा की कुशल हँसकर बारम्बार ॥
आने का कारण वहाँ लगे पूछने नन्द ।
पत्र दिया तब दूत ने कंस नृपति का बंद ॥
पढ़ा नन्द ने, था लिखा उसमें कठिन प्रसंग ।
कालीदह के ही कमल माँगे थे खुशरंग ॥
बस वज्रपात सा हुआ नन्द के सिर पर, सिर पकड़े बैठे ।
प्रात ही कमल यह माँगे हैं, इसलिए सोच-सागर पैठे ॥
यह खबर कृष्ण से छिपी नहीं, मनमें इससे वह मुसकाये ।

सुनकर के गोपी ग्वाल सभी दुःखित हो मनमें घबराये ॥
आकर घर नन्द यशोदा से इस तरह लगे कहने व्याकुल—
आपत्ति नई यह आई अब, छोड़ना पड़ा प्यारा गोकुल ॥
नृप कंस दुष्टता करता है पीछे हम सब के पड़ा हुआ ।
कालीदह के कमलों को वह माँगता, इसी पर अड़ा हुआ ॥

यह सुनकर जसुमति बहुत घबराईं, सब गोप—
आपस में कहने लगे करके मन में कोप ॥
कंस कहा कुछ भी करे मानें हम नहिं नेक ।
यह उसकी कैसी कठिन जी की गाहक टेक ॥
कहो स्पष्ट ही दूत से हो न सके यह काम ।
कमल कौन लावे, वहाँ विषधर का है धाम ॥

यह सुनकर कहने नन्द लगे—भाइयो, सोच लो सब मन में ।
जब क्रोध करेगा कंस तभी चढ़ दौड़ेगा ब्रज पर छन में ॥
आकर हम सबको मारेगा, फिर कौन बचानेवाला है ।
बचने की कोई राह नहीं कुछ ऐसा गड़बड़झाला है ॥
जो कमल न दें तो भी मरना जो कमल मँगावें तो मरना ।
कुछ समझ नहीं पड़ता इस दम चाहिए हमें अब क्या करना ॥
गोपियाँ यशोदा आदि सभी कहने यों लगीं—उपाय यही ।
बस शरण कंस की सब जाओ वह दया करे, ले प्रान नहीं ॥

ले ले सरबस आज फूलों के बदले नृपति ।
ऐसे अपना काज करो, उसे राजी करो ॥

गोपी गोप सोचबस ऐसे । व्याकुल कहें, बचें हम कैसे ?
कभी न ऐसा कंस रिसाना । ऐसा ठान कभी नहिं ठाना ।
हम सबके हैं वाम विधाता । रक्षक भक्षक हैं दुखदाता ।
जान गये सब अन्तरजामी । त्रिभुवननायक सबके स्वामी ।
खेल रहे थे श्याम वृन्दावन में उस घड़ी ।
आकर अपने धाम देखी सबकी यह दशा ॥
माता पिता और सब ग्वाला । गोपी देखीं कृष्ण विहाला ।
तब माता से कुँअर कन्हाई । बोले यों निज जन सुखदाई ॥
मैया, तुम क्यों रो रहीं ? व्याकुल बाबा आज ।
मुझसे सब सच्ची कहो क्या कुछ हुआ अकाज ॥
बोलीं नँदरानी तभी—प्यारे कृष्ण गोपाल ।
खेलो कूदो मौज से संग लिये सब ग्वाल ॥
यों ही थी मैं रो रही, कालीदह के फूल ।
माँगे हैं नृप कंस ने, हूल दिया ज्यों शूल ॥
पर फूल विकट कालीदह के उसने माँगे हैं इस कारण ।
हमलोग सभी अब चिंतित हैं, यह काम नहीं है साधारण ॥
विषधर उसके भीतर भारी कालियानाग जो रहता है ।
विकराल जहर की ज्वाला से तीरों के तरुवर दहता है ॥
उसके ही कुंड समीप खिले कमलों के फूल सुगन्धित जो ।
हमसे है माँग रहा बेटा, नृप कंस शीघ्र ही अब उनको ॥
ऐसा माई का लाल कौन, जो वहाँ तलक जा सकता है ?

विषधर से बचकर जीवित ही वे कमल कौन ला सकता है ?
राजा कर कोप अभी व्रज पर सेना समेत चढ़ आवेगा ।
ग्वालों को मार भगावेगा, हम सबको बहुत सतावेगा ॥

हम सबको है सोच यह भय से व्याकुल गोप ।
नन्द महर घबरा रहे सुमिर कंस का कोप ॥
माता के सुन ये बचन बालरूप भगवान ।
गये नन्द के पास तब मन में मुदित महान ॥
बोले श्रीव्रजराज यों—बाबा, क्यों घबरात ?
कालीदह के ही कमल पावेगा नृप प्रात ॥

सपने में मैंने देखा है, देवता एक ह्याँ रहते हैं ।
हम सबके कष्ट मिटाने को होकर प्रसन्न यों कहते हैं—
तुम लोग व्यर्थ क्यों चिंतित हो मन में मत अपने घबराओ ।
कोई भी दुष्ट तुम्हारा कुछ कर सकता नहीं, न घबराओ ॥
जो लोग तुम्हारी हानि करें अथवा अनिष्ट चाहें करना ।
उनको मेरे कोपानल से होगा अवश्य आपी मरना ॥
अत्याचारी उस पापी को जो कंस बली कहलाता है ।
इक पल में नष्ट करूँगा मैं, करनी का वह फल पाता है ॥

ला दूंगा मैं कंस को कालीदह के फूल ।
सोच न कुछ कोई करे, मैं तो हूँ अनुकूल ॥
ऐसे मुझसे कह वचन देकर धैर्य महान ।
वही देवता हो गये पल में अन्तर्द्धान ॥

इस कारण बाबा सोच न तुम करना कुछ भी अपने मन में ।
सब तरह कुशल ही रक्खेंगे देवता वही वृन्दावन में ॥
यों कहकर धीरज देकर फिर श्रीकृष्ण खेलने चले गये ।
ब्रजराज नन्द ने सुख पाया निश्चिंत कंस से आप भये ॥
श्रीकृष्णचन्द्र ने भी सोचा, अब एक पंथ दो काम करूँ ।
लाऊँगा कमल उसी दह के कालियानाग का दर्प हरूँ ॥
खेलूँगा गेंद वहीं पर जा, फेंकूँगा उसे बहाने से ।
झगड़ा ठानेंगे बालक सब वह गेंद वहाँ गिर जाने से ।

कालीदह में मैं तुरत कूद पड़ूँगा आप ।
नाग-दमन कर दूँ, दिखा नृप को प्रबल प्रताप ॥
ऐसे मन में सोच कर वन में यमुना तीर ।
पहुँचे ग्वालों के निकट सुन्दर श्याम शरीर ॥
गेंद खेलने का किया हरि ने जब प्रस्ताव ।
श्रीदामा लाया तुरत कंदुक सरल स्वभाव ॥

ग्वाल बाल मंडली जमा करके खड़े हुए,
खेल घमासान लगा होने एक पल में ।
कोई गेंद मारता किसी का तन ताक ताक,
कोई बचा जाता वह चोट चलाचल में ॥
कोई रोक लेता बीच ही में चतुराई ठान,
कौशल दिखाते सब पूरे छल-बल में ।
यों ही चोट चूकने चलाने में चला ही गया,

गिरा गेंद कालिया के कुंड बीच जल में ॥
श्रीदामा ने कृष्ण को मारा गेंद चलाय ।
बचा बीच ही में गये वह झुककर तिरछाय ॥
एक सखा तन ताक कर यमुना जल की ओर ।
मारा गेंद गोविन्द ने एक समय भर जोर ॥
बचा गया उस चोट को वह बालक मुसकाय ।
कालीदह में वह गिरा गेंद तुरत तब जाय ॥
सन्नाटे में आ गये सभी सखा उस काल ।
यों जाने से गेंद के थे उदास सब ग्वाल ॥
श्रीदामा तब कोप जनाई । पकड़ी फेंट कृष्ण की धाई ।
मेरा गेंद अभी ला दीजै । और काम फिर पीछे कीजै ।
जान बूझ कर गेंद गँवाया । मुझको भी क्या दब्बू पाया ।
मै ले लूँगा गेंद कन्हाई । नन्द महर से कह दूँ जाई ।
हाल देखकर बालक सारे । ताली देने लगे किनारे ।
कोई कहने लगे कन्हैया । खूब फँसे हो अबकी भैय्या ।
कोई बोला—श्रीदामा से । चल सकते ये कभी न झाँसे ।
वह तो अपना गेंद अब ले ही लेगा आज ।
मान नहीं सकता कभी बिगड़ेंगे मा-बाप ॥
श्रीदामा का सुनकर झगड़ा कुपित कृष्ण ने डाँट कहा ।
श्रीदामा, तू झगड़ा करता व्यर्थ बात क्यों बढ़ा रहा ॥
जान बूझ कर गेंद अरे क्या मैंने तेरा फेका है ।

जो तूने यों फेंट पकड़कर मुझे यहाँ पर छेका है ॥
श्रीदामा था फिर भी अकड़ा गेंद माँगता था अपना ।
कृष्णचन्द्र तब फेंट छुड़ाकर बोले—तेरा लड़कपना—
मुझसे सहा नहीं जाता है, गेंद अभी मैं लाता हूँ ।
मुझमें कितना बल-पौरुष है तुझको अभी दिखाता हूँ ॥

यों कहकर चढ़ ही गये तरु ऊपर गोपाल ।
कालीदह के बीच में फाँद पड़े तत्काल ॥
देख दशा यह श्याम की सखा गये घबराय ।
खबर देन ब्रज को चले हाहाकार मचाय ॥

कुछ लोग नन्द के पास चले, उस जगह खड़े कुछ रोते थे ।
कुछ सखा बिगड़ श्रीदामा पर क्रोधित अति उसपर होते थे ॥
इस ओर साज नटवर साजे मोहन मूरति ब्रजराज वहाँ ।
पहुँचे निर्भय होकर बैठा विषधारी कालीनाग जहाँ ॥
इस ओर यशोदा को असगुन होते थे बारम्बार यहाँ ।
दाहिने अचानक छींक हुई बिल्ली ने काटी राह वहाँ ॥
जसुदा व्याकुल घबराई सी घर के बाहर दौड़ी आई ॥
है कहाँ कान्ह मेरो बारो ? असगुन क्यों ऐसे दरसाई ॥

इतने में घर आ रहे नन्दमहर थे द्वार ।
असगुन उनको भी हुए उसी समय दो-चार ॥

जसुमति ने तब कहा नन्द से, चली रसोई करने को ।
छींक दाहिने भई, बिलाई काट गई मग चलने को ॥

देख-देख यह असगुन मेरा जी ऐसा घबराता है।
कहाँ कन्हैया गया हमारा, घर बाहर न सोहता है ॥
इसी बीच में सखा श्याम के रोते हुए वहाँ आये।
सबने मिलकर समाचार ये अशुभ सुनाये घबराये ॥
गेंद खेलते हुए कन्हैया फाँद पड़े यमुना-जल में।
कालीदह में जाकर पहुँचे, देर न लगी, एक पल में ॥

बूड़ गये होंगे वहाँ, या विषधर वह नाग—
कुपित काट लेगा उन्हें, नहीं सकेंगे भाग ॥
सुनकर उनके ये वचन गिरे नन्द अकुलाय।
मूर्छा आई माय को गिरी पछाड़ें खाय ॥

गोपी ग्वाल सुनत अकुलाये। हाहाकार करत उठ धाये।
रोवत विकल जसोमति मैया। मेरे प्यारे कुँवर कन्हैया ॥
नन्द नन्दरानी दोउ रोवत। आँसुन सों अपनो उर धोवत।
जमुना-तट की ओर सिधाये। गोपी ग्वाल बाल सँग धाये ॥

उधर गये ब्रजराज कालीदह के अति निकट।
नाग नाथिवे काज नटवर भेष सजे हुए ॥
वहाँ नागिनी सो रही सुख से अपने धाम।
जाग पड़ीं जल-शब्द से देखे आगे श्याम ॥

बालक मनुष्य का अति सुन्दर देखा जब अपने घर आया।
आश्चर्य चकित पहले होकर फिर कोप कृष्ण को दिखलाया ॥
बोली तब नागिन रे बालक, क्या प्राण नहीं तुझको प्यारे ?

जा, जल्दी भाग, न जबतक यह विषधर उठकर तुझको मारे ॥
सुन्दर शरीर यह उमर देख आता है बरबस तरस हमें ।
पर देख ढिठाई है असह्य पल भर भी तेरा दरस हमें ॥
फिर भी समझाती हैं तुझको, तेरे मा-बाप दुखी होंगे ।
तेरी हत्या करके बालक फिर क्या हम ही लोग सुखी होंगे ॥
इसलिए मान ले अब कहना, रहना है जो इस चोले में ।
क्या जाने क्यों हो रहा प्रेम हम सबको है तुझ भोले में ॥

सुने नागिनी के बचन, हँसे कृष्ण भगवान ।
फिर बोले—तुम हो सभी महा मूढ़ अज्ञान ॥
मेरा क्या यह कर सके विषधर होकर नाग ।
अब तक यह जीता बचा सो तुम सबके भाग ॥
अभी निकालूँगा इसे शुद्ध करूँगा नीर ।
पड़ा हुआ होगा मरा इसका कठिन शरीर ॥
लेने आया हूँ यहाँ अरी कमल के फूल ।
कभी समझना तुम नहीं मुझको बालक भूल ॥

पूतना, बकासुर आदि बड़े उत्पाती दानव मारे हैं ।
डरता है मुझसे कंस बली शंकित पाखंडी सारे हैं ॥
मैं क्या हूँ कैसा बलशाली, देखोगी यह सब पल भर में ।
मैं कैसा निर्भय बालक हूँ घुस आया विषधर के घर में ॥
लो अभी जगाता हूँ इसको, जो नाग पड़ा यह सोता है ।
देखो तुम सब बैठी-बैठी जो कुछ कि यहाँ पर होता है ॥

श्रीकृष्णचन्द्र ने यों कहकर बढ़कर कुछ आगे उसी घड़ी।
कालियानाग जो सोता था उनके तन में इक लात जड़ी ॥

यों ठोकर खाकर तुरत जगा कालिया सर्प।
क्रोध भरा फुफकारता चला दिखाकर दर्प ॥

बोला हरि से यों वचन—क्यों रे पामर बाल।
जान पड़ा सचमुख चढ़ा तेरे सिर पर काल ॥

अरे तभी तो इस तरह मारी मेरे लात।
अपने विष से मैं अभी करता तेरा घात।

समझा होगा तू, तुझे कोमल बालक जान,
दया करूँगा मैं, नहीं लूँगा तेरी जान ॥

सर्प प्रकृति से क्रूर पर तेरी यह भूल है।
पास रहे या दूर बदला हम लेंगे सही ॥

तू श्याम शरीर बड़ा सुन्दर बालक इस जगह वृथा आया।
दुर्बुद्धि तुझे यह क्यों आई, क्यों नहीं किसी ने समझाया ॥
अब आने का और तमक कर यों मुझ पर फिर लात चलाने का।
फल शीघ्र चखाता हूँ तुझको, धृष्टता असीम दिखाने का ॥
यों कहकर काली नाग झपट विष वर्षा करता आँखों से,
चिनगारी अग्नि शिखा की सी चारो दिशि भरता आँखों से,
श्रीकृष्णचन्द्र के लिपट गया सब अंगों को कस कर पकड़े।
पूरे बल से भरपूर चोट करता जाता था तन जकड़े ॥

किन्तु कृष्ण के कुछ नहीं उसका हुआ प्रभाव।
नहीं काटने से हुआ तन में कोई घाव॥
नागपाश से छूटकर कृष्णचन्द्र भगवान।
चढ़े कालिया नाग के सिर पर श्याम सुजान॥
थिरक थिरक कर लगे नाचने ताण्डव नृत्य कृष्ण भगवान।
बंशी बजा बजाकर घुँघरू मर्दन किया नाग का मान॥
करके क्रोध उठाता जो फन कुटिल कालिया नाग महान।
तुरत उचक कर उसी शीश पर जाते पहुँच ब्रजेश सुजान॥
लगा उगलने रक्त मुखों से चूर चूर होकर वह नाग।
विष वह चला फनों से उसके खौल गया जल उसकी झाग॥
जल के थल के जीव विकल हो लगे भागने कोसों दूर।
गर्व खर्व हो गया नाग का हुए शीश सब चकनाचूर॥
देख नागनी नाग को इक दम मृतक समान।
समझ गई यह नर नहीं, साक्षात भगवान॥
कोई ऐसा नर नहीं दिखता बीच त्रिलोक।
जो यों काली नाग से भिड़ जावे खम ठोक॥
हैं एक गरुड़ ही बस ऐसे जिनसे यह विषधर डरता है।
उन ही के डर से भागा फिर इस जगह वास यह करता है॥
यों सोच समझ, कर जोड़, खड़ी हो नागनारि प्रभु के आगे।
बोली विनती करती ऐसे—हैं भाग हमारे प्रभु, जागे॥
तुम लीलामय जगदीश्वर हो, हम तामस नाग अहंकारी।

फिर कैसे तुमको पहचानें, हों भी तो इसके अधिकारी ॥
विधना ने ऐसा रचा हमें, इसमें क्या दोष हमारा है।
बस क्षमा करो प्रभु, क्षमा करो, मरता यह दास तुम्हारा है ॥

शरणागतवत्सल तुम्हें कहते हैं सब लोग।
दया करो हमको न हो पति का विकट वियोग ॥
नाग-नारियाँ कर रहीं हरि की स्तुति उस काल।
बोला कालिय नाग भी अपने होश सँभाल ॥

हे नाथ, सनाथ किया मुझको, मेरे सिर पर रख चरणकमल।
तामस तन मेरा दुष्ट प्रकृति हो गये आज सब भाँति अमल ॥
हे प्रभु, स्वाभाविक दुष्ट सभी हम नाग तामसी होते हैं।
थोड़े में क्रोध हमें आता सुध-बुध सब अपनी खोते हैं ॥
जब ब्रह्मा और पुरंदर भी होते हैं मोहित माया में।
जो हमसे ऊँचे सभी तरह रहते चरणों की छाया में ॥
तब मेरा यों मोहित होना, कटु वचन सुनाना, भिड़ जाना।
आश्चर्य नहीं, बस क्षमा करो, जो मैंने प्रथम न पहिचाना ॥
अथवा मुझसे अपराध हुआ जो जाने या अनजाने में।
मिल गया दंड भी सिर ऊपर यह ताण्डव नृत्य नचाने में ॥
अब प्राण-दान दीजे मुझको, सेवक हूँ, आज्ञाकारी हूँ।
जो आज्ञा होगी वही करूँ चरणों की शरण तुम्हारी हूँ ॥

दीन वचन सुन श्याम नागिनियों के, नाग के।
द्रवित दया के धाम छोड़ दिया द्रुत नाग को ॥

फन से नीचे तब उतर बोले यों भगवान ।
अरे नाग, इस क्षण अभी कर दे तू प्रस्थान ॥

इस दह को अब छोड़ दे सहित सकल परिवार ।
यमुना का जल शुद्ध हो ब्रज के जीव न मार ॥

यह आज्ञा सुनकर श्री हरि की घबराया नाग बहुत मन में ।
बोला—हे नाथ कहाँ जाऊँ ? है जगह न कोई त्रिभुवन में ॥
हैं गरुड़ शत्रु सब नागों के मुझ पर तो उनका कोप कड़ा ।
हैं अधिक बली, उनके आगे रण में हो सकता नहीं खड़ा ॥
जिसमें सबको इक साथ नहीं खा जावें गरुड़ कहीं आकर ।
इसलिए सभी नागों ने मिल, पहले उपाय यह किया इधर ॥
हर पर्व दिवस परिवारों से लें नाग एक बलि देते थे ।
हो गरुड़ प्रसन्न उसे आकर सुख से भक्षण कर लेते थे ॥
मुझको बल का था गर्व बड़ा, देखा मुझसे यह गया नहीं ।
मैं आप गरुड़ के हिस्से को इक दिन चट कर गया वहीं ॥

मन में मैं था हो रहा अपने बड़ा प्रसन्न ।
मारूँगा मैं गरुड़ को, हो जावे अवसन्न ॥

जब हाल गरुड़ ने यह जाना तब अपने मन में कोप किया ।
मुझे मारने को वह दौड़े बैर बड़ा ही ठान लिया ॥
मैं भी विष की वर्षा करता सब फन फैलाकर लपक पड़ा ।
फिर लगा काटने बल-गर्वित मैं तुरत गरुड़ को खड़ा खड़ा ॥

बली विष्णुवाहन खगपति ने स्वर्णवर्ण बाएँ पर से।
मुझको मारा उसी चोट से विह्वल भागा मैं घर से॥
भागा हुआ इसी अति गहरे कालीदह में मैं आया।
प्राण बचाने को बस मैंने यही एक थल लख पाया॥
सौभरि ऋषि थे एक दिन तप करते इस ठौर।
जिनको जग जाने महा तेजस्वी सिरमौर॥
यमुना जल में उस समय इसी कुंड में एक।
क्रीड़ा करता मच्छ था मछली साथ अनेक॥
खगराज गरुड़ भी उसी समय भूखे यमुना तट पर आये।
ऋषि ने रोका फिर भी उनने जलजन्तु उठाये फिर खाये।
मच्छों के मरने से मछली दुःखित व्याकुल हो उठीं सभी।
यह देख दया ऋषि को आई वह बोले क्रोधित तुरत तभी॥
तू गरुड़ घमंड करे बल का न मना तूने मेरा माना।
इन तुच्छ निबल जलजीवों का दुखदर्द नहीं कुछ भी माना॥
इसलिए शाप मैं देता हूँ जो कभी आज से तुम आये।
इस जगह किया उत्पात कभी मत्स्यादि जीव तुमने खाये॥
तो तुरन्त तुम प्राण से हो जाओगे हीन।
बने रहोगे आज से मेरे शाप अधीन॥
यों कहकर ऋषि चल दिये गरुड़ हुए भयभीत।
मुझे विदित वृत्तान्त था, जानी अपनी जीत॥
किन्तु यहाँ से जाऊँगा तो गरुड़ मार ही डालेंगे।

मुट्ठी में मुझको फिर पाकर वह पिछला बैर निकालेंगे ॥
हे नाथ, सकल अन्तर्यामी, तुम से तो कुछ भी छिपा नहीं।
प्रभु की आज्ञा सिर-आँखों पर होगी, मैं चाहे रहूँ कहीं ॥
सच्चा जो कुछ था हाल वही मैंने कर दिया निवेदन है।
आगे जो इच्छा स्वामी की सेवक मैं, मेरा परिजन है ॥
ये वचन नाग के सुन करके श्रीकृष्णचन्द्र फिर बोले यों—
मैं अभय दान जब देता हूँ तब डरता तू खगपति से क्यों ?
ये चरण-चिह्न मेरे तेरे सिर पर अंकित जब हेरेंगे।
तब गरुड़ न तुझ पर झपटेंगे, लड़ने को कभी न घेरेंगे ॥

अब जा रमणक द्वीप को, कहना मेरा मान।
यों कहकर कहने लगे फिर यों श्री भगवान—
मेरा आना है हुआ कंस-काज से आज।
कमल फूल तू लाद ले सिर पर हे अहिराज ॥

तट तक उनको पहुँचा दे तू, मैं उन्हें कंस को भेजूँगा।
मरने पर तुझको इससे मैं बैकुंठवास दुर्लभ दूँगा ॥
कालिया नाग ने तुरत फूल तोड़े फिर लादे सिर ऊपर।
सन्तुष्ट कृष्ण से वर पाकर कालिया नाग ने छोड़ा घर ॥
इस तरफ नन्द का हाल बुरा दम दम पर था होता जाता।
थी बिलख रही गोपी गउएँ व्याकुल थी अति जसुमति माता ॥
अररानी पड़ती नँदरानी पानी में प्राण गँवाने को।
बलदेव दौड़ कर आते थे सबको उस दम समझाने को ॥

इतने में श्रीकृष्णजी लिये कमल के फूल,
देख पड़े, लखकर उन्हें दुःख गये सब भूल ॥
झपट मिले तट पर सभी गले लगाये श्याम।
हर्षित होकर सब गये अपने अपने धाम ॥
ब्रज में उत्सव छा गया घर घर में आनन्द।
करें निछावर रत्न मणि सोना चाँदी नंद ॥
जसुदाजी के हर्ष का कुछ था नहीं शुमार।
उनके तो श्री कृष्ण ही थे जीवन-आधार ॥
कालीदह के जब मिले कमल फूल तब कंस।
व्याकुल अति मन में हुआ समझा अपना ध्वंस ॥
नाग-दमन लीला सुखद पढ़े-सुने चित लाय।
सुख मिलता, दुःख दूर हो, हरि हों सदा सहाय ॥

—(:०:)—

रास-लीला

१२वाँ भाग

सूत्रधार संसार के प्रकृति नटी हिय हार।
यमुना तट के निकट नटनागर करें विहार ॥
लोक-शोक-संताप-हर लीला ललित ललाम।
नन्द-नन्द आनन्द मय बसें सदा उर धाम ॥
अब राधा-वर की कहौं लीला सुन्दर रास।
जाहि सुनत ही होत है पापपुंज को नास ॥
श्रीगणेश गोविन्द गुरु-चरणों में सिर नाय।
सुमिरि शारदा दाहिनी कथा कहौं मन लाय ॥

गोपियाँ कृष्ण से वर पाकर मन वांछित फल के पाने को।
सब उत्सुक रहने लगीं सदा रस रास विलास रचाने को ॥
श्रीकृष्णचन्द्र भी उन सबकी दृढ़ भक्ति देख कर अपने में।
बेदाम गुलाम भये उनके शुभ नाम उन्हीं का जपने में ॥
इस तरह दिवस जब कुछ बीते तब दुर्लभ वह अवसर आया।
जब कृष्णचन्द्र ने क्रीड़ा के करने को सुमरी निज माया ॥
ऋतु सुन्दर सुखद शरद आई पूनो की रैन सुहाई थी।

चांदनी चन्द की चार ओर मन भाई छिति पै छाई थी ॥
कालिन्दी के कूल में कल कदम्ब के कुंज।
जिनमें गुंजन कर रहे मदमाते अलि पुंज ॥
ऊँचे पेड़ों पर पड़ी प्रकट चाँदनी स्वेत।
भरे दूध से दिख रहे हरे भरे सब खेत ॥
चहुँ ओर चाँदनी छिटक रही पत्ती पत्ती थी चमक रही।
चाँदनी धुली ज्यों बिछी हुई इस तरह सुशोभित हुई मही ॥
थी चारु चमेली अजबेली अलबेला बेला खूब खिला।
नाजुक जूही की महक महा जिसको जोबन था नया मिला ॥
हर ओर मदन की मस्ती थी फूलों में भी अलमस्ती थी।
बस शरद-चन्द के कारण ही शुभ शोभा मनो बरसती थी ॥
यमुना जल में ज्यों चाँदी ही गल गल कर बहती जाती थी।
लहरों की कलकल रसिकों से जैसे कुछ कहती जाती थी ॥
सृष्टि सभी सानन्द थी हुई दिव्य सी दृष्टि।
वसुधा पर ज्यों हो रही सतत सुधा की वृष्टि ॥
पशु पक्षी भी मस्त थे मिलते थे सानन्द।
चकई चकवा थे विरह-व्याकुल लखकर चन्द।
कोकाबेली थी खिली, हर्षित हुए चकोर।
इकटक मुँह खोले लखे चारु चन्द की ओर ॥
नभ में नक्षत्र न दिखते थे केवल कौमुदी-फुहारा था।
छूट रहा सुख लूट रहा लखकर उसको जग सारा था।

ऐसा सुहावना देख समय सोचा श्री हरि ने यों मन में।
है आज शरद की शुभ शोभा परिपूरन हो छाई बन में॥
है शरदपूर्णिमा की रजनी, मैं सुन्दर रास रचाऊँगा।
अभिलाषा जो ब्रजनारी की पूरी वह आज कराऊँगा॥
वे भक्त अनन्य हमारी हैं, हैं धन्य, भले ही नारी हैं।
पति पुत्र पिता सबको छोड़े सचमुच श्रुति की अवतारी हैं॥

मन में ऐसा सोच कर नटनागर अभिराम।
सुन्दर वेष बनाय के चले पूर्ण मन काम॥
कटि में काछे काछिनी, पहने तन पट पीत।
शोभा श्याम शरीर की रही मदन को जीत॥
गुंजा-भूषण कंठ में कुंडल सोहैं कान।
मंजु मुकुट माथे धरे निर्मित मोर—पखान॥

वैजंती माला डोल रही वक्षः स्थल में ब्रजनायक के।
हाथों में मुरली लकुट लसैं निज भक्तों के सुखदायक के॥
यह वेष बनाये बन पहुँचे यमुना के तीर कदम्ब तले।
हो खड़े निहारी बन-शोभा दो घड़ी वहाँ से नहीं टले॥
फिर श्रीपति ने कर ले मुरली अधरों पर धरी बजाई यों।
बहु राग रागनी आप प्रकट हो गये कला दरसाई यों॥
वह मधुर मनोहर धुनि सुनकर त्रिभुवन के मोहे जीव सभी।
ऐसी सुन्दर मुरली जग में की श्रवण किसी ने नहीं कभी॥

मुरली-धुनि सुनि मुनि महा योगी यती विरक्त।

वे भी मोहित हो गये काम-कामनासक्त ॥
मधुर मनोहर नाद वह गया गोपियों पास ।
व्याकुल मन में हो उठीं रहा न देहाध्यास ॥

मन उनके वश में नहीं रहे, श्रीकृष्णचन्द्र पै जाने को ।
घर बार गृहस्थी छोड़ चलीं रस रास विलास रचाने को ॥
कोई गोशाला को जाती, दोहनी हाथ में थी उसके ।
वैसे हो चल दी वह वन को दूसरी साथ में थी उसके ॥
कोई गोपी निज गैया को दुह रही ध्यान देकर घर में ।
दुह पाई फिर वह गाय नहीं हो गई विकल मदन-ज्वर में ॥
था किसी किसी ने दूध दुहा, जाती थीं उसे चढ़ाने को ।
ईंधन कर लेकर चूल्हे में चाहा था आग जलाने को ॥
लेकिन वह यह कुछ कर न सकी जो भनक पड़ी उस मुरली की ।
वैसे ही दौड़ी ठगी हुई हो गई आज उसके जी की ॥

कोई अपने पुत्र को करा रही पय पान ।
वैसे ही उसने किया हरि के पास पयान ।
कोई भोजन कर रही थाली वैसी छोड़ ।
चली श्याम के पास वह भोजन से मुख मोड़ ॥

अपने पति को कोई गोपी आहार कराने जाती थी ।
मुरली का शब्द श्रवण कर वह हो गई मदन की माती थी ॥
भोजन देना पति को भूली वह तुरत श्याम के पास गई ।
इस तरह गोपियों की उस दम कुछ दशा और ही भई नई ॥

कोई करने सिंगार चली बस बंशी की ध्वनि कान पड़ी।
वह उसी तरह सब छोड़ वहीं हो गई अचानक तुरत खड़ी॥
कोई आँखें थी आँज रही अंजन उँगली में लगा हुआ।
थ एक आँख आँजी उसने फिर अंजन उसने नहीं छुआ॥

कोई बाला पैर में लगी महावर देन।
एक पैर में था लगा लगी उसासें लेन॥
दौड़ पड़ी वैसे तुरत सुरत न घर की नेक।
अलग अलग यों ही दशा सबकी हुईं अनेक॥
कोई कंगन की जगह पहने कर में हार।
और किसी ने पैर में पहना चन्दनहार॥
उलटे पुलटे यों पहन आभूषण सब अंग।
घबराई सी गोपिका, चढ़ा मदन का रंग॥

काजल की जगह महावर ही आँखों में कोई लगा चली।
कोई सेंदुर को पैरों में देकर अपने घर से निकली॥
कोई बालक को खिला रही या पिला रही थी दूध खड़ी।
उसको वैसा ही छोड़ वहीं वह वृन्दावन को दौड़ पड़ी॥
लखकर यह लीला गोप सभी हो गये चकित अपने मन में।
मालूम किसी को क्या यह था हरि की बंशी बाजी बन में॥
उसकी ही धुन को सुनकर यों मन मोह गईं ब्रज बालाएँ।
सब छोड़ चलीं घर द्वार पिता पति पुत्र और गोशालाएँ॥
गोपी जो एक चली घर से रोका उसको उसके पति ने।

कोठरी बीच कर बन्द उसे रोकना चहा था दुर्मति ने ॥

वह गोपी थी कृष्ण को समझे इष्ट अनन्य।
प्राण त्याग हरि को मिली सबसे पहले, धन्य!
इसी तरह ब्रज-गोपिका सुन वंशी की तान।
अपने अपने काम तज करने लगीं पयान॥
लाख लाख रोका उन्हें घरवालों ने आप।
पर न रोक उनको सके, हरि का प्रकट प्रताप॥

ब्रज की बालाएँ कृष्ण निकट पहुँचीं ऐसे सब प्रेमवती।
सागर से मिलने को नदियाँ जैसे जाती हों वेगवती॥
जब देखा हरि ने सब गोपी अपने समीप आ खड़ी हुईं।
वे प्रेममयी आनन्दमयी लीला लखने को अड़ी हुईं॥
तब बोले ब्रजपति मधुर वचन यों प्रेम-परीक्षा लेने को।
स्त्री-धर्म उन्हें बतलाने को, शारद व्रत का फल देने को॥
हे महा भाग्यशाली ललना, आओ आओ, स्वागत, आओ।
क्यों आई हो घबराई सी, क्या हुआ, कहो कुछ बतलाओ॥
ब्रजमंडल की तो कुशल, कहो, क्या कारण है यों आने का।
बतलाओ मुझको स्पष्ट सभी, जो कारण हो बतलाने का॥

बड़ी भयंकर रात है, यह वन भी है घोर।
जीव जंतु हैं विचरते भीषण चारो ओर॥

हे सुन्दरि सब घर को जाओ। मानो बात, न देर लगाओ।
यहाँ ठहरना उचित नहीं है। मेरी सम्मति सुनो यही है॥

माता पिता पुत्र पति भाई। तुम्हें न देख रहे घबराई।
खोज रहे होंगे सब देखो। उनकी ओर अहो अब देखो॥

जो तुम आई देखने वन की शोभा आज।
तो तुमने सब देख ली, पूर्ण हुआ वह काज॥
चन्द्र-किरण-उत्सव सुखद वृन्दावन इस काल।
उसकी शोभा देखकर तुम सब हुई निहाल॥
यमुना जल के योग से शीतल, मन्द, सुगंध—
पवन-वेग से हिल रहे तरुओं पर मद्-अंध—
भ्रमरों की गुंजार भी सुन ली तुमने वाम।
अब जाओ, देर न करो, अपने-अपने धाम॥

हे सतियों अपने पतियों की जाकर सेवा-सत्कार करो।
है धर्म पतिव्रत नारी का, अपना उसको आधार करो॥
बालक बछड़े बिन दूध मिले व्याकुल सब चिल्लाते होंगे।
घर के सब लोग न देख तुम्हें चिंतित हो झल्लाते होंगे॥
उन सबको जाकर धीरज दो, पयपान कराओ लड़कों को।
गउएँ दुहकर संतुष्ट करो भूखे उन बछिया-बछड़ों को॥
मुझमें अनन्य मन लगा हुआ, इस कारण जो तुम आई हो।
तो ठीक किया, कुछ दोष नहीं, मुझमें जो प्रीति सचाई हो॥
मुझसे ही जितने प्राणी हैं उनको प्रसन्नता मिलती है।
मेरे ही घर में रहने से यह देह सचेतन हिलती है॥

जब तक तन में जीव है, जो है मेरा अंश।
तब तक उस पर प्रीति है, मृत्यु करे विध्वंस ॥
मरते ही मा-बाप की होती भारू देह।
जल्द निकालें लाश को करते खाली गेह ॥
यह प्रीति तुम्हारी इस कारण मेरे ऊपर स्वाभाविक है।
पर धर्म सती ललनाओं का परिपाटी यह सामाजिक है ॥
गोपियों कपट को छोड़ स्वयं सेवा अपने पति की करना।
पति के सम्बन्धी लोगों का सत्कार सदा मन में धरना ॥
लालन-पालन संतानों का कुलकानि पतिव्रत अनुसरना।
बस यही स्त्रियों का धर्म महा, निन्दा से पातक से डरना ॥
स्वामी जो लूला लँगड़ा हो बूढ़ा बावला अनैसा हो।
चाहे गरीब हो अन्धा हो, मतलब वह चाहे जैसा हो ॥
कभी छोड़ना चाहिए तुम्हें न उसका साथ।
जिसको है मा-बाप ने खुद पकड़ाया हाथ ॥
जार कर्म से गोपियों निन्दा करते लोग।
मरने पर परलोक में मिलता है फल-भोग ॥
इससे तुम सब घर को जाओ। वहीं बैठकर ध्यान लगाओ ॥
इतने ही से सब फल पाओ। मेरी भक्त अनन्य कहाओ ॥
निठुर वचन यह हरि के सुनकर, हुईं निराश गोपियाँ क्षण भर ॥
उनकी सब उमंग अभिलाषा, मिटी और उनका मन मारवा ॥
चिंता से चंचल चित्त हुए, ओठों पर पपड़ी पड़ी हुई।

ले रहीं गरम लम्बी साँसें गोपियाँ वहीं पर खड़ी हुई ।।
वे दुःख भार से दबी हुई मुख को अपने नीचा करके ।
खोदती अँगूठे से धरती उत्कट विषाद उर में धरके ।।
काजल को धोते हुए बहे आँसू कपोल कुच पर ढरके ।
आई थीं उत्सुक मिलने को इस समय सभी राधावर के ।।
उन हरि ने अप्रिय वचन कहे, जिससे मन में अति क्षोभ हुआ ।
कुछ प्रणय-कोप से सनी हुई बातें करने को लोभ हुआ ।।

गद्गद वाणी से तभी बोली गोपी बैन ।
रोने से थे हो रहे अरुण कमल सम नैन ।।
हे प्रभु, ऐसे ये निठुर कहो न हमसे बैन ।
छोड़ पिता पति पुत्र हम आई हैं सुखदैन ।।

सेवा करने की अभिलाषा से हम चरण-शरण में आई हैं ।
तुम तजो न हमको, भजो हमें, हम इसीलिए उठ धाई हैं ।।
प्रियतम, तुम हो धर्मज्ञ बड़े, पति-सेवा पतिव्रत हम जानें ।
पर, पति को तो परमेश्वर से बढ़कर हमलोग नहीं मानें ।।
हे प्यारे, जो हैं चतुर महाज्ञानी वे आत्मा जान तुम्हें ।
करते हैं प्रेम तुम्हीं से वे सर्वोपरि प्रिय पहचान तुम्हें ।।
वे हमको क्या सुख देवेंगे पति आदि, नाश जिनका होगा ।
अविनाशी बिना वही प्रिय तनु अप्रिय जैसे तिनका होगा ।।

हम सब दासी हो चुकीं तन-मन से व्रजवाम ।
हमें न तजिये, तज चुकीं हम तो सब धन-धाम ।।

भजिए भक्तों को भले भक्त-बन्धु भगवान।
नहीं आपके सामने यहीं तजेंगी प्रान॥

बहुत दिनों से जो अभिलाषा आशा प्यारे मन में है।
पूरा उसको करिए अब तो रक्खा क्या प्रभू भवन में है॥
हर लिया हमारा मन तुमने, कब लगता वह अब घर में है।
हम सबका मन तो मनमोहन इस समय तुम्हारे कर में है॥
जिन चरणों की लक्ष्मी देवी, जिनकी सब चाह करें स्वामी।
वह दासी होकर रहती हैं, सुनिये सबके अंतर्यामी॥
उन चरणों को छोड़ें कैसे, इसका उपाय तुम बतलाओ।
हम आई चरण शरण में हैं, हमको अब नाथ न भटकाओ॥

सुनकर सबके यह वचन कृपा-सिंधु भगवान।
हँसकर बोले धर अधर मीठी मृदु मुस्कान॥
प्यारी मेरी गोपियो, तुम अनन्य हो भक्त।
तज सकता तुमको भला होकर कभी विरक्त॥

यों कहकर तब ब्रजचन्द लगे क्रीड़ा करने आनन्दमई।
रच दिया रास यमुना तट पर शोभा उस समय महान भई॥
हरि की माया से सभी हुई सामग्री एकत्रित बन में
गोपियाँ कृष्ण के साथ लगीं नाचने हुई हर्षित मन में॥
किंकिणि बलय नूपुर गति की झनकार हृदय को हरती थी।
नाचती कमर को लचकाकर कोई गोपी पग धरती थी॥

कोई लम्बी ले ले करके तानें गाने को गाती थी।
कोई कौशल से हिल-मिलकर श्री हरि को वाम रिझाती थी॥
दो दो गोपी बीच में एक एक हरि रूप।
ज्यों कंचन गुरिया पड़ी नीलम लसै अनूप॥
सभी देवता देवियों को लेकर निज संग।
चढ़ विमान पर देखते यह अद्भुत रसरंग॥
गलबाहीं डाले हुए भई गोपियाँ मग्न।
देख उन्हें रति का हुआ महामान भी भग्न॥
बहु भाँति हाथ मटकाती थीं, नैनों की सैन चलाती थीं।
कुच उनके खुल खुल जाते थे, अलकें भी डुल डुल जाती थीं॥
थकने से बूँद पसीने के मस्तक पर छाये ऐसे थे।
ओसों के बूँद सरोजों पर विकसित हो आये जैसे थे॥
घनश्याम संग जैसे बिजली वर्षा में शोभा पाती है।
वैसे गोपी गण की शोभा घनश्याम संग दरसाती है॥
गाने की तान लगा करके कोई गाती जो थकी हुई।
हरि के कंधे पर हाथ रखें प्रेमासव पीकर छकी हुई॥
हरि ने जो ली तान तो उससे ऊँची तान।
ली गोपी ने मस्त हो बढ़ने को निज मान॥
चंचल कुटिल कटाक्ष से करती हास-विलास।
कोई गोपी हरि सहित हर्षित करती रास॥
मल्लिका कुसुम वेणी के सब खुल खुल कर गिरते जाते थे।

अप्सरा वृन्द लख रास नृत्य नर होने को ललचाते थे ॥
गोपियाँ सभी सुध भूली थीं तन की भी सुध थी उन्हें नहीं ।
थे वस्त्र कहीं गिरते पड़ते आभूषण भी गिर पड़े कहीं ॥
चन्द्रमा देखकर यह लीला मन में मोहित हो गये खड़े ।
आगे बढ़ना ही भूल गये आकाश बीच ही रहे अड़े ॥
गोपियाँ रास में हरि की ही लीलाएँ मिलकर गाती थीं ।
समझे मन में निज धन्य भाग्य उत्सव आनन्द मनाती थीं ॥
कर फैलाकर गले लगाकर । हँसी मसखरी कर मन भाकर ॥
नख-छद-दान करैं सह व्रीड़ा । गोपी कृष्ण करैं यों क्रीड़ा ॥
मन्द मन्द मुसकाती जाती । मधुरे स्वर से गाती जाती ॥
शरद रैन पूनो की सुन्दर । रमती रहीं गोपियाँ निशि भर ॥

देख कृष्णजी की कृपा त्यों अपने बड़ भाग ।
व्रजबालाएँ श्याम का समझीं अति अनुराग ॥
लगीं सोचने चित्त में हम-सी और न बाम ।
हमने अपने वश किये निर्विकार घनश्याम ॥

जब हरि ने जाना इन सबके मन में उत्पन्न घमंड हुआ ।
तब उनको प्रभु की लीला से उत्कट बिछोह का दंड हुआ ॥
ईश्वर अपने भक्तों की ही वास्तविक भलाई करने को ।
उनका अभिमान मिटाते हैं मद-भंजन मद के हरने को ॥
वह अन्तर्द्धान तुरन्त हुए निज साथ एक लेकर गोपी ।
सब व्याकुल विरह बिहाल हुई कुल कानि लाज कुल की लोपी ॥

वृन्दावन में मग मग फिरती पागल सी सब व्रज बालाएँ।
सुध भूल गईं वे तन मन की, उठतीं यों उर में ज्वालाएँ॥
यमुना तट के अति निकट वंशीवट के पास।
कुंज कुंज में खोजती मन में हुईं उदास।
कोई पूछे पवन से कृष्ण गये मग कौन।
क्योंकि तुम्हारा है अहो भौन भौन में गौन॥
कोई कालिन्दी से कहती हे प्यारी यमुना, वतलाओ।
प्यारे हरि किधर सिधारे हैं, यह शीघ्र हमें तुम जतलाओ॥
अथवा तुम भी तो काली हो, तुम फिर क्यों हमें बताओगी।
हरि के अंगों से केलि करो, हो सौत सदैव सताओगी॥
कोई भौंरे से पूछ रही, हे, भ्रमर भ्रमण तुम करते हो।
पीताम्बर पीत पराग पहन हरि का ही बाना धरते हो॥
क्या तुमने हरि को देखा है, देखा तो हमें बता दोगे?
पर तुम भी उनके साथी हो, तुम उनका भला पता दोगे?
फूल फूल पर घूम कर कली-कली रस लेत।
तुम भी रसिया श्याम से हमें दिखाई देत॥
कोई पूछे चन्द्र से, देख रहे तिहुँलोक।
श्याम कहाँ हैं, दो बता, हरो हमारा शोक॥
कोई तुलसी से पूछ रही—हे हरि की प्यारी, बोलो तो।
यह दशा देखकर हम सबकी कर दया तनिक मुँह खोलो तो॥
हरि ने हमको धोका देकर वन बीच अकेली छोड़ा है।

निर्दयी कठोर उन्हीं को हम खोजें, जग से मुख मोड़ा है ॥
इस तरह भटकती जंगल में गोपियाँ सभी रोती जाती ।
उनका विलाप वह सुन-सुन कर पत्थर की भी फटती छाती ॥
जब ढूँढ ढूँढकर हार गईं तब थककर लौटीं फिर वन में ।
मिल करके करने लगीं सभी लीलाएँ तन्मय सी मन में ॥

कोई गोपी पूतना, कोई गोपी श्याम ।
बनकर वह करने लगी लीला ललित ललाम ॥
कोई गोपी बक बनी कोई अघासुर रूप ॥
लीलाएँ करने लगीं कृष्ण सहित तद्रूप ॥

कोई बनी तृणासुर नारी । कोइ बनी प्रलम्ब प्रचारी ।
कोई इन्द्र रूप रख कोपी । कोई मेघ बन गई गोपी ।
कोई पट का गट्ठर भारी । लिए बनी गोबर्धनधारी ।
कोई चीरहरण दिखलाती । कोई बंशी लिये बजाती ॥

इधर इस तरह कर रहीं गोपी खेल अनेक ।
उधर हाल उसका सुनो जो गोपी थी एक ॥
कृष्णचन्द्र ने जब लिया केवल उसको साथ ।
तब उसका अभिमान ने कसकर पकड़ा हाथ ॥

लगी सोचने तब यों मन में वह नारी सुकुमारी ।
कृष्णचन्द्र को सबसे बढ़कर मैं ही हूँगी प्यारी ॥
छोड़ सभी को साथ मुझे ले आये तभी बिहारी ।
देखूँ मुझको कितना चाहें नटनागर गिरिधारी ॥

यों सोच कहा उस नारी ने बनवारी से, मेरे प्यारे !
चलते-चलते थक गई बहुत, काँटे कंकड़ गड़ते सारे ॥
क्या करूँ न जाया जाता है; अब तो मैं यहाँ ठहरती हूँ।
घर तक मैं कैसे जाऊँगी ? घरवालों से भी डरती हूँ ॥
सुनकर उसके ये वचन कृष्ण सब समझे, मन में मुस्काये।
बोले—तुम क्यों घबराती हो ? होगा क्या ऐसे डर पाये ?
लो मेरे कंधों के ऊपर तुम आओ बैठो हे प्यारी।
यों कहकर बैठे पृथ्वी पर ब्रज-नायक गोवर्धनधारी ॥

पैर उठाकर वाम ने चहा बैठना ज्योंहि।
अन्तर्द्धान तुरंत ही हुए कृष्ण जी त्योंहि ॥

कर मलती पछता रही सिर धुनती वह बाल।
बैठ वहीं रोने लगी होकर बहुत बिहाल ॥

इधर गोपियाँ ढूँढ रही थीं व्याकुल हो वृन्दावन में।
इधर वहां गोपी बिछोह में विकल हो रही थी मन में ॥
सोच रही, क्यों मूर्ख बनी मैंने हरि से क्यों मान किया !
कृष्णचन्द्र ने मुझको कैसा हाय-हाय, यह दंड दिया ॥
उधर गोपियाँ देख चाँदनी में पैरों के चिह्न वहाँ।
कहने लगीं—कृष्ण लेकर के आये प्यारी वही यहाँ ॥
धन्य-धन्य वह भाग्यशालिनी जिसको हरि ने साथ लिया।
हम सबको तजकर भज उसको हमको ऐसा दुःख दिया ॥

देखो देखो है यहाँ चरण-चिह्न प्रत्यक्ष ।
उस गोपी के श्याम के उपटे हुए समक्ष ॥
अरे अरे देखो यहाँ केवल हरि के पाँव—
हमें दिखाई दे रहे वन में अब इस ठाँव ॥
यों कहती सब गोपी पहुँचीं जहाँ खड़ी थी वह गोपी ।
व्याकुल हुई बिलखती रोती कभी क्रोध करती कोपी ॥
उसे देखकर सभी गोपियाँ डाह सौतिया भूल गईं ।
सहानुभूति दिखाती उससे सभी पूछती हाल भईं ॥
सुन वह बोली—कान्ह बड़े हैं कपटी काले कुटिल अहो ।
उन पर करना भला भरोसा कौन कहेगा ठीक, कहो ॥
यों कहती सब गोपी आईं कुंजों में वृन्दावन के ।
एक जगह बैठीं हिलमिल गुण गाने लगीं श्यामघनके ॥
हे प्यारे, तव जन्म से व्रजमंडल है धन्य ।
पृथ्वी में थल है सुभग इसके सदृश न अन्य ॥
हे प्रियतम, हम दासियाँ कातर भईं बिहाल ।
ढूँढ रहीं तुमको सभी नन्दलाल इस काल ॥
हैं प्राण हमारे धरे हुए उन कोमल कोमल चरणों में ।
व्यथित हो रहे होंगे वे वन गहन बीच अवतरणों में ॥
हो आँख ओट कर चोट हमें तुम मार गये हो हे प्यारे ।
स्त्री-हत्या यह नहीं कहो क्या, हुए अचानक यों न्यारे ॥
क्या तुमको ऐसा उचित प्रभो ? दर्शन दे जीवन दान करो ।

प्यारे, ऐसे निष्ठुर क्यों हो ? आओ अब कृपा महान करो ॥
तुम प्रणत जनों पर सदा प्रभो करुणा करुणाकर करते हो ।
फिर क्यों हमको दुख देते हो, यह व्यथा नहीं क्यो हरते हो ?
व्याकुल हुईं गोपियाँ ऐसे । सरबस गाँठ गँवाया जैसे ।
देख दशा उनकी ब्रजनायक । प्रकट तुरंत हुए सुखदायक ।
गये कहाँ थे ब्रज रखवारे । उन्हें नहीं दिखते थे न्यारे ॥
कृष्णचन्द्र को पाकर गोपी । कोई हुलसी, कोई कोपी ।

कोई लगी उलाहना देने गहकर हाथ ।
और किसी ने हृदय से लगा लिये ब्रजनाथ ॥
कृष्णचन्द्र ने भी सभी गोपी कीं सुप्रसन्न ।
हँसकर गले लगा लिया हुआ प्रेम उत्पन्न ॥
हिलमिल कर फिर रास की रचना की सानन्द ।
वृन्दावन आनन्दमय किया नन्द के नन्द ॥
यों पूरी मन कामना गोपीगण की भक्ति—
जिससे और अधिक हुई मन की मिटी विरक्ति ॥
सुभग रासलीला ललित श्रवण करे मन लाय ।
पूजे मन की कामना दिन दिन सुख अधिकाय ॥

कृष्ण-बलराम की मथुरा-यात्रा

१३वाँ भाग

जय जय असुर विनाशक प्यारे। कंस कुवलया केशी मारे।
जय मल्लों के काल कन्हैया। जय कुवजा के प्रिय बलभैया॥

अबतक सेवक कंस के मारे गये अनेक।
कंस-निधन लीला सुनो अब सब सहित विवेक॥
कर उपाय हारा बहुत दुष्ट-प्रकृति खल कंस।
कृष्ण और बलराम का कर न सका विध्वंस॥

एक दिवस घबराकर मन में कई हितैषी बुलवाये।
भूप कंस ने जिसे बुलाया वे सब असुर तुरत आये॥
कहा कंस ने उनसे अपने मन का भय ब्रजबालों से।
बोला—मुझे बड़ी शंका है जीवन की इन ग्वालों से॥
मरा पूतना-सहित बकासुर और अघासुर भी हारा।
नन्हें से इन लड़कों ने बलवानों को पल में मारा॥
सचमुच विधना रूठा है क्या, अथवा ये दोनों बालक—
मेरे काल हुए पैदा असुरों के कुल के हैं घातक॥

तुम सब मेरे हो हितू, दो सलाह इस काल।
कैसे मारे जायँ ये नंद गोप के बाल॥
यह सुनकर बोले असुर—महाराज, वे बाल।
पल में मारे जायँगे, आप न हों बेहाल॥
हम तो सलाह यह देते हैं भेजिए दूत कोई ब्रज में।
धनुष-यज्ञ उत्सव रचिए आवें वे बालक उत्सव में॥
वह दूत निमंत्रण ले जावे सब गोप को यहाँ ले आवे।
सुत सहित नन्द को आने को उत्साहित करके ललचावे॥
है नंद गोप में साहस क्या, आज्ञा जो प्रभु की वह टाले।
आवे न तुरत मथुरा को वह, हो प्रजा न नृप-आज्ञा पाले॥
बालक जब आवें यहाँ तब कर कई उपाय।
उनका वध करवाइये हाथी से रौंदाय॥
उससे भी बच जाय तो दीजे मल्ल भिड़ाय।
मारेंगे वे बस उन्हें दाँव पेंच दिखलाय॥
उनसे बचना अति कठिन, यह तो जानें आप।
उनको तुरत बुलइए करिए प्रकट प्रताप॥
सुनकर सम्मति असुरों की खल कंस प्रसन्न अपार हुआ।
सोचा उसने अपने मन में भय से मेरा उद्धार हुआ॥
फिर दूत कौन भेजूँ गोकुल, ऐसा उत्पन्न विचार हुआ।
आ गये याद अक्रूर, उन्हें बुलवाने को तैयार हुआ॥
आज्ञा पाकर डरते-डरते अक्रूर पास उसके आये।

सत्कार किया उनका नृप ने तब भी वह थे कुछ घबराये ॥
बोले, क्या आज्ञा है मुझको, किसलिए आपने बुलवाया ?
मैं सेवक आज्ञाकारी हूँ बस सुनते ही दौड़ा आया ॥
हँसकर बोला कंस तब—एक हमारा काम—
करना होगा आपको जाकर गोकुल धाम ॥
नन्दगोप के पुत्र दो कृष्ण और बलराम।
वे मेरे हैं शत्रु अति मायावी बलधाम ॥
है देवों ने यह बात कही, है मौत उन्हीं के कर मेरी।
दिखलाई भी यह पड़ता है, अब बहुत बुरी होगी देरी ॥
जिस तरह बने, मारूँ उनको, बुलवाकर यों छल से बल से।
ले आओ जाकर तुम उनको मीठी बातों के कौशल से ॥
है धनुष-यज्ञ का उत्सव, यों उन नन्द-कुमारों से कहना।
राजा ने तुम्हें बुलाया है, तुम सैर वहाँ करते रहना ॥
नन्दादि गोप उनको लेकर सब साथ वहाँ पर आवेंगे।
वे आकर प्राण गँवावेंगे जीते न लौटने पावेंगे ॥
जाओ तुम अक्रूरजी, करो न सोच-विचार।
इससे होगा मित्रवर, मेरा अति उपकार ॥
मैं राजा हूँ, मित्र हूँ, माननीय हूँ, आप।
करिए मेरा काम यह धर्म अधर्म न थाप ॥
वचन कंस के यह सुनकर अक्रूर प्रथम तो घबराये।
धोखा देना अन्याय समझ संकोच सोच मन में लाये ॥

पर जब उनको प्रभु की प्रभुता आ गई याद तब मुस्काये।
अति धन्य भाग अपने माने जो अनायास दर्शन पाये॥
बोले, राजन्, मैं गोकुल को इस घड़ी अभी ही जाता हूँ।
आज्ञा जो करते हैं स्वामी वह पूरी करके आता हूँ॥
उपनन्द नन्द ग्वाले जितने उनको उत्सव का दूँ न्योता।
बलराम कन्हैया के मन में उत्सुकता बीज प्रबल बोता॥

वे उत्सव को देखने आवेंगे महराज।
ईश-कृपा से पूर्ण सब हो जावेंगे काज॥
यों कहकर अक्रूरजी रथ पर चढ़ तत्काल।
मथुरा से जल्दी चले होकर बहुत निहाल॥

कंस बहुत मन में हरषाना। पूरा हुआ काज सब जाना।
जिन्हें काल भी मन में डरता। जो कि जगत के कर्ता-धर्ता॥
उन्हें कंस चहता है मारा। महामूढ़ पापी हत्यारा॥
रथ पर चढ़ अक्रूर सिधारे। सोचे, कब देखूँगा प्यारे॥

पीताम्बर धारण किये शोभित श्याम शरीर।
दीनबन्धु दानव-दलन हरते जन की पीर॥

अधर धरे मुरली मोहन वन से ब्रज को आते होंगे।
गउओं के झुंड किये आगे गोविन्द गीत गाते होंगे॥
सब ग्वाल बाल साथी होंगे आगे ही होंगे बल भैया।
बलिहारी होंगे शोभा लख नँदराय और जसुदा मैया॥
या खरिक गऊ दुहने जाते दोहनी हाथ में लिये हुए।

गो-धूलि पड़ी अलकावलि पर सिर मोर मुकुट को दिये हुए ॥
मैं भक्ति सहित श्रीचरणों पर लोटूँगा जा बनवारी के ।
कृतकृत्य बनूँगा दर्शन कर राधावर कुंजविहारी के ॥

ऐसे मन में सोचते ब्रज पहुँचे अक्रूर ।
दर्शन करके कृष्ण के थकन हुई सब दूर ॥
देखा सुन्दर कृष्ण को लिये दोहनी हाथ ।
मुस्काते आते खरिक प्रिय बलदाऊ साथ ॥

तब देख दूर ही से प्रभु को अक्रूर तुरत उतरे रथ से ।
पैदल ही भक्ति भरे दौड़े पथ-रज में होकर लथपथ से ॥
श्रीचरण पड़े थे जिस रज में उसमें पहले वह लोट गये ।
आनन्द आँसुओं से भीगे प्रभु-दर्शन से कृतकृत्य भये ॥
फिर जाकर हरि के चरणों पर मस्तक रख दिया प्रणाम किया ।
श्रीकृष्णचन्द्र ने तुरत उन्हें दोनों हाथों से उठा लिया ॥
हैं दीनबन्धु भगवान बड़े, भक्तों पर उनका स्नेह बड़ा ।
वह निर्भय है जो तनमन से श्रीचरणों की जा शरण पड़ा ॥

बोले तब अक्रूर यों दीनबन्धु भगवान ।
कृपा कीजिए दास पर, मैं हूँ मूढ़ अजान ॥
भेजा मुझको कंस ने वह है दुष्ट महान ।
शत्रु न मुझको भी मगर समझें हे भगवान ॥

नौकरी बजाने आया हूँ उस दुष्ट कंस की मैं स्वामी ।
मेरे जी का सब हाल अहो जानते आप अन्तर्यामी ॥

मैं सेवक हूँ श्रीचरणों का, वह दुष्ट वृथा सिर धुनता है।
उपदेश भलाई का कुछ भी मतिमंद नहीं वह सुनता है ॥
अब शीघ्र आप अपनी करनी करके भोगेगा फल उसका।
देखूँगा अपनी आँखों से मरना उसका, छल बल उसका ॥
स्वामी, अब शीघ्र कृपा करिए, मथुरा को चलिए सुखदाई।
उपनन्द नन्द सब गोप चलें बलभद्र साथ प्रभु के भाई ॥
यह सुनकरके श्रीकृष्ण हँसे, बोले—चाचाजी, घर चलिये।
भगवान दंड उनको देगा कंसादिक हैं जितने छलिये ॥

पिता और भाई सभी शीघ्र चलेंगे साथ।
कंसादिक की नारियाँ होंगी शीघ्र अनाथ ॥
यों कहकर अक्रूर को साथ लिये व्रजराज।
पहुँचे अपने घर तुरत करने को सुरकाज ॥

सुना नन्द ने जब घर आये—हैं अक्रूर सुहृद मनभाये।
तब वह तुरत सिधारे घर को। दिखलाया बहु विधि आदर को ॥
कर पूजा सत्कार खिलाया। शयन हेतु परजंक बिछाया।
सुख से बैठ पलँग पर बोले। यों अक्रूर वचन बन भोले ॥

भूप कंस ने धनुप-यज्ञ का उत्सव मथुरा में ठाना।
निशि दिन खेल-तमाशे होंगे उत्सव भी होंगे नाना ॥
तुमको पुत्र सहित राजा ने उत्सव में बुलवाया है।
ले उपहार गोप गण संयुत; शुभ अवसर यह आया है ॥
यह सुन शंकित हुए हृदय में नन्द, देख यह प्रभु बोले—

चलो पिताजी, क्या चिंता है देखें उत्सव सबको ले ॥
हम गँवार नगरी की शोभा चलो देख आवें चलकर ।
तरह-तरह की सैर करेंगे खुश होंगे राजा हम पर ॥

यों कहकर राजी किये पल भर में श्रीनन्द ।
मन में तब अक्रूर के बहुत हुआ आनन्द ॥
सुना गोपियों ने जभी समाचार यह घोर ।
जावेंगे हरि प्रात ही मथुरा नगरी ओर ॥
तब सब व्याकुल हो उठीं आकर हो एकत्र ।
आपस में कहने लगीं भेजो हरि को पत्र ॥

कोई बोली, छलिया निकले ऐसे प्यारे कृष्ण अहो ।
विश्वास भला किसका करिए दुनिया में तुम ही सखी, कहो ॥
पहले यों प्रीति बढ़ा करके अपने अधीन कर लिया हमें ।
अब ऐसे छोड़े जाते हैं, सुख से बढ़कर दुख दिया हमें ॥
दूसरी गोपियाँ यों बोलीं, आँखों के आँसू पोंछ रहीं ।
काले-काले सब छलिया हैं, इनका करना विश्वास नहीं ॥
काली कोयल अपने बच्चों को कौओं से पलवाती है ।
उसकी संतान बड़ी होकर सब मोह छोड़ उड़ जाती है ॥

काला भौंरा देख लो फूलों का रस चूस ।
उड़ जाता, टिकता नहीं, चापलूस, मनहूस ॥
काले बादल भी कहीं टिकते नहीं हमेश ।
वैसे काले श्याम भी देंगे हमें कलेश ॥

फिर मैं तो केवल कुछ दिन को ब्रज छोड़ यहाँ से जाता हूँ।
हो सका जहाँ तक जल्दी ही कर काम लौट कर आता हूँ॥
होकर प्रसन्न दो विदा, मुझे रोने धोने का काम नहीं।
होनी प्रतीति बिन प्रीति नहीं, इसलिए बनो बदनाम नहीं॥
यों कहकर राधा प्यारी को आश्वासन देकर श्याम चले।
गोपियाँ चित्र सी खड़ी रहीं कुछ बचन नहीं मुख से निकले॥
श्रीकृष्णचन्द्र हो विदा तुरत आनन्दकन्द रथ पर आये।
रथ ले घोड़े चल खड़े हुए यह देख देवता हर्षाये।
रथ और ध्वजा रथ की जब तक देखी ब्रजराज बिहारी की।
घोड़ों की टाप सुनायी दी पहियों की धूल दिखाई दी॥
तब तक सब गोपी चित्र-लिखी सुध बुध को खोये खड़ी रहीं।
मन तो सबका हरि संग गया, जड़ देह वहाँ पर पड़ी रहीं॥

चढ़ आया दिन, धूप भी कड़ी हुई जिस काल।
तब घर को लौटीं बड़ी मुश्किल से ब्रज बाल॥
उधर कृष्ण बलदेव को साथ लिये अक्रूर।
पहुँचे मथुरा के निकट रहा नगर कुछ दूर॥
संध्या तर्पण का समय बीता जाता जान।
रोक दिया रथ राह में करने को असनान॥

बलराम कन्हैया रथ ही पर दोनों भाई तब बिठलाये।
अक्रूर आप यमुना तट को संध्या तर्पण करने आये॥
पानी में बैठे स्नान किया गायत्री मंत्र लगे जपने।

इतने में जल में देख पड़े बलराम श्याम आगे अपने ॥
घबराकर जब जल के ऊपर देखा तो वहाँ विराज रहें ।
बातें करते दोनों भाई वैसे ही रथ पर राज रहे ॥
इस तरह भए विह्वल देखा जितनी ही बार जगतपति को ।
वैसा ही पाया जल थल में समझे न नेक हरि की गति को ।

फिर जो जल में डूबकर देखें श्री अक्रूर ।
तो विचित्र ही लख पड़ा दृश्य उन्हें भरपूर ॥
शेष नाग की सेज पर लेटे हैं भगवान ।
लक्ष्मी पैर दबा रहीं सिद्ध करें गुणखान ।

ऋषि मुनि नारद व्यासादि खड़े परमेश्वर की स्तुति करते हैं ।
देवता सभी कर जोड़े हैं संकेत दृष्टि अनुसरते हैं ॥
वैभव अनन्त लीलामय का त्रिभुवन से न्यारी है शोभा ।
जिसका अवलोकन करने से निस्पृह मुनियों का मन लोभा ॥
रोमाँच हुआ यह लीला लख अक्रूर भक्ति में डूब गये ।
निकले जल से बाहर आये रथ पर पहुँचे आनन्द भये ॥
रथ हाँक तुरत मथुरा पहुँचे रहने के डेरे दिखलाये ।
श्रीकृष्णचन्द्र से आज्ञा ले अक्रूर अकेले घर आये ॥
जाकर फिर राजभवन भीतर सब हाल कंस को बतलाये ।
उपनन्द नन्द श्रीकृष्ण और बलराम सभी मथुरा आये ॥

यों बतलाकर कंस से बिदा हुए अक्रूर ।
कृष्णचन्द्र ने राह का किया परिश्रम दूर ॥

इतने ही में आ गये नन्द और उपनन्द ।
गोप ग्वाल लखकर पुरी हुए सभी सानन्द ॥
किया श्याम ने कुछ समय डेरे पर विश्राम ।
फिर ग्वालों को साथ ले चले महाबलधाम ॥
मन में किया विचार सैर करें चल नगर की ।
ग्वाल बाल तैयार चले साथ बलदेव ले ॥
नटवर का भेष बनाये प्रभु सिर मोर मुकुट था सोह रहा ।
साँवले अंग पर पीताम्बर था सब के मन को मोह रहा ॥
गुंजा की माला गले पड़ी कर लकुट लिये बंशी पकड़े ।
साथी गोपाल बली बालक हाथों में हाथ दिये अकड़े ॥
बलदाऊ गोरे सुन्दर थे नीलाम्बर नलिन नैन पहने ।
कुंडल मकराकृत कानों में तन में बहुमूल्य बहुत गहने ॥
यह जोड़ी सुन्दर श्याम गौर जिसने देखी इकटक देखी ।
तन मन की सुरत विसार अहो सँग जाकर दूर तलक देखी ॥
ऊँचे-ऊँचे थे महल रत्न जड़े सुखधाम ।
नारी थीं सब रति मनो पुरुष सभी ज्यों काम ॥
झंडे थे फहरा रहे तोरन बन्दनवार ।
उत्सव शोभा छा रही मंगलमूल अपार ॥
चौड़ी थी सड़क बनी लम्बी जो राजमार्ग कहलाती थी ।
दर्शक का हृदय चुराती थी बरबस निज ओर बुलाती थी ॥
दूकानें सब थी सजी हुई रत्नों के जिनमें ढेर लगे ।

सोने चाँदी की थाह नहीं, दर्शक रह जाते देख ठगे ॥
थे कहीं बजाज बहुत बैठे कपड़ों के थान दिखाते थे।
जौहरी सुनार ठठेरों के सामान सभी मन भाते थे॥
हलवाई लोग मिठाई सब बेचते और मुस्काते थे।
बहु गाहक आते जाते थे खाते थे घर ले जाते थे॥

दृष्टिपात करते हुए सभी ओर सुखधाम।
नगर बीच थे जा रहे बलदाऊ औ श्याम॥
ग्वाल बाल अचरज भरे देख रहे सब ओर।
आपस में करते चुहल और मचाते शोर॥

राजा का रजक बड़ा ऐंठू इस बीच उधर से आ निकला।
कपड़ों का गट्ठर सीस धरे ऐंठता जा रहा था इकला॥
सब धुले हुए नृप के कपड़े लेकर जाता था राजभवन।
हो गई भेंट मग में हरि से, हरि ने उससे ये कहे वचन॥
हे रजक, कहाँ तुम जाते हो? कुछ काम हमारा कर दोगे?
कुछ कपड़े हमको दे करके बदले में हम से धन लोगे?
राजा से भेंट करेंगे हम, चाहिए वस्त्र इससे हमको।
सुनकर बोला वह रजक—अहो देखो लोगो इनके भ्रम को!
ग्वाले गँवार अब पहनेंगे राजसी वस्त्र, क्या हुआ, अहो।
जीवन जो तुमको प्यारा हो कहता हूँ सीधे जरा रहो॥

सुन पावेंगे भूप जो तो कुत्ते की मौत।
वृथा मरोगे, मान लो, क्यों मरते बे मौत॥

सुनकर उसके यह बचन हरि ने मारा हाथ।
प्राणहीन हो गिर पड़ा रजक हाय के साथ ॥
हरि ने गठरी खोल निकाले। कपड़े थे सब ढीले ढाले ॥
तो भी हरि बल ने दो जोड़े। छाँट लिये बाकी सब छोड़े ॥
उन्हें ग्वाल वालों ने पहना। देख देख कहते, क्या कहना ॥
कपड़े सब लग गये ठिकाने। समाचार तब नृप ने जाने ॥

दरजी निपुण एक रहता वहीं पर था,
सज्जन सुशील सीधा भक्त भगवान का।
पहुँच उसी के घर प्रभु ने बढ़ाया मान,
पूजन ग्रहण कर सेवक अजान का।
सादर सुदामा ने समस्त वस्त्र ठीक किये,
पाया बदले में वरदान भक्ति-ज्ञान का।
काट छाँट होने से हजारगुनी शोभा हुई,
वस्त्रों की, सुहाया रूप करुणानिधान का।

भक्त सुदामा माली का आदर सत्कार ग्रहण करके।
प्रिय भक्तों पर अनुकम्पा के करने का पूरा प्रण करके ॥
श्रीकृष्णचन्द्र बलदेव सहित फिर नगरी की मग में आये।
उत्सव लखने को नर नारी लाखों की संख्या में धाये ॥
मेला ऐसा था लगा हुआ थी भीड़ बड़ी कोलाहल था।
घोड़े हाथी पैदल रथ की हलचल थी, बड़ा चलाचल था ॥

कृष्णचन्द्र ने राह में जाते समय विचित्र ।
देखी कुब्जा सुन्दरी जिसका स्वच्छ चरित्र ॥
लिये हाथ में पेटिका जिसमें धरी सवास ।
चन्दन केसर अरगजा सब थे उसके पास ॥
उसका शरीर अति सुन्दर था, पर तीन जगह से कुबड़ी थी ।
जैसे कोई कोमल लतिका आँधी से उड़कर उखड़ी थी ॥
वह लिये सहारा लाठी का नृप कंस-भवन को जाती थी ।
राजा की प्यारी दासी वह उसका सिंगार सजाती थी ॥
लख पाये उसने मनमोहन लखकर उसका मन मोह गया ।
आसक्त हुई तन से मन से हो गया जगत में जन्म नया ॥
श्रीकृष्णचन्द्र को देख खड़ी हो गई राह में कुबजा वह ।
बोले अन्तर्यामी उससे प्रिय वचन अमृत में साने यह ॥
बोले उससे रसिकविहारी । तनिक सुनें तो कथा तुम्हारी ॥
तुम हो कौन, कहाँ हो जाती । हमें देखते ही मन भाती ॥
पेटी कैसी कर में यह है । महक मनोहर कैसी वह है ।
हमको हाल सुनाओ सारा । कहो करें क्या भला तुम्हारा ॥
सुनकर ये श्रीकृष्ण के वचन प्रेम-रस-युक्त ।
बोली कुब्जा सुन्दरी होकर जीवन-मुक्त ॥
नटनागर, सुन्दर, सुखद, मैं हूँ कुब्जा वाम ।
यही नाम है और मैं करूँ कंस का काम ॥
तिलक लगाऊँ माथ में अंगराग भी श्याम ।
पाती हूँ मैं कंस से इसके लिए इनाम ॥

बोले घनश्याम—हमारी भी इच्छा है तिलक लगाने की।
सुन्दरी करो इच्छा पूरी आशा भी है कुछ पाने की।
मुस्कान सहित ये वचन सुने हरि के तो बहुत प्रसन्न हुई।
बोली कुब्जा—हे नटनागर, मैं बड़ी भाग्यसंपन्न हुई॥
यह निकट हमारी कुटिया है, आओ मेरे घर में प्यारे।
यह दासी श्रद्धा-भक्ति-सहित शृंगार बना देगी सारे॥
यों कहकर हाथ पकड़ कुब्जा ले गई भवन में बनवारी।
फिर करी भक्ति के साथ वहाँ प्रभु की पूजा की तैयारी॥

श्याम और बलराम के तिलक लगाये भाल।
शोभा दूनी हो गई दोनों की तत्काल॥
ठोड़ी पकड़ी फिर दबा पैर अँगूठा श्याम।
झिटका देकर श्याम ने सीधी कर दी बाम॥
कुबजा सीधी हो गई परम सुन्दरी बाम।
कर सनाथ उसको चले आगे श्रीघनश्याम॥

कुछ दूर और आगे जाकर पूछा प्रभु ने, है धनुष कहाँ?
जिसका उत्सव नृप ने ठाना देखना उसे है हमें यहाँ॥
लोगों ने राह बता दी तब गोपाल और बलदेव चले।
क्षण भर में दोनों पहुँच गये था धनुष जहाँ उस भवन तले॥
प्रभु ने हँसते-हँसते बढ़कर वह धनुष उठाया निज कर में।
देखते-देखते फिर तोड़ा दो खंड किये पल ही भर में॥

उसका जो शब्द महान हुआ त्रिभुवन उससे सब गूँज गया।
आकाश हिला, धरती काँपी, समझा लोगों ने प्रलय भया ॥

रक्षक जबतक दौड़कर मना करें, उस बीच।
हरि ने तोड़ा ले धनुष झटपट पहुँच नगीच ॥
हाँ हाँ करते सब चले रक्षक जब प्रभु ओर।
तब प्रभु ने कर कोप अति धरा रूप अति घोर ॥
एक-एक धनु-खंड ले हरि बलदेव सकोप।
पल में रक्षक मारकर कर डाले सब लोप ॥

हाहाकार मचा तब भारी। हरि ने जब सेना सब मारी ॥
जो कुछ बचे झपट वह भागे। रोये नृपति कंस के आगे ॥
नृप को सब वृतान्त सुनाया। उसने भी सुनकर भय पाया।
किन्तु प्रकट में बोला पापी। बालक ऐसे हुए प्रतापी!

जाओ उनको बाँधकर लाओ मेरे पास।
मैं कर दूँगा नन्द का क्षण में सत्यानास ॥
ये पाजी ग्वाले बड़े, इनको मारूँ आज।
सबसे आवश्यक यही मेरा है अब काज ॥
यों कहकर नृप कंस तो गया भवन के बीच।
आप डर रहा पाप से अपने वह अति नीच ॥
बलदाऊ श्रीकृष्ण भी ग्वाल-बाल के संग।
चले देखने वे निडर रंग-भूमि का रंग ॥

सुनिए अगले भाग में जैसे राजा कंस।
मरा कृष्ण के हाथ से और मल्ल-विध्वंस ॥
जय केशी के कंस के काल लाल गोपाल।
जय ब्रज-जन-रंजन सदा, जय पहने जयमाल ॥

कंस-वध

१४ वां भाग

जय कंसासुर का निधन करनेवाले श्याम।
जयति भक्तवत्सल प्रभू बसे भक्त हिय धाम॥
श्री राधा आराधना करती हैं दिन रात।
जिनकी, वह ब्रजराज प्रभु जयति साँवले गात॥
गोपाल गोपिका गोवर्धन-गोवर्धनधारी की जय हो।
जय हो ग्वालों के बालों की, श्रीकीर्तिकुमारी की जय हो॥
बड़भागी जसुदा की जय हो, ब्रजबासी नारी की जय हो।
ब्रजराज नंदजी की जय हो, बसुदेव देवकी की जय हो॥
पीताम्बरधारी बनवारी श्रीकृष्णमुरारी की जय हो।
जय हो जय भवभयहारी की रसलीन विहारी की जय हो॥
आओ सब मिलकर जय बोलो निज जन सुखकारी की जय हो।
अघ असुरविदारी की जय हो, पूरन अवतारी की जय हो॥
अब सुनिए श्रोता सकल जैसे मारा कंस।
श्री हरि ने चाणूर गज कुबलय का विध्वंस॥
तोड़ा श्री हरि ने धनुष तब फिर उसका नाद।

व्यापा तीनों लोक में, काँप उठे मनुजाद ॥
दहल उठे दिग्गज सभी, गिरे महल हहराय ।
चहल पहल करते टहल चले कृष्ण मुसकाय ॥
जो रखवाले आ भिड़े गये सकल यमलोक ।
समाचार सुन कंस के छाया मन में शोक ॥
उसने आज्ञा दी तुरत असुरों को ललकार ।
सब ग्वालों को तुम तुरत जाकर डालो मार ॥
यों कहकर पापी कंस चला-तब रंगभूमि को कुपित बड़ा ।
जाकर फिर अपने उत्सव का वह करने लगा प्रबंध कड़ा ॥
गजराज कुवलयापीड़ खड़ा खूनी दरवाजे पर डटकर ।
राक्षस सेना ले शस्त्र खड़ी हो गई वहाँ से कुछ हटकर ॥
चाणूर और मुष्टिक आदिक बलवान मल्ल भीतर बैठे ।
जिनको बल का था गर्व बड़ा उससे वे जाते थे ऐंठे ॥
आज्ञा दी कंस नृपति ने यों, ग्वाले इसके भीतर आवें ।
दरवाजे पर उनको रोको, चाहे जितना बल दिखलावें ॥
हाथी से उनको कुचलाओ । विकट कुवलयापीढ़ बढ़ाओ ॥
बचकर नहीं यहाँ से जावें । दंड किये का अपने पावें ॥
हैं वे ढीठ बड़े अभिमानी । नन्दपुत्र दोनों अज्ञानी ।
तिरस्कार मेरा करते हैं । देखो अभी आप मरते हैं ॥
बचकर हाथी से अगर आवें वे अति दुष्ट ।
तो मारेंगे मल्ल ये मेरे उनको पुष्ट ॥

मतलब मेरा है यही बचें न मेरे शत्रु ।
अबतक ऐसे ही मरे हैं बहुतेरे शत्रु ॥

यों कहकर नृप कंस गया जो मंच बहुत ऊँचा उस पर ।
वह राजमंच था सजा हुआ दुर्गम दुर्गों से भी बढ़कर ॥
उसमें सोने का सिंहासन बहुमूल्य धरा था भूपति का ।
उसपर जाकर राजा बैठा सागर बनकर बस दुर्मति का ॥
थे आसपास जो मंच बने कम ऊँचे या कम लागत के ।
उन पर आ आकर सब बैठे पुरवासी धनी उसी पत के ॥
राजा रजवाड़े ठाठ किये राजसी और जो आये थे ।
नृप ने धनु-उत्सव लखने को बहुदेशों से बुलवाये थे ॥

वस्त्राभूषण वे सजे बाँधे बाँकी पाग ।
मंचों पर बैठे सभी भरे अमित अनुराग ॥
रंगभूमि के द्वार पर बाजे बजे अनेक ।
दुखी उदास न लख पड़े मथुरा भर में एक ॥
उत्सव चारो ओर था नर-नारी एकत्र ।
घूम रहे शोभा लखें नगरी की सर्वत्र ॥

नारियाँ सुन्दरी रति जैसी पोशाकें पहने नर तारी ।
रत्नों के गहने अंगों में रेशमी सुघर सुन्दर सारी ॥
कोठों पर छज्जों के ऊपर खिड़कियों झरोखों से झाँकें
सरकी सिर सारी को जबतब खींचती हुई तन को ढाँकें ॥
उस ओर कृष्ण बलदाऊ भी उत्साह अपरिमित हृदय धरे

कुवलयापीड़ का वध करने आ गये वहाँ उत्साह भरे ॥
वीरों का बानक बना हुआ ग्वालों की सेना साथ लिये ।
यों रंगभूमि के द्वार गये सब मिल हाथों में हाथ दिये ।

चले सिंहशावक सदृश श्याम और बलराम ।
कंधे पर लाठी धरे रंग भूमि अभिराम ॥
पहुँचे नृप के द्वार पर दोनों वीर प्रधान ।
मूर्तिमान ज्यों वीर रस लीलामय भगवान ॥
डटा हुआ था द्वार पर उधर कुवलयापीड़ ।
इधर जमी थी राह में दर्शक जन की भीड़ ॥

सुन बात महावत, यों कहकर जाते ही हरि ने ललकारा ।
हट जा हाथी को हटा अभी जीवन जो अपना हो प्यारा ॥
हम यहाँ निमंत्रण पा करके आये हैं लेकर सब साथी ।
तू राह रोक कर खड़ा हुआ है अड़ा हुआ मस्ता हाथी ।
है कुशल इसी में राह छोड़ भीतर अवश्य हम जावेंगे ॥
अपने करतब से राजी कर राजा से दौलत पावेंगे ।
हरि के ये वचन श्रवण करके हो कुपित महावत यों बोला—
राजा के अतिथि भले आये सम्बन्ध बहुत अच्छा खोला ।

ग्वाले ही तो भूप के अतिथि सुआदरणीय ।
हो सकते हैं, और क्या होंगे नृप नमनीय ॥
पंख निकल आये अहो चींटी के हैं आज ।
बढ़ बढ़कर बातें करो तनिक न आवे लाज ॥

व्रज में तुम गऊ चराते हो दर दर के धक्के खाके हो।
आकर अब मथुरा नगरी में राजसी शान दिखलाते हो ॥
तुम कुशल हमारी मत देखो बस कुशल मनाओ अपनी ही।
क्या प्राण हमारे तुम लोगे बस जान बचाओ अपनी ही ॥
हम तो राजा के सेवक हैं आज्ञा का पालन करते हैं।
तुम क्या हो यम भी आ जावे उसको भी तनिक न डरते हैं ॥
इसलिए इसी में चेम कुशल अपनी अहीर-बच्चे समझो।
टल जाओ गज के आगे से मत मौत महावत से उलझो ॥

अगर हुई हो सीस पर सबके मौत सवार।
तो गज से आकर भिड़ो करो कंस से रार ॥
जब उच्छृंखल ये बचन कहे महावत ढीठ।
बोले तब व्रजनाथ यों डाल क्रोध की दीठ ॥
हमने समझाया तुझे, नहीं मानता दुष्ट।
तो ले मारूँ गज तुरत करूँ कंस संतुष्ट ॥

हरि ने जब बचन कहे ऐसे तब कुपित महावत हुआ बड़ा।
अंकुश को मार बढ़ाया फिर हाथी को जो था वहाँ अड़ा ॥
हरि भी हाथी से भिड़े तुरत छल बल कौशल से युद्ध किया।
आगे आकर पीछे हटकर हाथी को चकमा बहुत दिया ॥
फिर एक बार आगे आये धर सूँड़ दिया झटका भारी।
गिर पड़ा कुबलयापीड़ बड़ा बलवान मिटी शेखी सारी ॥
पहले तो पटका हाथी को वह प्राणहीन हो स्वर्ग गया।

फिर मारा दुष्ट महाव्रत को दिखलाया विक्रम विकट नया ॥
सिर पकड़ मरोड़ा हाथों से हाथी के दाँत उखाड़ लिये ।
रक्षक जो भिड़ने को आये क्षण भर में सभी पछाड़ दिये ॥
ऐसे निष्कंटक विजयी हो दोनों भाई भीतर पहुँचे ।
मृगमंडल में बलवान बड़े मस्ताने शेर बबर पहुँचे ॥

देख कृष्ण बलराम को रंगभूमि के बीच ।
सज्जन तो हर्षित हुए हुए दुखित सब नीच ॥
कंस डरा मन में बहुत समझा आया काल ।
ललकारे उसने तभी मल्ल बड़े तत्काल ।
श्याम रूप अभिराम को निरख नाग से मुक्त ।
दर्शक हुए प्रसन्न सब महाहर्ष से युक्त ॥
निर्भय निरखा श्याम ने रंगभूमि का रंग ।
किये वज्र से भी कड़े कोमल अपने अंग ॥

पाकर के मल्ल इशारा तब राजा का ब्रजपति से बोले ।
आये हो नन्दतनय दोनों अपने साथी ग्वालों को ले ॥
अब हमसे आओ जोर करो बल दाँवपेच कुछ दिखलाओ ।
संतुष्ट हमारे राजा हों तो पुरस्कार मन का पाओ ॥
सुनकर यह वचन कहे हरि ने हँस कर मल्लों से गूढ़ वचन ।
यह क्या करते हो हँसी भला तुम कहाँ कहाँ हम कोमल तन ॥
तुम मल्ल प्रसिद्ध जगत में हो तुमने बहु मल्ल पछाड़े हैं ।
अब तलक हजारों शिष्य किये खोले हर ओर अखाड़े हैं ॥

बड़े बड़े बलवान भी कहें तुम्हें उस्ताद ।
दाँव विकट तुमको सभी सचमुच होंगे याद ॥
हमसे लड़ने में तुम्हें कीर्ति न होगी प्राप्त ।
उल्टे बदनामी बड़ी होगी जग में व्याप्त ॥

हम ग्वाले और गँवार अहो फिर बालक, कैसे भिड़ें भला ।
हम दाँव पेंच क्या जानें जी तुमसे चल सकती कौन कला ॥
इसलिए तुम्हारे तुल्य यहाँ जो पहलवान बुलवाये हों ।
उनसे तुम जोर करो जिसमें खुश हों दर्शक जो आये हों ॥
हरि के यह वचन श्रवण करके चाणूर मल्ल ने कहा—अहो ।
तुम बालक हो यह बात भला कैसे हम मानें, तुम्हीं कहो ॥
पूतना पछाड़ी पल भर में बलवान बकासुर को मारा ।
अघ असुर तृणासुर केश का मेटा घमंड तुमने सारा ॥
कालिया नाग जो विषधर था फुफकार प्राण जिसकी हरती ।
जिसके भय से सब डरते थे काँपती रही थर-थर धरती ॥
उसको नाथा क्षण ही भर में परिवार समेत निकाल दिया ।
यमुना के जल को स्वच्छ किया ब्रज के उस भय को टाल दिया ॥

बड़े बड़ों से हो बली, तुम सा तो बलवान,
देख नहीं पड़ता हमें, तुम हो बल की खान ॥
इससे आओ अब लड़ो रंगभूमि के बीच ।
यों कहकर कर को पकड़ लिया श्याम को खींच ॥

हरि की तो इच्छा यह थी ही इसलिए यहाँ वह आये थे ।
इन दुष्टों का वध करने को ये काम आप करवाये थे ॥
बस बाँध लँगोटा उतर पड़े बलराम श्याम दोनों भाई ।
चाणूर और मुष्टिक इनसे भिड़ गये मल्ल जग-दुखदाई ॥
तब खेल लगे करने उनसे श्रीकृष्णचन्द्र बहु बलधारी ।
छल बल कौशल दिखलाते थे वे मल्ल कला अपनी सारी ॥
श्रीकृष्ण और बलदाऊ भी हँस-हँसकर चोट बचाते थे ।
जो दाँव मल्ल वे करते थे उसका वे तोड़ दिखाते थे ॥

कभी सामने से भिड़ें कभी कनाई काट ।
कभी काट चक्कर चलें नये दिखाते ठाट ॥
कभी सामने खींचते कभी हटाते दूर ।
कभी अंग दोनों मलें उठा-उठाकर धूर ॥

हस्ती चपरास सखी मारी फिर टाँग भरी उस पर मारा ।
मारी उखेड़ पुट्ठी मारी बगली बैठे दुश्मन हारा ॥
की गिरह पकड़ लाये नीचे, नीचे से निकले फिर पकड़ा ।
इस तरह सैकड़ों दाँव हुए तसवीर बना हर एक खड़ा ॥
बढ़ता था तेज इधर हरि का घटता था तेज उधर अरि का ।
बल विक्रम साहस में कोई हो सकता तुल्य भला हरि का ॥
उस समय भावना जैसी थी श्रीहरि के प्रति जिसके मन में ।
उसको वैसे ही देख पड़े वह रंगभूमि में उस छन में ॥

मल्लों को तो वज्र के समाज कड़े अंग वाले,
अन्य मानवों को पुरुषोत्तम सभी से बड़े।
नारियों को काम गोपगण को स्वजन,
दुष्ट राजों को दमनकारी शमन से थे वे खड़े।
योगियों को ब्रह्म, मृत्यु कंस को वे जान पड़े,
जड़ रूप अज्ञों को दिखाई पड़े विगड़े।
माता औ पिता को निज बालक समझ पड़े,
यादवों को देवता स्वरूप कृष्ण देख पड़े।
लोग लगे कहने ये नन्द के तनय नहीं,
वसुदेव-देवकी के ये तो उपजाये हैं।
कंस ही के भय से पिता ने रातो-रात आप,
जन्मते ही नन्द घर ब्रज पहुँचाये हैं।
कालिया निकाला नाग पूतना, वकासुर,
अघासुर कुबलया के काल मन भाये हैं।
यादवों के त्राता सुखदाता अब माता-पिता
कैद से छुड़ाने को ये मथुरा में आये हैं॥

इधर लोग कहते ये बातें। उधर मल्ल करते थे घातें।
जानु-जानु से सिर को सिर से। हट-हट कर वे भिड़ते फिर से॥
बचकर पेंच कर रहे नाना। बदल पैंतरे विविध विधाना।
जोर लगाते सारे तनका। काम कर रहे नृप के मन का॥
देख युद्ध पुरनारियाँ करें परस्पर बात।

अहो सखी, यह हो रहा है अनर्थ उत्पात ॥
कहाँ वज्र से अंग के पहलवान ये ज्वान।
कहाँ कुसुम-सुकमार ये बालक मृदुल महान ॥
देख रहे जो यह अधर्म का युद्ध उन्हें पातक होगा।
यह कृत्य कुटिल इस नृपति कंस का सखी सत्य घातक होगा ॥
जो बैठ सभा में अनुचित होता लखकर भी चुप रहता है।
वह भ्रष्ट धर्म से होता है, यह शास्त्र हमारा कहता है ॥
ये लोग नहीं जो सहमत थे तो शीघ्र इन्हें उठ जाना था।
क्या करता कंस नृपति इनका इनको उसको समझाना था ॥
मित्रता वैर या युद्ध सखी त्यों व्याह बराबर में करिए।
यह आज्ञा शास्त्र हमें देता इसके विरोध में मत डरिए ॥
कुछ भी हो हम तो कहें, जीतेंगे ये बाल।
अन्यायी का पाप ही उसका होता काल ॥
ब्रजबालाएँ धन्य हैं जो यह श्याम स्वरूप।
सदा देखती आँख से अति अनुरूप अनूप ॥
जो पुण्य किया हो कुछ हमने तो माँगें यह वर विधना से।
श्रीकृष्णचन्द्र जीतें जल्दी इन दुष्टों का जीवन नासे ॥
इस तरह प्रेम में मग्न हुई मथुरा की नारी कहती थीं।
सच्चे जी से व्याकुल हो हो श्रीकृष्ण-विजय सब चहती थीं ॥
इस ओर कृष्ण बलदेव रहे कुछ देर खेलते मल्लों से।
कोई हँसोड़ ज्यों क्रीड़ा कर भिड़ता है निबल निठल्लों से ॥

जब देखा माता और पिता सब गोप हो रहे चिंतित हैं।
देवता खड़े नभमंडल में लीला दर्शन से विस्मित हैं॥

दोनों करते युद्ध यों कृष्ण और चाणूर।
मुष्टिक से बलदेव भी लड़ते थे कुछ दूर॥
वज्रतुल्य हरि-अंग के लगने से हो चूर।
शिथिल हो चला अति अधिक महा मल्ल चाणूर॥
घूँसेबाजी तब लगा करने होकर क्रुद्ध।
मल्ल-युद्ध में जो कि था बिलकुल न्यायविरुद्ध॥

घूँसा एक तानकर उसने हरि की छाती पर मारा।
विचलित हुए नहीं हरि जैसे अंकुश हाथी पर मारा॥
तब हरि ने चाणूर मल्ल के दोनों हाथ पकड़ करके।
उठा लिया फिर उसे घुमाया बारम्बार जकड़ करके॥
पटका पृथ्वी पर फिर उसको तुरत मर गया वह पापी।
केश-वेश सब उसके बिखरे, हलचल मची, धरा काँपी॥
उधर मल्ल मुष्टिक ने ज्योंही बलदाऊ पर वार किये।
बलदाऊ ने मार तमाचा उसके भी ले प्राण लिये॥

रक्त वमन करता हुआ मुष्टिक महा अधीर।
मरकर धरती पर गिरा काँपा सकल शरीर॥
ज्यों आँधी के वेग में जड़ से उखड़ा पेड़।
गिर पड़ता है भूमि पर तोड़ - फोड़कर मेड़॥

त्यों ही मुष्टिक जब गिरा आया कूट कराल।
उसको भी बलराम ने मारा तब तत्काल॥

शल तोशल आदि पहलवानी दिखलाने आये मल्ल घने।
बलदेव-कृष्ण-बल-पावक में पड़कर पतंग वे तुरत बने॥
जब मुख्य मल्ल यों क्षण भर में श्रीकृष्ण और बल ने मारे।
तब चेले उनके भाग गये, वे सब क्या लड़ते बेचारे॥
जब हुआ अखाड़ा सब सूना तब ग्वालबाल अपने साथी—
निज निकट बुलाये हरि बल ने, उनको फिर किसकी शंका थी॥
आपस में जोर लगे करने हँस-हँसकर जब सब ब्रजवासी।
तब कंस भूप को क्रोध बड़ा हो आया लखकर अविनाशी॥

हुआ कंस को कोप, पर जो थे साधु स्वभाव।
वे सराहने सब लगे हरि का प्रकट प्रभाव॥

इससे पापी जल मरा और महीपति कंस—
सिरपर उसके काल था होना था विध्वंस—

बोला यों ललकार कर—कर दो बाजे बंद।
कैद करो सब गोपगण पुत्र सहित खल नंद॥

इनका सरबस लूट लो, ये हैं सभी गँवार।
मनमाने इन पर करो मिलकर अत्याचार॥

बसुदेव देवकी को पकड़ो, बैरी हैं मेरे, स्वजन नहीं।
सब बुरा हमारा यह चाहें, मेरा यह मिथ्या कथन नहीं॥

मेरा जो काल उसे पाला इसलिए नन्द को भी मारो।
श्रीकृष्ण और बलदाऊ को पकड़ो, मत हिम्मत को हारो ।।
करता प्रलाप यों कंस खड़ा जब खड़्ग खुला लेकर कर में।
तब कृष्णचन्द्र भी कुपित हुए बोले कठोर रूखे स्वर में ।।
सुने वचन जब कंस के कुपित हुए गोपाल।
बोले क्या बक-बक करे, आया तेरा काल ।।
क्या बकते हो कुछ सोचो तो मेरा बिगाड़ क्या सकते हो ?
तुम आप करो जो करना हो औरों का मुँह क्या ताकते हो ।।
यत्न बहुत अब तक किये भेजे असुर अनेक।
क्या बिगाड़ मेरा सके, चाल चली नहिं नेक ।।
मरी पूतना आप ही मरा बकासुर दुष्ट।
तृणावर्त तृण सा उड़ा देव हुए संतुष्ट ।।
केशी धेनुक अघ मरे तथा कालिया नाग।
अब भी वही अलापते अहो बेसुरा राग ।।
आकर मथुरा ही में मैंने उस कठिन शरासन को तोड़ा।
शत-शत हाथी के बलवाला कुबलयापीड़ हनकर छोड़ा ।।
ये मल्ल तुम्हारे सब मारे फिर भी कुछ सूझ नहीं पड़ता।
क्या कोई बालक भी उनसे लड़ता आगे आकर अड़ता ।।
पैदा होने के पहले ही देवों ने तुम्हें बताया था।
तेरा मैं काल अटल हूँ रे, नारद ने तुझे जताया था ।।
सूझता नहीं तुझको फिर भी, मारना चाहता है मुझको।

त्यों ही मुष्टिक जब गिरा आया कूट कराल।
उसको भी बलराम ने मारा तब तत्काल ॥

शल तोशल आदि पहलवानी दिखलाने आये मल्ल घने।
बलदेव-कृष्ण-बल-पावक में पड़कर पतंग वे तुरत बने ॥
जब मुख्य मल्ल यों क्षण भर में श्रीकृष्ण और बल ने मारे।
तब चेले उनके भाग गये, वे सब क्या लड़ते बेचारे ॥
जब हुआ अखाड़ा सब सूना तब ग्वालबाल अपने साथी—
निज निकट बुलाये हरि बल ने, उनको फिर किसकी शंका थी ॥
आपस में जोर लगे करने हँस-हँसकर जब सब ब्रजवासी।
तब कंस भूप को क्रोध बड़ा हो आया लखकर अविनाशी ॥

हुआ कंस को कोप, पर जो थे साधु स्वभाव।
वे सराहने सब लगे हरि का प्रकट प्रभाव ॥

इससे पापी जल मरा और महीपति कंस—
सिरपर उसके काल था होना था विध्वंस—

बोला यों ललकार कर—कर दो बाजे बंद।
कैद करो सब गोपगण पुत्र सहित खल नंद ॥

इनका सरबस लूट लो, ये हैं सभी गँवार।
मनमाने इन पर करो मिलकर अत्याचार ॥

बसुदेव देवकी को पकड़ो, बैरी हैं मेरे, स्वजन नहीं।
सब बुरा हमारा यह चाहें, मेरा यह मिथ्या कथन नहीं ॥

मेरा जो काल उसे पाला इसलिए नन्द को भी मारो।
श्रीकृष्ण और बलदाऊ को पकड़ो, मत हिम्मत को हारो॥
करता प्रलाप यों कंस खड़ा जब खड़ग खुला लेकर कर में।
तब कृष्णचन्द्र भी कुपित हुए बोले कठोर रूखे स्वर में॥

सुने वचन जब कंस के कुपित हुए गोपाल।
बोले क्या बक-बक करे, आया तेरा काल॥

क्या बकते हो कुछ सोचो तो मेरा बिगाड़ क्या सकते हो ?
तुम आप करो जो करना हो औरों का मुँह क्या ताकते हो॥

यत्न बहुत अब तक किये भेजे असुर अनेक।
क्या बिगाड़ मेरा सके, चाल चली नहिं नेक॥
मरी पूतना आप ही मरा बकासुर दुष्ट।
तृणावर्त तृण सा उड़ा देव हुए संतुष्ट॥
केशी धेनुक अघ मरे तथा कालिया नाग।
अब भी वही अलापते अहो बेसुरा राग॥

आकर मथुरा ही में मैंने उस कठिन शरासन को तोड़ा।
शत-शत हाथी के बलवाला कुबलयापीड़ हनकर छोड़ा॥
ये मल्ल तुम्हारे सब मारे फिर भी कुछ सूझ नहीं पड़ता।
क्या कोई बालक भी उनसे लड़ता आगे आकर अड़ता॥
पैदा होने के पहले ही देवों ने तुम्हें बताया था।
तेरा मैं काल अटल हूँ रे, नारद ने तुझे जताया था॥
सूझता नहीं तुझको फिर भी, मारना चाहता है मुझको।

अब देख अभी मैं प्राण हरूँ नीचे घसीट करके तुझको ॥
जो कि सहायक हों उन्हें अभी बुला ले दुष्ट ।
तुझे मरा फिर देखकर होंगे सुर संतुष्ट ॥
जब मौत शीश पर आती है विपरीत बुद्धि तब होती है ।
अकल्याण होना होता तब सुधबुध सारी खोती है ॥
तू औरों को क्या कैद करे, अपनी ही कुशल मना अब तो ।
मैं दुष्टों का हूँ काल अरे तू यमपुर आप चला अब तो ॥
यादव सब बहुत सताये हैं तूने भरसक कलपाये हैं ।
बालक मारे बूढ़े सारे भर पेट सदैव सताये हैं ॥
नर-नारी अत्याचारी, यों तूने दुख दिये रुलाये हैं ।
वे ही सब तेरे कर्म बुरे अब आगे इस दम आये हैं ॥
देख तुझे मारूँ अभी कर ले जल्द बचाव ।
मुख से बक-बक कर चुका तनिक सामने आव ॥
ऐसे कहकर नन्दसुत उछल चढ़ गये मंच ।
देख कंस घबरा गया सुधबुध रही न रंच ॥
घबराकर आसन से उठकर तलवार ढाल पकड़ी कर में ।
सामने पैतरा बदल खड़ा हो गया दुष्ट पल ही भर में ॥
हरि ने पर फुरती ऐसी की, रहा वह कुछ कर सका नहीं ।
बस लिया दबोच उसे हरि ने रह गया जहाँ का तहाँ वहीं ॥
ज्यों गरुड़ नाग विषधर पकड़े वह नहीं छूट पाता उनसे ।
उस तरह कंस को पकड़ लिया हरि ने भी छल-बल के गुन से ॥

सिर पकड़ गिराया मुकुट झपट फिर केश गहे कसकर अरि के।
मोती से श्रमकण झलक रहे मुखकमल बीच शोभित हरि के॥

हाथ-पैर पटके बहुत छूट न पाया कंस।
करने को उद्यत हुए कृष्ण कंस-विध्वंस॥
उसे उठाकर मंच से पटका पृथ्वी बीच।
गिरा अधमरा हो वहीं देव-शत्रु वह नीच॥

पृथ्वी पर आया कंस इधर श्रीकृष्ण उधर उस पर आये।
ज्यों गाज गिरे पर्वत ऊपर त्यों हरि ने करतब दिखलाये॥
बस प्राणहीन हो पृथ्वी पर पड़ गया कंस खल मुँह बाये।
खुल गये केश पट शिथिल हुए था हाथ पैर सब फैलाये॥
फिर जैसे सिंह बली गज का करता शिकार क्रोधित होकर।
वैसे ही हरि ने मरने पर उसका शरीर खींचा भूपर॥
दर्शक अथवा कंसासुर के दल के जो लोग उपस्थित थे।
वे हाहाकार लगे करने, पर सज्जन सब आनन्दित थे॥

कंस हर घड़ी कृष्ण का करता रहता ध्यान।
अंत समय भी कृष्ण के कर से मरा सुजान॥
इसीलिए बस अंत को पाई उसने मुक्ति।
काम आ गई कंस की वैर-भजन की युक्ति॥

जब कंस कुटिल हरि के हाथों मारा इस तरह गया पल में।
तब उसके भाई आठ चले जो न्यून न थे उससे बल में॥
भाई का बदला लेने को जब कंक आदि दौड़े भाई।

तब कुपित हुए बलदाऊ ने वे भी मारे सब दुखदाई ॥
उस समय नगाड़े सुरगण ने सानन्द बजाये हर्षाये।
जयकार सहित स्तुतियाँ करके बहु दिव्य फूल भी वर्षाये ॥
नाचने लगीं अप्सरा मुदित गन्धर्व गान में मस्त हुए।
देवता प्रफुल्लित-चित्त हुए दानव दुखिया सब त्रस्त हुए ॥

कंस नृपति की नारियाँ अनुज-वधू उस काल।
बिलख-बिलख कर रो रही आई बहुत बिहाल ॥
तब श्रीहरि ने पास जा समझाया सब भाँति।
दाह-कर्म उनका सभी करवाया सब भाँति ॥

फिर माता-पिता जहाँ उनके बन्दी बनकर दुख पाते थे।
उस खल के अत्याचारों से जल्दी निज मौत मनाते थे ॥
उस जगह कृष्ण बलदाऊ तब चले प्रथम मिलने उनसे।
बंधन से उन्हें छुड़ाने को देने को मुक्ति तमोगुन से ॥
जाकर बंधन से मुक्त किया चरणों में उनके मस्तक रख।
वसुदेव देवकी के आँसू बह चले भले सुत दोनों लख ॥
समझाया और विनय भी की हरि ने यों उन्हें प्रसन्न किया।
दुख सारा उनका पल भर में श्रीकृष्णचन्द्र ने मिटा दिया ॥

उग्रसेन के पास जा करके बन्धन-हीन।
सिंहासन पर राज्य के किया उन्हें आसीन ॥
बोले—हमको भाग्यवश है ययाति का शाप।
इससे मथुरा में अभी राज्य कीजिए आप ॥

हम सेवक हैं आपके आज्ञापालक भृत्य।
दबे देवगण आपके तीक्ष्ण तेज से नित्य॥
वृष्णि भोज अंधक तथा कुक्कुर मधु यदुवंस।
मथुरा में फिर आ बसे जान मर गया कंस॥
यों मथुरा में शांति कर गये नन्द के पास।
कृष्ण बिना जो हो रहे मन में महा उदास॥
समझाया उनको बहुत कही विवशता टेर।
फिर बोले श्रीकृष्णजी दयादृष्टि से हेर॥
पिता हमारे आप हैं सच्चे स्नेहनिधान।
आप जाइये व्रज अहो, कैसे कहें सुजान॥
किन्तु यहाँ पर काम हैं करने मुझे अनेक।
ठहर न सकते आप भी इतने दिन तक नेक॥
अच्छा इससे है आप चलें ब्रज का प्रबंध करने तबतक।
मैं करके सारे काम यहाँ आऊँगा अपने ब्रज बेशक॥
माता को देना धीरज त्यों सब गोपी ग्वाल न दुःखित हों।
मैं आऊँगा भरसक जल्दी जिसमें सब काम सुनिश्चित हों॥
सुन वचन कृष्ण के नन्द हुए विह्वल आकुल घबराये से।
कुछ कह न सके मन मार चले ब्रज को धन गाँठ गँवाये से॥
इसके उपरान्त जनेऊ फिर हो गया कृष्ण बल भाई का।
गुरुकुल में विद्याध्ययन किया करके विनाश अन्यायी का॥

वेद और उपवेद त्यों विविध धर्म शुभ नीति।
सांदीपिन गुरु से पढ़ी यदुपति ने कुल-रीति॥
फिर मृत गुरु-सुत ला दिया यमपुर जाकर आप।
ऐसी दी गुरुदक्षिणा करके प्रकट प्रताप॥
सुन्दर सुखद चरित्र यह कृष्ण-कथा सुपवित्र।
पढ़ते सुनते ध्यान दे जो जन जान विचित्र॥
उनके मिटते शत्रु हैं, बढ़ते उनके मित्र।
अंत समय मिलता उन्हें सुरपुर परम पवित्र॥
श्रोतागण मन लायके कह दो सब इस काल।
जय जय कंसासुरदमन कृष्णचन्द्र गोपाल॥

—(:०:)—

पिता-पुत्र-संवाद

१५ वाँ भाग

नन्दनन्द आनन्द के कन्द कलिकलुषकाल।
राधावल्लभ रुक्मिणी - प्राण - पालक गोपाल ॥
कृष्ण कहत ही पातकी तरत तुरत कलिकाल।
मरत पुकारत हरि हरत दुरित दुरंत दयाल ॥
अब सुनिए संवाद शुभ व्यासपुत्र शुकदेव।
कथा परीक्षित से कही जो सुन्दर स्वयमेव ॥
कंसनिधन त्यों उग्रसेन का सिंहासन फिर से पाना।
कंस-अनुज आठों का वध त्यों नन्दादिक का ब्रज जाना ॥
कहकर नारद फिर यों बोले भीष्मक भूपति से हरषे।
देख चरित्र कृष्ण के नभ से फूल सकल सुरगण बरषे ॥
कृष्णचन्द्र वह नारायण का हैं अवतार, कहा मानो।
लक्ष्मी है साक्षात तुम्हारी सुता रुक्मिणी सच जानो ॥
दोनों का सम्बंध अलौकिक युग-युग से होता आया।
अब की भी यह उन्हें वरेगी वह ईश्वर यह है माया ॥
धन्य तुम्हारे भाग्य हैं कन्या

धन्य हुआ मैं भी इन्हें देख यहाँ पर आय ॥
असुर-अंश से अवतरे अवनी आज अनेक ।
विघ्न करेंगे वे, मगर नहीं चलेगी एक ॥
श्रीकृष्णचन्द्र आकर पलमें उनके मन्सूबे मेटेंगे ।
रुक्मिणीहरण करके क्षण में दोनों प्रेमी फिर भेटेंगे ॥
चिन्ता चित में तुम कुछ न करो, है अंत भला सो भला सदा ।
पापी पछताते रहते हैं सहते हैं विपदा पर विपदा ॥
अब आज्ञा मुझको दो नरवर, मैं ब्रह्मलोक को जाऊँगा ।
यह समाचार जाकर सत्वर सुरमंडल बीच सुनाऊँगा ॥
सुनकर नारद के वचन हुए राजा-रानी आनन्द-मगन ।
रुक्मिणी कुमारी ने हरि को अर्पण कर डाला निज जीवन ॥
तन मन जीवन सब किया अर्पन प्रेम समेत ।
कृष्ण छोड़कर और का रहा न उनको चेत ॥
लगी लगन श्रीकृष्ण से मिलने को बस एक ।
पति मेरे श्रीकृष्ण ही, हुई एक यह टेक ॥
राजा रानी ने नारद को पूजा, सादर सत्कार किया ।
रुक्मिणी कुमारी ने उठकर नारद का आशीर्वाद लिया ॥
सानन्द प्रेम से कर रखकर सिर पर उस राजकुमारी के ।
गुनगान ध्यान करते मन में त्रिभुवनपति गिरिवरधारी के ॥
ऋषिवर नारद ने कहा यही, तुम राजकुमारी, सुखी रहो ।
श्रीकृष्णचन्द्र को तुम पाओ निष्फल अभिलाषा कभी न हो ॥

सानन्द गगन की राह खड़ा उत्साह ब्याह मैं देखूँगा ।
दुष्टों का दमन निहारूँगा शिष्टों की रक्षा लेखूँगा ॥
यों कहकर नारद हुए क्षण में अंतर्द्धान ।
राजा रानी रुक्मिणी तीनों सुखी महान ॥
अब आगे जो कुछ हुआ सुनिए सो मन लाय ।
रुक्मी ने जो कुछ किया विघ्न क्रोध में आय ॥
भीष्मक का पुत्र प्रतापी था रुक्मी ही सबसे बड़ा, मगर ।
खोटा था मनका वह भारी हठधर्मी हरि का शत्रु निडर ॥
नारद से हरि के गुण सुनकर भीष्मक ने दृढ़ निश्चय ठाना ।
श्रीकृष्णचन्द्र को जामाता मन ही मन पहले से माना ॥
था पुत्र बराबर का उससे पूछना उचित समझा फिर भी ।
इक दिवस प्रेम से पास बुला राजा बोले कैसा है जी ?
आओ बैठो बेटा, तुमसे मुझको सलाह कुछ लेना है ।
रुक्मिणी सयानी हुई हमें उसका विवाह कर देना है ॥
कुल में गुण में रूप में विद्या में अनुरूप ।
ऐसा कोई खोजिए परमप्रतापी भूप ॥
रुक्मी बोला तब अजी वर हैं पड़े अनेक ।
पर मैंने है चुन लिया पहले ही से एक ॥
मेरी भगिनी के तुल्य नहीं पृथ्वी पर कोई नारी है ।
वह रूपवती सुकुमारी है गुनवन्ती राजदुलारी है ॥
सिर आँखों पर बिठलावेगा उसको जो राजा पावेगा ।

पुरखों के भाग सराहेगा जो अपने घर ले जावेगा ॥
चन्देरी नरनायक हैं, शिशुपाल बड़े ही लायक हैं।
रिपुघाती उनके सायक हैं, सुरपति से उनके पायक हैं ॥
मेरे वह मित्र बड़े भारी सब भाँति सदैव सहायक हैं।
रुक्मिणी कुमारी के लायक बस एक वही नरनायक हैं ॥

मैंने निश्चय कर लिया करूँ बहन का ब्याह।
चन्देरी नरनाथ के साथ सहित उत्साह ॥
चिंता मत कुछ कीजिए, वर है वह शिशुपाल।
पत्र भेजता हूँ पिता, वहाँ अजी तत्काल ॥

सुत के ये बचन श्रवण करके भीष्मक नृप मन में घबराये।
है हठी पुत्र यह सोच बहुत निज नादानी पर पछताये ॥
घबराकर बोले अरे अभी इतनी जल्दी क्यों करते हो ?
माता से तो पूछो भैया ऐसी गलती क्यों करते हो ॥
है बहन तुम्हारी अब स्यानी, उसकी भी इच्छा पहचानो।
भोगना उसी को जीवन भर सुख-दुख होगा यह सच जानो ॥
फिर उसकी करो उपेक्षा क्यों, पूछना उसी से पहले है।
सब सोच समझ कर काम करो चिन्ता मुझको भी जी से है ॥

सुनकर भीष्मक के बचन रुक्मी राजकुमार।
बोला फिर यों बिगड़ कर कुटिल कठिन उद्गार ॥
क्या कहते हैं आप भी वृद्ध हुए महराज।
कन्याएँ करती सदा ब्याह-काज में लाज ॥

कन्या से क्या पूछना, उसको क्या है ज्ञान ?
भाई दे अथवा पिता जिसको वही प्रमान ॥
शिशुपाल चँदेरी का राजा मेरा है मित्र बड़ा भारी।
कुल-शील-रूपगुण-बल-विद्या वैभव से पूरा अवतारी ॥
सब राजा उसका मान करें हम भी उसका सम्मान करें।
है उचित यही बस आप उसे अपनी कन्या का दान करें ॥
उस जैसा या उससे बढ़कर है कौन और बर, बतलावें।
है भला आपकी क्या मंशा वह भी तो हम कुछ सुन पावें ॥
रह गई रुक्मिणी की इच्छा, पूछूँगा उससे भी जाकर।
मुझको विश्वास हृदय से है खुश होगी ऐसा वर पाकर ॥
माता से भी पूछना आप जानिए व्यर्थ।
हित - अनहित के जानने में वह नहीं समर्थ।
केवल मेरी बात पर आप करें विश्वास।
मिले रुक्मिणी को सभी सुख के भोग-विलास ॥
हाँ अगर आप ही जो इसको कारणवश अस्वीकार करें।
शिशुपाल वीर को निज कन्या देने में सोच-विचार करें ॥
तो साफ-साफ सब कह डालें उसका कारण भी बतलावें।
यह टाल-मटोल नहीं अच्छी उलटी-सीधी क्यों समझायें ॥
रुक्मिणी व्याह के योग्य हुई, अच्छी है इसमें देर नहीं।
मैं वही करूँगा जो मैंने सोचा है, यह अन्धेर नहीं ॥
शिशुपाल सभी से अच्छा है, यह बात दुबारा कहता हूँ।

रुक्मिणी सुखी हो इतना ही मैं तन-मन-धन से चहता हूँ ॥
रुक्मी के सुन ये बचन भीष्मक हुए उदास ।
पुत्र हठी है जान यह मन में उपजा त्रास ॥
बोले फिर समझावते मधुर वचन धर धीर ।
सचमुच है शिशुपाल भी वीर और गम्भीर ॥
उससे सम्बन्ध न अनुचित है, है लाभ हमारा भी इसमें ।
होगा सब भाँति सहायक वह, है हमें सहारा ही इसमें ॥
पर एक रहस्य न तुम जानो, वह मैं तुमको बतलाता हूँ ।
जो कहा देवऋषि नारद ने सारा संवाद सुनाता हूँ ॥
इक दिवस देवऋषि नारदजी कुण्डिनपुर राजमहल आये ।
वीणा वादन करते-करते नारायण के गुण-गण गाये ॥
रुक्मिणी सहित रानी आई, मैंने भी उन्हें प्रणाम किया ।
होकर प्रसन्न तब मुनिवर ने हम सबको आशीर्वाद दिया ॥
मैंने फिर उनसे कहा राजकुमारी नाथ ।
सेवा में आई खड़ी देखो इसका हाथ ॥
कैसे लक्षण हैं पड़े, यह बतलावें आप ।
सन्तति की हितकामना करते हैं सब बाप ॥
हो गई ब्याह के योग्य सुता, प्रभु, कौन योग्य इसके वर है ?
जो पावेगा इसको जग में वह कौन सुभट सुन्दर नर है ?
सुन मेरा प्रश्न प्रसन्न हुए, मुनिवर ने थोड़ा ध्यान किया ।
फिर बोले राजन, मैंने सब इसका भविष्य है जान लिया ॥

इसके कर की रेखा देखी, है सुता सुलक्षण सुखदाई।
लक्ष्मी से बढ़कर बड़भागी कन्या नृपवर, तुमने पाई॥
इसके पति तो नारायण ही होंगे, यह बात न झूठी है।
यह लक्ष्मी का अवतार अहो अनुपम सब भाँति अनूठी है॥

यदुकुल में हरि अवतरे कृष्णचन्द्र भगवान।
जिनकी महिमा है अगम जाने जिन्हें ज़हान॥

विधना ने है रच दिया, यह सम्बन्ध अनूप।
इससे चिन्ता छोड़ दो हे कुण्डिनपुर-भूप॥

यों कहकर मुनि ने कृष्णचन्द्र के चरित मनोहर सभी कहे।
रुक्मिणी तभी से पति अपना मानती कृष्ण को, उन्हें चहे॥
है विदित रहस्य मुझे इसका, इसलिए मना करता बेटा।
जल्दी करने से हानि न हो, इसको मैं हूँ डरता बेटा॥
मेरी भी सम्मति में अच्छा सम्बन्ध यही अति उत्तम है।
यदुकुल इस समय समुन्नत है, बढ़ती ही का उसके क्रम है॥
श्रीकृष्ण स्वयं सब लायक हैं सेवक उनके नर-नायक हैं।
वह विष्णुभक्त सुखदायक हैं, अरिघाती उनके सायक हैं॥

तुम भी मानो बात यह, जाने दो शिशुपाल।
सदा सहायक होंयगे हम सबके गोपाल॥

सुने पिता के जब वचन कृष्ण-पक्ष-अनुकूल।
तब रुक्मी जलभुन गया बोला ऊलजलूल॥

उसके सारे मित्र, दुष्ट शत्रु थे श्याम के।
इसमें कौन विचित्र, वह जो बैरी श्याम का॥

रुक्मी की आँखें लाल हुईं फिर लगे फड़कने होंठ अधर।
कर क्रोध बड़ा बोला तब यों, क्या दूँ इसका तुमको उत्तर॥
हो पिता इसीसे मैं चुप हूँ कोई जो और यही कहता।
तो इसका फल उसको मिलता, मैं भला बात ऐसी सहता?
श्रीकृष्ण नीच अभिमानी है, राजों में उसका मान कहाँ।
सोचो तो हैगा ध्यान कहाँ, हम कहाँ कृष्ण का स्थान कहाँ॥
ग्वालों ने उसको पाला है, साँचे में अपने ढाला है।
मन भी शरीर सा काला है, वह पाजी और रिजाला है॥

उसके लायक हैं वही गोपी ब्रज की नारि।
उसे न ब्याहेगी कभी कोई राजकुमारि॥
छल से मारा कंस को मामा था जो भूप।
काम नहीं यह दुष्ट का वीरों के अनुरूप॥

मेरे जीते जी वह पापी रुक्मिणी नहीं पा सकता है।
कैसा अन्धेर यज्ञ-हवि को कुत्ता लेने को तकता है॥
सिंहनी स्यार की पत्नी हो, बगले को हंसी प्यार करे।
यह कभी नहीं हो सकता है, लंगूर हूर का हृदय हरे।
तुम तो राजन सठियाये हो, इसलिए गई मति मारी है।
दम भरते हो नालायक का, यह चेष्टा वृथा तुम्हारी है॥
रुक्मी के सुनकर वचन कड़े भीष्मक राजा फिर मौन रहे।

वह चला रुक्मिणी से मिलने मन में अपनी ही टेक गहे ॥
मिली बीच में पर उसे उसकी रानी और
बातचीत उससे हुई उसकी फिर इस तौर ॥
स्वामी, जाते हो कहाँ, किस पर आया क्रोध।
है विरोध किसने किया, ऐसा कौन अबोध ॥
सुनकर पत्नी के वचन बोला रुक्मी मूढ़।
तुम क्या जानो बात है एक बड़ी ही गूढ़ ॥
कहो कहाँ है रुक्मिणी जाओ अभी तुरंत।
यहाँ बुला लाओ उसे, झगड़े का हो अंत ॥
मुसकाकर रानी तब बोली—बोलो क्या झगड़ा है प्यारे।
रुक्मिणी बुलाई जाती है किस लिए इस तरह हे प्यारे ॥
तुम दोनों का जो झगड़ा हो उसको तुरन्त निपटा दूँगी।
मन-मैली करके दूर अभी दोनो को शीघ्र मिला दूँगी ॥
यों कहकर रानी हँसी मगर रुक्मी का क्रोध न शान्त हुआ।
वह और बिगड़कर यों बोला अभिमानी अति दुर्दान्त हुआ ॥
हर घड़ी हँसी सूझती तुम्हें, मैंने तुमको सिर चढ़ा लिया।
जानती नहीं तुम राजा ने कैसा झगड़ा है ठान लिया ॥
बोली रानी रूठकर मैं क्या जानूँ हाल।
क्या मन में है आपके, क्यों हैं आप विहाल ॥
अन्तर्यामी हूँ नहीं मनकी जानूँ बात।
उल्टे मुझको डाँटते, अच्छा यह उत्पात ॥

रानी को रूठा जब देखा रुक्मी तब ढीला आप पड़ा।
बोला—रानी, इस घड़ी मुझे राजाजी पर था क्रोध बड़ा ॥
इसलिए सुहाई हँसी नहीं मैंने तुमको कटु वचन कहे।
चिन्ता है मुझको यही बड़ी कैसे अब अपना मान रहे ॥
सब हाल सुनोगी जब मुझसे कर दोगी मुझे अवश्य क्षमा।
राजा का नारद मुनि का तो रानी बेढब है रंग जमा ॥
रुक्मिणी ब्याह के योग्य हुई यह तो तुमसे है छिपा नहीं।
ब्याहना उसे जल्दी से है उपयुक्त घराने बीच कहीं ॥

राजाजी से आज जा यही कही थी बात।
चन्देरी का राजकुल भारत में विख्यात ॥
बड़े-बड़े कर जोड़ते हैं उसको भूपाल।
वर मैंने मन में चुना बलशाली शिशुपाल ॥

यह बात कही राजाजी से मैंने जाकर विनती करके।
पर बोले वह, जल्दी क्या है राजी हो लें पहिले घरके ॥
फिर बोले नारद आये थे ग्वाले के गुण वह गाते थे।
रुक्मिणी योग्य वर बस केवल वसुदेव-पुत्र बतलाते थे ॥
रुक्मिणी उसी पर रीझी है, शिशुपाल न उसको भावेगा।
रानी, यह तो अंधेर नहीं अब मुझसे देखा जावेगा ॥
श्रीकृष्ण हमारा वैरी है, शिशुपाल हमारा हितकारी।
मैं ब्याहूँगा रुक्मिणी उसे कहता हूँ तुमसे सच प्यारी ॥

पिता और भाई सभी कोई करे विरोध।
मानूँगा इसमें नहीं कोई भी अनुरोध॥
निश्चय मन में कर लिया है पत्थर की लीक।
जो मैंने सोचा वही सभी तरह है ठीक॥
रुक्मिणी भला क्या कहती है सचमुच गँवार को चहती है।
पूछने यही मैं आया हूँ, वह राह कौन सी गहती है॥
सुनकर रानी भी दंग हुई अभिमानी स्वामी की बातें।
होगा अनर्थ यह सोच हिये सोचने लगी उत्तम घातें॥
रुक्मिणी-हृदय का हाल उसे रत्ती-रत्ती था विदित सभी।
शिशुपाल भला उसको भावे, ऐसा होना है नहीं कभी॥
है इधर हठी रुक्मी भारी, असमंजस कैसा यह आया।
अंतिम उपाय का आश्रय ले रानी ने पति को समझाया॥
स्वामीजी, कर जोड़कर करती हूँ अनुरोध।
क्रोध नहीं अच्छा कभी और न स्वजन-विरोध॥
विद्या बुद्धि विवेक में अद्वितीय हैं आप।
कैसा होता पूज्य है आप जानते बाप॥
भले बुरे की आपको स्वामी है पहचान।
सम्मति सचमुच आपकी है यह सर्वप्रधान॥
लेकिन वह काम नहीं अच्छा जिससे घर में ही फूट पड़े।
अथवा जिससे दुख पावें वे जो गुरुजन अपने लोग बड़े॥
करिए न क्रोध हरिए विरोध अनुरोध यही इस दासी का।

गृहकलह मूल सबने माना सुखनाशक सत्यनाशी का ॥
शिशुपाल कुँवर अच्छे नर हैं वर है अच्छा वर है अच्छा ।
इसमें संदेह नहीं कुछ भी संबंध अधिकतर है अच्छा ॥
लेकिन इतना ही तो प्यारे, देखना नहीं इस बारे में ।
स्यानी है बहन विचारो तो सम्मति उसकी इस बारे में ॥
चहे रुक्मिणी कृष्ण को यह जानी है बात ।
ध्यान धरे वह कृष्ण का ज्ञात मुझे दिन-रात ॥
भाने का उसको नहीं अभिमानी शिशुपाल ।
भली भाँति जानूँ पिया उसके मनका हाल ॥
इस लिए छोड़ दो हठ अपना श्रीकृष्ण योग्य सुन्दर वर हैं ।
पूजते सभी सादर उनको भारतवासी सब नरवर हैं ॥
तुमसे तो उनसे वैर नहीं, तुमको कुछ हानि न पहुँचाई ।
फिर नाहक उनसे क्यों रूठे, संबंध यही है सुखदाई ॥
पैरों पड़ती हूँ नाथ अहो, मेरा कहना मन से मानो ।
श्रीकृष्ण-वैर में कुशल नहीं यह सत्य कथन जी में जानो ॥
था कंस प्रतापी प्रबल बड़ा कुछ उनका नहीं बिगाड़ सका ।
वह जरासंध बलशाली भी रण बीच न उन्हें पछाड़ सका ॥
कालयवन मारा गया उनसे लड़कर आप ।
छिपा नहीं है आज दिन उनका प्रबल प्रताप ॥
पत्नी के सुनकर बचन लगी देह में आग ।
रुक्मी के मन में तुरत क्रोध उठा फिर जाग ॥

बोला तब रुक्मी यों रिस से तुम सबने यह षड्यंत्र रचा।
जो ब्रज में लंपट रहता था गोपियों साथ जो रास नचा ॥
जिसके कुकर्म जग जाहिर है रुक्मिणी उसे मैं ब्याहूँगा ?
मेरे मित्रों का शत्रु उसे बहनोई करना चाहूँगा ॥
यह बात असंभव है रानी, मैंने मन में प्रन ठान लिया।
शिशुपाल बने बहनोई बस मैंने है उसको बचन दिया ॥
रुक्मिणी न मेरी मानेगी तो मैं हत्या कर डालूँगा।
पर कृष्ण कुटिल को कभी नहीं रुक्मिणी ब्याहने मैं दूँगा ॥

इतना कहकर कोप से काँप रहा वह दुष्ट।
पत्र एक लिखने लगा प्रण करने को पुष्ट ॥
पत्र लिखा शिशुपाल को सारा हाल जताय।
दूत हाथ भेजा उसे तुरत सभा में जाय ॥
उसमें था उसने लिखा––सावधान शिशुपाल।
कुटिल कृष्ण की हो नहीं सफल कहीं यह चाल ॥

नारद को भेजा था उसने मेरे घर में गुण गाने को।
भगिनी को मेरी बहकाने अपने अनुकूल बनाने को ॥
वह चाल चल गई है उसकी, पर मैं न कभी चलने दूँगा ॥
श्रीकृष्ण कुटिल की दाल यहाँ मैं कभी नहीं गलने दूँगा।
रुक्मिणी तुम्हीं को ब्याहूँगा तुम सारी कर लो तैयारी।
फलदान तिलक जल्दी होगा सेना संग्रह कर लो भारी ॥
मैं भी सब तरह तैयारी कर जल्दी मुहूर्त विचराऊँगा।

हो सका अगर तो आगे से मैं तुमको लेने आऊँगा ॥

गया दूत यह पत्र ले, सुनकर सारा हाल ।
दुखी हुए मन में बहुत कुन्डिनपुर-नरपाल ॥
राजकुमारी रुक्मिणी भाई का हठ जान ।
चिन्तित अति मन में हुई देख ब्याह सामान ॥
आगे की सारी कथा रुक्मिणि-पत्र-प्रसंग ।
द्विज का जाना द्वारका त्यों यदुपति का ढंग ॥
सुनिए अगले भाग में श्रोतागण अब आज ।
कहो भक्ति से मिल सभी जय जय श्रीब्रजराज ॥

रुक्मिणी की पत्रिका

१६ वाँ खण्ड

रुक्मी-निग्रह रुक्मिणी-हरन निपुन गोपाल ।
जय जय जय शिशुपाल मद-मर्दन प्रन-प्रतिपाल ॥
अब जैसे शिशुपाल के भय से राजकुमारि ।
पत्र पठायो द्वारका द्विज के हाथ विचारि ॥
सुनिए देकर ध्यान, सुन्दर कथा-प्रसंग सो ।
श्रोता सकल सुजान, सुखदायक श्रीहरिचरित ॥

रुक्मी की चिट्ठी को पाकर शिशुपाल-हृदय में हर्ष हुआ ।
सोचा उसने अब तो मेरा सबसे बढ़कर उत्कर्ष हुआ ॥
इतने दिन से जिस आशा को अबतक मैंने मन में पाला ।
विधना ने उसको अब सचमुच सहसा पूरा ही कर डाला ॥
रुक्मी ने मन में जो ठाना अन्यथा न वह हो सकता है ।
बस वही कसक इतने दिन की मेरे मन की खो सकता है ॥
वह मेरा मित्र हितू सच्चा है, यार नहीं वह मतलब का ।
वह सच्चा है साथ निवाहेगा, है मित्र पुराना वह कबका ।
हाँ उत्तम मध्यम अधम त्रिविध ये मित्र जगत में होते हैं ।

उत्तम वे हैं जो बिना कहे दुख सभी मित्र का खोते हैं ॥
प्रार्थना किये पर काम करें वे मध्यम मित्र कहाते हैं ।
कहने पर भी जो करें नहीं वे अधम बताये जाते हैं ॥
जो सच्चे मित्र जगत में हैं वे मित्रों का हित चेते हैं ।
तन-मन-धन-जीवन मित्रों को अपना अर्पन कर देते हैं ॥
पर ऐसे तो मित्र बहुत कम हैं, स्वारथ की दुनिया सारी है ।
माया की ममता सब को है काया न किसी को प्यारी है ॥
पर रुक्मी मेरा जाना है । परखा है वह पहचाना है ॥
सच्चा मेरा हितकारी है । बन आई बात हमारी है ॥

देखी जब से रुक्मिणी सुन्दर राजकुमारि ।
मृगनयनी वर वपु सुघर सुलक्षणी सुकुमारि ॥
तब से मेरे मन बसी नहीं निकलती नेक ।
उसको पाने की हुई मेरे मन में टेक ।
मेरी इच्छा जानकर रुक्मी ने यह ठान ।
ठाना है अब रुक्मिणी मुझे मिलेगी आन ॥

मृदु मधुर वचन उस प्यारी के कानों से कब सुन पाऊँगा ।
छाती से उसे लगाकर मैं घर में आनन्द मनाऊँगा ॥
पर यह तो मुझको विदित नहीं रुक्मिणी भाव क्या रखती है ।
चाहती मुझे वह भी कि नहीं त्यों कौन दृष्टि से लखती है ॥
अच्छा मैं उसको प्रेमपत्र लिख करके शीघ्र पठाऊँगा ।
अनुचित क्या इसमें, कुछ दिनमें मैं जब कि व्याहने जाऊँगा ॥

इसी तरह वह भी भला मेरी करती चाह ।
यदि ऐसा है तो सफल मेरा यह उत्साह ॥
पता नहीं पर रुक्मिणी का मुझ पर क्या भाव ।
मुझे नहीं मालूम है उसका सहज स्वभाव ॥
लेकिन क्या चिन्ता जो मुझ पर वह अभी नहीं बलिहारी हो ।
वश में पति के हो जाती है चाहे कैसी भी नारी हो ॥
कुछ दिन में प्रेम करेगी ही मुझमें कोई भी कमी नहीं ।
विद्या है बल है बुद्धि बड़ी है धाक किस जगह जमी नहीं ॥
इस तरह मनोरथ मन में कर मन के लड्डू वह खाता था ।
शिशुपाल निहाल हुआ खिचड़ी अपनी यों अलग पकाता था ॥
मनमोदक खाता हुआ अहो शिशुपाल बहुत खुश था मनमें ।
रुक्मिणी मिलन की आशा से फूला न समाता था मन में ॥
अब हाल रुक्मिणी का सुनिए उसपर कैसी थी बीत रही ।
उसका बस कुछ भी नहीं चला आखिर रुक्मी की जीत रही ॥
भीष्मक राजा हारकर बैठ गये चुपचाप ।
बराबरी के पुत्र से कौन भिड़ेगा बाप ॥
अधिक अगर कुछ भी कहें हो लड़का बेहाथ ।
इसी लिए देना पड़ा रुक्मी का ही साथ ॥
बातचीत सब हो गई तिलक चढ़ गया देख ।
हुई रुक्मिणी अति विकल, हाय करम की रेख ॥
कर बंद कोठरी रोती थी दिन-दिन भर भूखी-प्यासी वह ।

नैनों में नींद न आती थी जाती थी, नहीं उदासी वह ॥
श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन की थी बनी चकोरी प्यासी वह ।
शिशुपाल भला कब भाता था बन चुकी कृष्ण की दासी वह ॥
यह दशा देखकर सब सखियाँ चिंता से सूखी जाती थीं ।
इस हठ का कैसा फल होगा यह सोच-सोच घबराती थीं ॥
रानी माता भौजाई भी दिन-रात दुखी ही रहती थीं ।
सब मिलकर धीरज देती थीं समझाकर सखियाँ कहती थीं ॥

सुनो हमारी बात अब रोओ मत दिन-रात ।
देखो कैसा हो रहा कोमल गोरा गात ॥
रोना-धोना व्यर्थ है विधि का लिखा ललाट ।
कोई भी ऐसा नहीं उसे सके जो काट ॥

फिर इसमें दुख क्यों पाती हो यों नाहक क्यों घबराती हो ।
क्या किसी गँवार उठल्लू को उल्लू को ब्याही जाती हो ॥
शिशुपाल कुमार प्रतापी हैं विख्यात वीर धनुधारी हैं ।
सब तरह यशस्वी तेजस्वी सच पूछो तो अवतारी हैं ॥
श्रीकृष्ण न सरवर कर सकते उनकी कुल में अथवा बल में ।
विद्या में वपु में बढ़ता में बातों में या रण-कौशल में ॥
भाई के जो मन में भाई है उसमें ही भरी भलाई है ।
वह वैरी नहीं तुम्हारे हैं कर दी जो वहाँ सगाई है ॥

प्यारी हम सब से हँसो बोलो मानो बात ।
बात न कोई वह करो जिसमें हो उत्पात ॥

रुक्मी के आदेश से सखियाँ यों दें सीख।
किन्तु अन्त को मौन सब हो जाती थीं झीख॥
सुनती थीं सब रुक्मिणी मौन हुई चुपचाप।
जब असह्य होता तभी उठ जाती थीं आप॥
एक रुक्मिणी की सखी थी सच्ची सुकुमारि।
हितू हृदय से हर घड़ी कहती वचन विचारि॥

एक दिवस एकान्त पायके। बैठ गई वह सखी आयके॥
बोली प्यारी राजकुमारी। लखी न जाती व्यथा तुम्हारी॥
रो-धोकर यों क्या कर लोगी। व्यर्थ प्राण अपने क्यों दोगी॥
इससे तो यह अच्छा होगा। जो कुछ पड़ी उसे ही भोगा॥

मेरी बात मानो तो बताऊँ मैं उपाय तुम्हें,
प्यारी इस संकट से सहज उबार का।
कृष्णचन्द्र का है प्रण जाये जो शरण वही,
पावे अधिकार उपकार की पुकार का।
हारा गजराज ज्यों पुकारा पाहि-पाहि त्योंही,
झपट उबारा मारा ग्राह मार मारका।
आकर हरेंगे दुख तुमको वरेंगे लिख,
प्रार्थना पठाओ पत्र जावे दूत द्वारका।

युक्ति-युक्त सुनकर वचन आई जैसे जान।
बोली उससे रुक्मिणी निज शुभचिंतक जान॥

सुनो सखी, मैं हूँ दुखी सूझ पड़े कुछ नाहिं।
जैसे मति मारी गई इतने ही दिन माहिं॥

भाई ही भारी शत्रु हुआ शत्रुता करारी करता है।
मेरी इच्छा का ख्याल न कर तैयारी सारी करता है॥
आते हैं जब दिन बुरे सखी ऐसी ही बातें होती हैं।
दुःखों का ताँता बँध जाता सुख संपति सारी खोती हैं॥
मुझको तो कुछ भी सूझ नहीं पड़ती उबार की युक्ति अहो।
मैं करने को तैयार सभी जो कुछ उपाय तुम लोग कहो॥

पत्र लिखूँगी कृष्ण को, मुझे न कुछ संकोच।
केवल इतना ही सखी मेरे मन में सोच॥
मुझे न जानें कृष्ण प्रभु साधारण हूँ नारि।
अबला शरणागत समझ चाहे लेंय उबारि॥

मैं पत्र लिखूँगी तब भी तो कठिनाई एक बड़ी भारी।
द्वारका उसे ले जावे है साहस इतना किसमें प्यारी॥
रुक्मी को कानोकान खबर हो नहीं तभी सब काम बने।
पर कठिन यही दिख पड़ता है, हैं लगे हुए जासूस घने॥
सुन वचन सखी बोली हँसकर घबराती क्यों हो तुम प्यारी।
सब ठीकठाक कर रक्खा है पहले से कर ली तैयारी॥
गुरुदेव राजकुल के हैं जो मेरे वह पिता सहायक हैं।
द्वारका पत्र पहुँचाने को तैयार वही इस लायक हैं॥

तुम तबतक श्रीकृष्ण को लिखकर रक्खो पत्र।
पितृदेवकी गति सखी समझ रखो सर्वत्र ॥
ले आऊँगी मैं यहाँ उनको प्रातःकाल।
उनसे कह देना सभी अपने मन का हाल ॥
इतना कहकर वह सखी गई पिता के पास।
इधर रुक्मणी भी रहीं उतनी नहीं उदास ॥
जाकर वह अपनी बैठक में एकान्त जहाँ पर था पूरा।
हरि को यों पत्र लगी लिखने जो करुणा-आकर था पूरा ॥
श्रीयुत सर्वोपमायोग्य यदुनाथ द्वारका के वासी।
श्री सर्वगुणगणालंकृत है शरणागत चरणों की दासी ॥
करती सादर सत्कार सहित शत कोटि प्रणाम तुम्हें स्वामी।
क्या परिचय अपना तुमको दूँ जिससे जल्दी भर लो हामी ॥
मैं नारी हूँ मैं अबला हूँ असहाय अनाथ अनाड़ी हूँ।
टूटे पहियों की गाड़ी हूँ, मैं एक कँटीली झाड़ी हूँ ॥
भीष्मक भूपति की सुता और रुक्मिणी नाम।
श्रीचरणों को देखना चाहूँ आठो जाम ॥
मेरा भाई जो बड़ा रुक्मी उसका नाम।
वह बैरी है आपका वही बिगाड़े काम ॥
नारद के मुख से नाथ, सुना जब से शुभ नाम तुम्हारा है।
गुण-गाथा सारी सुनी, सुना प्रण भी अभिराम तुम्हारा है ॥
लौ लगी तभी से मेरी है, मैं और किसी को नहीं वरूँ।

आजन्म कुँवारी भले रहूँ चाहे विष खाकर नाथ मरूँ ॥
देखिए दुराशा यह मेरी त्रिभुवन के ईश्वर आप कहाँ।
सुरपालक खल-दल का घालक भुज बल का प्रबल प्रताप कहाँ॥
साधारण नारी मूढ़ कहाँ अभिलाषा अहो असंभव है।
केवल करुणा का आश्रय है, उससे ही सब कुछ संभव है॥

पड़ा सामना इस समय है विपत्ति से नाथ।
उससे मुझे उबारना केवल प्रभु के हाथ ॥
रुक्मी तो शिशुपाल से करना चाहे ब्याह।
पर मुझको है आपके श्रीचरणों की चाह ॥
ठीकठाक सब हो गया लेकर सजी बरात।
आवेगा शिशुपाल अब करने को उत्पात ॥

मैं तो उसको कभी नहीं जीते-जी अंगीकार करूँ।
जो नाथ न तुमको पाऊँ तो सच कहती हूँ विष खाय मरूँ ॥
सब तरह भरोसा नाथ मुझे करुणासागर करुणा ही का है।
तुम दीनबन्धु मैं दीन बड़ी यह नाता पहले ही का है॥
तुम क्षत्रिय हो जगदीश्वर हो त्यों अद्वितीय बलधारी हो।
फिर क्यों न उबारोगे उसको शरणागत जो कि तुम्हारी हो॥
है धर्म क्षत्रियों का भी यह नारी की रक्षा करते हैं।
सब तरह सभी कुछ जाय भले पर पीछे पाँव न धरते हैं॥

भाग सिंह का ले सके कायर कहीं सियार।
हथनी हाथ न आ सके कूकर के सरकार ॥

जुगनू क्या सरवर करे सूर्य चन्द्र की नाथ।
समता कौन बबूल की कल्पवृक्ष के साथ॥
मुझको तो विश्वास है मेरी करुण पुकार।
आप सुनेंगे तो तुरत लेंगे मुझे उबार॥
और नहीं तो अंत को होगी मृत्यु सहाय।
यह तो मेरे हाथ में है सब तरह उपाय॥
आप कहेंगे किस तरह व्यर्थ बढ़ावें बैर।
मुझको क्या अधिकार है उधर धरूँ जो पैर॥
इसके उत्तर में यही मुझे कहना है आप चलें आवें।
मैं स्वयं निमंत्रण देती हूँ, हूँ स्वयंवरा, मत समझावें॥
मा बाप और भाई मेरे हर तरह हजार विरोध करें।
पर आप न उसका ख्याल करें मेरी विनती पर ध्यान धरें॥
मैं एक उपाय बताती हूँ अपने को हर ले जाने का।
जो उचित आपको समझ पड़े यह काम वीर मर्दाने का॥
मेरा विवाह जिस दिन होगा उसके पहले दिन में घर से।
देवी पूजन को जाऊँगी सारी सेना के भीतर से॥
है अवसर सबसे सहज उसी समय बस आप।
हर ले जाना आ मुझे दिखला प्रबल प्रताप॥
अधिक लिखूँ क्या आपको मैं हूँ नारी मूढ़।
अंतर्यामी आप हैं कुछ न आपको गूढ़॥
अन्न और जल छोड़कर देखूँगी मैं राह।

या प्रभु से या मृत्यु से होगा मेरा ब्याह ॥
यों चिट्ठी लिखकर धरी रुक्मिणि राजकुमारि।
दूजे दिन आई सखी वही हितू सुकुमारि ॥
तीर्थों की यात्रा करने का कर लिया बहाना ब्राह्मण ने।
राजा-रानी से प्रथम मिला फिर गया रुक्मिणी से मिलने ॥
ब्राह्मण को देख हुई हर्षित रुक्मिणी प्रणाम किया आकर।
ब्राह्मण ने भी सानन्द उन्हें ऐसी असीस दी मुसकाकर ॥
जा रहा तीर्थ-यात्रा करने देता असीस हूँ सुखी रहो।
वर मिले सत्य ही वह नरवर जिसको जी से तुम सदा चहो ॥
फिर बोले धीरे से बेटी, भेजा है मेरी बेटी ने।
कुछ काम तुम्हारा बतलाया करने को चटपट चेटी ने ॥
लाओ वह पत्र मुझे दे दो मुझको जल्दी से जाना है।
सब काम शीघ्रता से करके फिर लौट समय पर आना है ॥
है राह बहुत ऊबड़-खाबड़ बस ताबड़-तोड़ चले जाना।
यह बड़ी दूर की मंजिल है पैदल ही पत्री पहुँचाना ॥
रुक्मी से भी था मिला किया बहाना जाय।
जाता हूँ मैं तीर्थ को करिए द्रव्य सहाय ॥
हर्षित हो उसने कहा यह तो अच्छी बात।
ब्राह्मण का यह धर्म है करे यही दिन-रात ॥
जो चाहो सो द्रव्य लो पर मत जाना दूर।
तुम रुक्मिणि के ब्याह तक आना यहाँ जरूर ॥

कुल गुरु हो बिना तुम्हारे तो हो सकता है कुछ काम नहीं।
मैं बोला, आऊँगा जल्दी, हूँगा अवसर पर ठीक यहीं ॥
संदेह न हो जिसमें उसको इसलिए ठान है यह ठाना।
आऊँगा जल्दी काम बना मन में तुम तनिक न घबराना ॥
सुनकर बोली तब राजसुता पत्री देकर द्विज के कर में।
हैं आप पिता के तुल्य मुझे कहना इतना ही उत्तर में ॥
कहिएगा श्रीपति यदुपति से मुझमें गुण अथवा रूप नहीं।
त्रिभुवनसुन्दर के योग्य नहीं, गुनआगर के अनुरूप नहीं ॥
केवल है प्रेम भरा मन में उन श्रीचरणों के दर्शन का।
कृतकृत्य अवश्य करें मुझको, अपमान न होवे निज जन का ॥
प्रण उनका सज्जन की रक्षा, अभिमान मिटाना दुर्जन का।
पूरा करने को वही यहाँ आवें बस हो मेरे मन का ॥
दासी की आशा निष्फल जो होगी तो हँसी उन्हीं की है।
मँझधार में नैया कह देना अब तो यह फँसी उन्हीं की है ॥

विप्रसुता ने भी कहा, पिता करो यह काम।
यश होगा इस लोक में, अमर रहेगा नाम ॥
विप्र बिदा होकर चले पुरी द्वारका ओर।
मग में अनगिनती मिले उनको कष्ट कठोर ॥
पैरों में छाले पड़े चला न जाता नेक।
तब भी आगे बढ़ रहे अपनी लठिया टेक ॥

जंगल में जाकर भटक गये बस्ती का नाम निशान नहीं।

पूछें किस से किस ओर चलें पैरों में भी थी जान नहीं ॥
इतने में संध्या आ पहुँची थे सूर्यदेव भी अस्त हुए।
छा गया अँधेरा चार तरफ यह देख हृदय में त्रस्त हुए ॥
पीपल का पेड़ बड़ा भारी पड़ रहे उसी की जड़ में जा।
सोचने लगे मन में चिंतित अब आगे मेरा होगा क्या ॥
इस तरह भटकते बहुत दिवस हो गये कृष्ण का पता नहीं।
अब मुझको तो यह सूझ पड़े मैं ढेर हुआ बस आज यहीं ॥

राजकुँवरि के व्याह को रहे चार दिन हाय।
काम न कुछ भी कर सका सूझे नहीं उपाय ॥
अब तो वही सहाय हैं विपतिविदारन श्याम।
वही बनावें तो बने बिगड़ा सारा काम ॥
चिन्ताग्रस्त इसी तरह विप्र गये इत सोय।
उधर द्वारका में सुनो जो कुछ लीला होय ॥

अंतर्यामी कृष्णचन्द्र से छिपी हुई क्या बात भला।
पहले ही से जान गये वह विप्र रुक्मिणी-दूत चला ॥
संकट में पड़ राह भूल जब ब्राह्मण पीपल के नीचे।
लेट रहे सो गये छनक में तनक-तनक आँखें मीचे ॥
तब प्रभु ने यों मन में सोचा, यों ही हैं विप्र मुझे प्यारे।
कष्ट न उनका देख सकूँ मैं हरता दुख पल में सारे ॥
फिर यह तो प्यारी का भेजा द्विज, प्रेम सँदेसा लाया है।
स्वार्थ नहीं कुछ इसका उसमें कष्ट तथापि उठाया है ॥

कभी न पाना चाहिए विप्रदेव को कष्ट।
अभी बुलाता हूँ निकट करके कष्ट विनष्ट॥
पल भर में आये गरुड़ खड़े जोड़कर हाथ।
क्या आज्ञा है नाथ की, कहा नवाकर माथ॥
यदुपति ने तब कहा गरुड़, तुम जल्दी उस वन में जाओ।
जहाँ पड़ा है ब्राह्मण भूखा प्यासा उसे यहाँ लाओ॥
बिना तुम्हारे लाये आना उसका कठिन यहां तक है।
बहुत दूर पैदल ही आया भटका राह गया थक है॥
पलक मारते तुम पहुँचोगे और यहाँ ले आओगे।
समझो मेरा काम इसे तुम मनचाहा वर पाओगे॥
बोले गरुड़—प्रभू, यह सेवक आज्ञा अभी बजाता है।
ब्राह्मण को अविलम्ब द्वारका नगरी में पहुँचाता है॥
यह कह पक्षीपति गरुड़ तुरत चले हर्षाय।
बिप्र देव के पास फिर पहुँचे पल में जाय॥
पड़ा बेखबर सो रहा ब्राह्मण था बन बीच।
उठा बिठाया पीठ पर पृथ्वी पर से खींच॥
उड़कर पल भर में गरुड़ नाँघ गये आकाश।
और लिटाया विप्र को पुरी-द्वार के पास॥
ब्राह्मण को कुछ भी खबर हुई न इसकी नेक।
यद्यपि लाये थे गरुड़ उसको कोस अनेक॥
जब आँख खुली उस ब्राह्मण की तब उठ बैठा घबराकर वह।

था संध्याकाल निकट आया सूर्यास्त समय था सुन्दर वह ॥
आँखें मल कर ब्राह्मण बोला, मैं बहुत देर तक हूँ सोया ।
बन ही में मैंने पड़े पड़े अनमोल समय अपना खोया ॥
श्रीकृष्णचन्द्र के पास मुझे आवश्यक आज पहुँच जाना ।
पर पता पुरी का नहीं मिला उनका पथ भी है अनजाना ॥
अच्छा वह एक बटोही तो हाँ इसी ओर को आता है ॥
मैं पता द्वारका का इससे पूछूँगा, मन हरषाता है ॥

सगुन हो रहे हैं सभी फड़के दहिना नैन ।
मन कहता है शीघ्र ही बीतेगी दुख-रैन ॥
देख पड़े कुछ दूर पर बस्ती बड़ी विशाल ।
ऊँचे बड़े सुहावने सुन्दर महल मुहाल ॥
सागर का सा गर्जना सुन पड़ता उस ओर ।
ईश, यही हो द्वारका, करो कृपा की ओर ॥

जब पास पथिक आया उससे ब्राह्मण ने पूछा तब—भाई,
द्वारका दूर अब है कितनी जिसकी महिमा जग ने गाई ॥
सुन कहा बटोही ने तुम किस नगरी से आये परदेसी ।
द्वारका पुरी वह आगे है कुछ दूर यहाँ से परदेसी ।
मणिमंडित महल मनोहर वे दिखलाई पड़ते हैं आगे ।
बस वही द्वारका नगरी है जिस पर सुर गण भी अनुरागे ।
ब्राह्मण ने कहा सुनो भाई, मैं तो विदर्भ से आया हूँ ।
श्रीकृष्णचन्द्र का संदेशा मैं एक जरूरी लाया हूँ ॥

जाता हूँ, जाना मुझे जल्दी है हरि पास।
देता आशिर्वाद हूँ पूरी हो मन - आस ॥
एक हाथ लाठी गही गठरी दूजे हाथ ।
चले द्वारका को तुरत विप्र नवाकर माथ ॥
पहुँच पुरी के द्वार पर वैभव देख अपार ।
चकित चितै चित में रहे देखत बारम्बार ॥
लक्ष्मीपति साक्षात ही जहाँ रहें दिन रात ।
उसकी शोभा श्री भला कैसे बरनी जात ॥
द्वारावती पुरी देखी ब्राह्मण ने सुन्दर छबिवाली ।
सब शूर वीर यादव जोधा जिसकी करते थे रखवाली ॥
सब ओर स्वस्थ नरनारी की बस भीड़ दिखाई देती थी।
मणि माणिक रत्न समूहों की वर आभा मन हर लेती थी॥
कोई रोगी कोई दुखिया कोई कपटी कोई पापी ।
कोई कोढ़ी कोई लूला या अंगहीन परसंतापी ॥
खोजे से वहाँ न मिलता था ठग चोर लुटेरा हत्यारा ।
सब लोग समृद्ध सुखी दिखते छाई थी शांति न्याय द्वारा ॥
पुरी देख आश्चर्य से चकित रह गया विप्र।
किन्तु काम के ख्याल से बढ़ा वहाँ से क्षिप्र॥
पूछपाछ कर कृष्ण के सभाभवन के द्वार ।
पहुँच गये फिर विप्रवर पाय गये सुख-सार॥
द्वारपाल से विप्र ने कहा—कहाँ महराज।

यादवपति श्रीकृष्ण हैं उनसे है कुछ काज ॥
मैं आया हूँ दूर से दर्शन करने हेत ।
बहुत शीघ्र बतलाइये मुझको कृपा समेत ॥
सुन वचन विप्र के द्वारपाल प्रभु पास तुरत दौड़ा आया ।
सब हाल नम्रता से झुककर आनन्दकंद को बतलाया ॥
प्रभु की तब आज्ञा तुरत हुई ब्राह्मण को शीघ्र यहाँ लाओ ।
क्यों रोका, द्विज की रोक नहीं, मेरी आज्ञा है बस जाओ ॥
आज्ञा पाकर चट द्वारपाल ब्राह्मण को भीतर ले आया ।
लख कृष्णचन्द्र को ब्राह्मण ने अपनी आँखों का फल पाया ॥
श्री हरि ने श्रद्धा सहित किया परदेसी ब्राह्मण का स्वागत ।
फिर विनयसहित पग भी धोये ब्राह्मण था उनका अभ्यागत ॥
चन्दन का टीका भाल किया पुष्पों की माला पहनाई ।
भोजन पकवान मिठाई फल आगे रक्खे, की पहुनाई ॥
सेवा सत्कार सकल करके कोमल शय्या फिर बिछवाई ।
ब्राह्मण को शयन करा करके स्तुति अपने श्री मुख से गाई ॥
श्रीलक्ष्मी जिनके चरण चारु दबाती आप ।
वह श्रीपति प्रभु विप्र के पाँव दबावें चाप ॥
बोले हरि फिर विप्र से आप करें आराम ।
स्वस्थ सुखी होंगे तभी जब कर लें विश्राम ॥
फिर उठने पर आपके पूछूँगा सब हाल ।
जो कुछ चाहो आप वह होगा सब तत्काल ॥

यों कह ब्राह्मण देव से कृष्णचन्द्र यदुनाथ।
गये आप विश्राम के लिए हर्ष के साथ॥
उजली दुग्ध समान मृदु शय्या पर विश्राम।
लेट लगे करने प्रभू जाकर अपने धाम॥

शिशुपाल की बरात

१७ वाँ भाग

सिन्धुसुता सर्वस्व सत् - चित्स्वरूप आनन्द।
जयति नन्दनन्दन नवल नटनागर व्रजचन्द ॥
पहुँच द्वारका में गये विप्र रुक्मिणी-दूत।
आगे की सुनिए कथा प्रकट प्रभाव प्रभूत ॥

ब्राह्मण कर विश्राम उठे तब मुँह धोया जलपान किया।
सीसमहल में बुलवाकर तब प्रभु ने उनको दरस दिया ॥
कृष्णचन्द्र ने उनसे पूछा कारण उनके आने का।
ब्राह्मण ने तब नम्र भाव से कहा हाल हर्षाने का ॥
पत्री देकर हाथ कृष्ण के बोले विप्र वचन ऐसे।
देखा मैंने प्रभु को वैसे सुन रक्खा था पहले जैसे ॥
दीनबंधु हैं आप कृपानिधि इष्टदेव द्विज को जानें।
स्वयं बुद्धि-विद्या-वैभव-बल-आकर पर द्विज को मानें ॥

धन्य धन्य हैं आप प्रभु धन्य हुआ मैं आज।
दर्शन पाकर आपके पूजे सारे काज ॥

यह पत्री पढ़ लीजिए अन्तर्यामी नाथ।
भक्त आपकी रुक्मिणी गहिए उसका हाथ॥
भूप विदर्भ देश के स्वामी भीष्मक जिनको कहते हैं।
बड़े-बड़े राजा भी उनके आश्रित होकर रहते हैं॥
उनकी पुत्री सुघर रुक्मिणी जैसे लक्ष्मी का अवतार।
रूप और गुण उसमें भारी अति सुशील है परम उदार॥
उसका भाई दुष्ट बड़ा है रुक्मी नाम द्वारकानाथ।
रखे शत्रुता प्रभू आपसे मन में द्रोह बुद्धि के साथ॥
नारद से सुनकर गुण प्रभु के हुई रुक्मिणी अति अनुरक्त।
मन में चाहे नाथ आपको स्वामी है अनन्य वह भक्त।
किन्तु हठी रुक्मी बना बाधा उसमें नाथ।
हरिणी सी है रुक्मिणी पड़ी व्याध के हाथ॥
चंदेरी का राजसुत अभिमानी शिशुपाल।
आवेगा अब ब्याहने उसको बनकर काल॥
राजसुता ने इसीलिए प्रभु मुझे द्वारका भेजा है।
समझ हितू मुझको अपना यह भारी काम सहेजा है॥
आप विदर्भ नगर को जल्दी, जल्दी से जल्दी जावें।
अपनी आश्रित उस अबला की रक्षा करें सुयश पावें॥
हर लावें बरजोरी उसको वीरों का सा काम करें।
वहाँ सामना कौन करेगा, प्रभु को सब वे दुष्ट डरें॥
कहा रुक्मिणी ने है यह भी, आप नहीं जो आवेंगे।

तो फिर मरा सुनेंगे मुझको पीछे बस पछतावेंगे ॥
जो कुछ कहना था मुझे मैंने दिया सुनाय।
उचित आप जो जानिए सो करिए यदुराय ॥
सुनकर ब्राह्मण के वचन पढ़ प्यारी का पत्र।
बोले व्यापे विश्व में यत्र तत्र सर्वत्र ॥
कहा कृष्ण ने कुछ समय मन में सोच विचार।
विप्रदेव, चिंता अभी तजिए सभी प्रकार ॥
भक्त मुझे प्राणों से प्यारे। मेरे रहते सदा सहारे ॥
तन मन से जो मुझको चाहे। भक्ति भाव से सदा निवाहे ॥
उसको मैं भी नहीं बिसारूँ। उसका हित ही मन में धारूँ ॥
मुझे चाहती राजकुमारी। मुझको भी प्राणों से प्यारी ॥
अबला, शरणागत तथा मुझसे करती प्रेम।
ऐसों की रक्षा सदा करना मेरा नेम ॥
आप चलें पहले वहाँ राजकुमारी पास।
धीरज उनको दीजिए मन में न हों उदास ॥
मैं आता हूँ शीघ्र ही सचमुच बिना विलम्ब।
राजकुमारी ने लिया है सच्चा अवलम्ब ॥
मुझ पर वह विश्वास रखें शिशुपाल न उनको पावेगा।
नीचा देखेगा वह चाहे जितनी सेना ले आवेगा ॥
मैं एक अनेकों पर भारी रण भूमि बीच हो जाऊँगा।
बल मेरा दुनिया देखेगी प्यारी को मैं हर लाऊँगा ॥

यों प्रभु ने कहकर ब्राह्मण को धन रत्न सुवर्ण अपार दिया।
फिर करते समय बिदा उनको सस्नेह हृदय से लगा लिया॥
रथ जिसमें घोड़े जुते हुए मणि रत्न अलंकृत द्रुतगामी।
उस पर बिठलाया ब्राह्मण को कुछ दूर आप हो अनुगामी॥

ब्राह्मण को कर यों बिदा लौट गये यदुनाथ।
हो प्रसन्न ब्राह्मण चले नवा कृष्ण को माथ॥
कृष्णचन्द्र ने लौटकर अपने घर में जाय।
चलने की तैयारियाँ करीं महेश मनाय॥
चुपके-चुपके सब करी तैयारी यदुनाथ।
ले जाना थे चाहते नहीं किसी को साथ॥
बलदाऊ से भी नहीं कहा कृष्ण ने हाल।
केवल दारुक सारथी बुलवाया तत्काल॥

दारुक के आने पर प्रभु ने उसको आज्ञा दी चलने की।
घोड़ों को दाना-पानी दे सहलाने की त्यों मलने की॥
बोले प्रभु जल्दी रथ साजो मेरे सब शस्त्र-अस्त्र रख लो।
घोड़ों का चारा-दाना भी विस्तर लो और वस्त्र रख लो॥
तैयार रहो लंबी मंजिल कुछ पहरों ही में जाना है।
कल दिन रहते-रहते विदर्भ नगरी हमको पहुँचाना है॥
दो घड़ी रात जब रह जावे तब ड्योढ़ी पर तुम आ जाना।
रथ सजा सजाया चलने को उस समय यहाँ पर ले आना॥
तैयार रहूँगा मैं भी बस चुपके से चटपट चल देंगे।

हम ठीक समय पर पहुँचेंगे तो काम तमाम बना लेंगे ।।

जो आज्ञा कह सिर झुका गया सारथी गेह ।
स्वामी की पाकर कृपा पुलकित जिसकी देह ।।
इस प्रसंग को तो यहीं छोड़ दीजिए आप ।
हाल सुनो शिशुपाल का जिसका बड़ा प्रताप ।।

शिशुपाल प्रसन्न बड़ा होकर फूला न समाता था मन में ।
रुक्मिणी-लाभ का लोभ ललक लालायित लंपट था मन में ।।
न्योता भेजा सब मित्रों को उत्सव अपार पुर में छाया ।
घर-घर आनन्द-बधावे थे बजते ऐसा प्रसंग आया ।।
शिशुपाल-भवन की धूम-धाम कह सकता है कवि कौन भला ।
हर घड़ी बड़ी थी भीड़ खड़ी भूखे नंगों की फाड़ गला ।।
वे लोग माँगते अन्न-वस्त्र मिलता था उनको मुँह-माँगा ।
मिलता था कई गुना ज्यादा जिसने जिस दम जो कुछ माँगा ।।
खुल गया खजाना देने को दीनों को दोनों हाथों से ।
धन रत्न लुटाते थे नौकर मँगतों को दोनों हाथों से ।।
जाता था कोई विमुख नहीं जो आता था खुश जाता था ।
दुर्लभ भी थी जो वस्तु वही याचक भूपति से पाता था ।।

चन्देरी में इस तरह धूम मची दिन-रात ।
ठीक समय पर धूम से सजने लगी बरात ।।

वर वेष बनाकर जामा जब शिशुपाल पहनने लगा तभी ।
सामने ठहाका छींक हुई, यह लखकर शंकित हुए सभी ।।

जब मौर पहनकर वेदी पर जाने को यात्रा समय चला।
बिल्ली ने काटी राह लपक जब देव पूजने वर निकला॥
घुड़चढ़ी समय भी वह असगुन पल-पल पर होने लगे यहाँ।
यह देख सभी ने आपस में कानाफूसी की और कहा—
ये कैसे असगुन होते हैं क्या होनेवाला है भाई।
पूरा पड़ता तो देख नहीं पड़ता लक्षण हैं दुखदाई॥
यह छींक हुई वह बिल्ली ने काटी है राह अचानक ही।
यह ब्याह नहीं होता दिखता होवेगा विघ्न महान सही॥

असगुन लख शिशुपाल भी घबराया हो दीन।
चिंता यों करने लगा मुख भी हुआ मलीन॥
लक्षण कुछ अच्छे नहीं दिखते हैं इस काल।
मेरा मन क्यों हो रहा उदासीन बेहाल॥
बाईं आँख फड़क रही फड़के बायाँ अंग।
वाम भुजा का यह स्फुरण करे रंग मे भंग॥
विघ्न और कुछ तो नहीं वही शत्रु है कृष्ण।
प्रिया रुक्मिणी के लिए वह भी हुआ सतृष्ण॥

यह बड़ा कुचक्री है छलिया उससे पाना है पार कठिन।
यद्यपि प्रबंध सब कर रक्खा रुक्मी ने उसका है इस दिन॥
फिर भी उस खल को किसी तरह यह खबर मिल गई जो होगी।
अपने भरसक तो नटखट झट बाधा डालेगा वह ढोंगी॥
मन में यह चिंता कर उसने सेना का और प्रबंध किया।

मित्रों की सेना त्यों अपनी सारी सेना को साथ लिया ॥
सब वीरों सेनापतियों को त्यों जरासन्ध को बुलवाया ।
सब भाँति सचेत सतर्क रहो इस भांति सभी को समझाया ॥
यह भी उनसे कह दिया प्रकट उसको यदुपति ही से डर है ।
तब उससे बोला जरासंध सचमुच वह झगड़े का घर है ॥
श्रीकृष्ण चालिया है छलिया जालिया एक नम्बर का है ।
पर वीर नहीं है वह लेकिन भेदिया तुम्हारे घर का है ॥
मेरे ही आगे से रण में बहु बार दुष्ट वह भागा है ।
क्षत्रिय वीरों का सुजनों का प्रिय मारग उसने त्यागा है ॥
उसके बल से नहीं मुझे भय उसके छल से कौशल से ।
है अवश्य ही आशंका पर डरो नहीं यों निर्बल से ॥
सेना साथ यथेष्ट चलेगी पीछे पैर न डालेगी ।
आवेगा जो कृष्ण सामने तो उससे बदला लेगी ॥
निर्भय होकर लेकर बरात तुम संग चलो मेरे भाई ।
जरासंध ने ऐसे कहकर फिर बरात यों सजवाई ॥

आगे हाथी पर चला झंडा बड़ा निशान ।
उसके पीछे सब चले वीर प्रसिद्ध प्रधान ॥
हाथी का तन सूँड़ भी रँगी हुई थी लाल ।
मस्तक पर टीका लगा श्वेतवर्ण सुविशाल ॥
चार दाँत गजराज के मढ़े कनक से श्वेत ।
ऐरावत सा सोहता सुन्दर सुछवि निकेत ॥

भूल पड़ी थी पीठ पर रेशम की बहुमोल।
मोती झालर में टके आबदार थे गोल॥
झंडा रेशम का हरा फहरा रहा अनूप।
वीर ढाल तलवार ले बैठे वीर स्वरूप॥
उस गज के पीछे और सैकड़ों हाथी वैसे सजे हुए।
आगे बढ़ते थे मस्त चाल से मद मस्तक से तजे हुए॥
घन्टे घननन घहराते थे कंठों में उनके पड़े हुए।
पर्वत से शोभा पाते थे ऊँचे वे हाथी अड़े हुए॥
उनकी पीठों पर बैठे थे हौदों में बाँके सैनिकगण।
जिनमें साहस था बल भी था थे सभी सुभटगण के लक्षण॥
इस तरह हजारों हाथी थे आगे-आगे सबके चलते।
उनके पीछे कुछ नौकर थे कर लिये पलीते जो जलते॥
उनके पीछे ही ऊँट थे बहुत सुसज्जित अंग।
तेज हवा से भी चलें मन में भरे उमंग॥
ऊँटों पर झंडे लिये बैठे थे कुछ लोग।
कुछ सशस्त्र सैनिक सजे थे जवान नीरोग॥
बाजेवाले अनगिनत हो-हो करके मस्त।
बजा रहे थे मनहरन बाजे लिये समस्त॥
उनके पीछे ताजी तुर्की अरबी देसी सब घोड़े थे।
कोतल कुछ, कुछ पर थे सवार जिनके हाथों में कोड़े थे॥
अबलख मुश्की सब्जे सुरंग गर्रे कुम्मैत समन भूरे।

सब रंगों के घोड़े शोभित नाचते चले छवि के पूरे ॥
सब अंगों में गहने पहने पीठों पर जीन लगाम कसे।
सोहते अश्व घुड़सारों के खूँदते भूमि को ललित लसे ॥
घोड़ों पर वीर कवच पहने फौलादी टोप लगाये थे।
बढ़िया पोशाक शरीरों में हाथों में भाले भाये थे ॥
तलवार लटकती कटितट में थी ढाल पीठ पर लगी हुई।
लोहे के जाल पड़े तन पर सिर पर पगड़ी भी रँगी हुई ॥

घोड़ों के पीछे चले पथ पर रथ बहु भाँति।
बहुत दूर तक लख पड़ी अमित रथों की पाँति ॥
फहराती जिन पर ध्वजा विविध चिह्न संयुक्त।
वायु वेगवाले जुते घोड़े समर-नियुक्त ॥
अस्त्र-शस्त्र उनमें धरे कांचन-मंडित चक्र।
रथी सारथी युत लसें देवराज ज्यों शक्र ॥

कानों में कुंडल डोल रहे सिर पर किरीट अनमोल लसे।
मणि मोती रत्नों के गहने पहने कवचों के बन्द कसे ॥
पटपीत लपेटे कटि तट में धनु-बाण गहे दोनों कर में।
नरपति ऐसे सैकड़ों चले कुंडिनपुर को उस अवसर में ॥
राजा थे, उनके सेवक थे, थे सब उनके संगी-साथी।
सैनिक थे, रथ थे, पैदल थे, घोड़े-सवार थे, थे हाथी ॥
हम कहें कहाँतक वह सज्जा, लज्जा वाणी को आती है।
वर्णन बरात का करने में लेखनी अहो सकुचाती है ॥

सभी वहाँ सामान थे कुछ भी न था अभाव।
फिर भी हरि से वैर का था प्रत्यक्ष प्रभाव॥
आतिशबाजी छुट रही रंग-रंग की खूब।
उत्सव के आनन्द में लोग गये थे डूब॥
कला दिखाते नट कहीं कहीं हो रहा नृत्य।
कहीं मदारी कर रहे जादू के सब कृत्य॥
अपनी धुन में थे सभी बालक वृद्ध नवीन।
कहीं दिखाई दे नहीं कोई हीन मलीन॥
स्वस्त्ययन और गणपति-पूजन विप्रों ने सबसे प्रथम किया।
कुलदेवी का पूजन करके वर ने विप्रों को दान दिया॥
मंगल मुहूर्त में यात्रा कर शिशुपाल चला बाहर घर से।
आशीर्वादी फल फूल गिरा सहसा शिशुपाला के कर से॥
चढ़ने को घोड़े पर उसने रक्खा रकाब पर पैर जभी।
घोड़े का पैर तभी फिसला घबराये लखकर लोग सभी॥
शिशुपाल डरा यद्यपि मनमें पर बाहर हँसकर टाल दिया।
मित्रों के साथ बरात सहित कुन्डिनपुर को प्रस्थान किया॥
रुक्मी ने बारात का करने को सत्कार।
पूरा किया प्रबन्ध था मन में सोच-विचार॥
जो पड़ाव थे राह में ठहरी जहाँ बरात।
सामग्री सब कुछ वहाँ मिलती थी दिन-रात॥
ऊँचा नीचा पाट कर सीधी सड़क निकाल।

कुन्डिनपुर तक राह सब ठीक हुई तत्काल ॥
रुक्मी के भृत्यों ने मग में खीमे डेरे डलवाये थे ।
लम्बे-चौड़े सब भरे-पुरे नूतन ही नगर बसाये थे ॥
छायावाले फूलोंवाले फलवाले वृक्ष लगाये थे ।
यात्रा के कष्ट भुलाने को बागीचे बड़े बनाये थे ॥
नदियों के पार उतरने को उनपर पुल चुनवाये थे ।
रक्षा करने को सैनिक भी सब चुने-चुने भिजवाये थे ॥
श्रीकृष्णचन्द्र के आने की, आकर उत्पात मचाने की ।
रुक्मिणी कुँवरि को बरजोरी लड़भिड़ करके ले जाने की ॥
आशंका पूरी थी मन में, इससे प्रबन्ध भी था भारी ।
पर हुआ वही जो होना था, होनी से दुनिया है हारी ॥
अब हाल सुनो शिशुपाला का मग में जो कुछ इस पर बीती ।
जिस तरह कुमतिवश उस खल ने हारी अपनी बाजी जीती ॥

दो पड़ाव तक तो रहा क्षेम-कुशल आनन्द ।
पहुँच तीसरे पर छका बहुत चँदेरी-नन्द ॥
कुन्डिनपुर के पास ही था तीसरा पड़ाव ।
वहाँ पहुँच मँझधार में डूब गई बस नाव ॥
सूर्य अस्त होते हुए अन्धकार अधिकार ।
देख हुआ शिशुपाल के मन में सोच-विचार ॥
आँधी भी आई उधर मानो प्रलय बयार ।
कंकड़ियाँ उड़-उड़ पड़ें ज्यों बरछी की मार ॥

जल्दी से बरात बढ़वाई । ठीहे पर जाकर ठहराई ॥
जल्दी में कुछ आगे भागे । कुछ पीछे रह गये अभागे ॥
काली आँधी ने आ घेरा । यम से हुआ आज मुठभेरा ॥
नहीं सूझता हाथ पसारा । सुन पड़ता कुछ नहीं पुकारा ॥
घबराये चहुँ ओर बराती । उनकी दुर्गति कही न जाती ॥
अपनी अपनी पड़ी सभी को । दिखे मौत सी खड़ी सभी को ॥

डेरों के भीतर घुसे ज्यों बिल बीच सियार ।
आपस में सब कह रहे ऐसे बारम्बार ॥
राम राम ! आये कहाँ ? क्यों आये हम यार ।
आये उसका फल मिला, होगा कब उद्धार ॥
खोटे इसके भाग्य हैं, असगुन होय अनर्थ ।
जानबूझकर सील में आन फँसे हम व्यर्थ ।
जब कि अभी यह हाल है तब होने पर ब्याह ।
क्या होगा ? क्या हम सभी होंगे वहीं तबाह ॥
इसपर तो भगवान का कोप दिखाई देय ।
चलो चलें अपने भवन मित्र, यही है श्रेय ॥

बोले तब कुछ और बराती । जरासंध के जो कि सँघाती ॥
क्यों यों कायर बनो बिचारो। क्षत्रिय हो यों हिम्मत हारो ?
आँधी या तूफान तुम्हारा । प्राण नहीं कर सकते न्यारा ॥
और प्राण ही जो यों जावें । तो क्या हम क्षत्रिय भय पावें ॥
यह तो है सब दैवी लीला । क्षत्रिय इससे होय न ढीला ॥

आपस में सब इस तरह कहते थे नरपाल।
सुनिए सब मन लायके अब आगे का हाल ॥
देखी बरात की दशा बुरी शिशुपाल हो गया बड़ा निराश।
इस दैवकोप से हो उदास रुक्मिणी मिलन की छोड़ी आस ॥
आँखों में उसके आँसू थे कुछ शोक और कुछ क्रोध चढ़ा।
दाँतों से होठ चबाता था कोसता दैव को उधर बढ़ा ॥
मुख था विवर्ण चेहरा सूखा छाती थी भय से धड़क रही।
रह रहकर असगुन बतलाती बाईं भ्रुकुटी थी फड़क रही ॥
लस्टमपस्टम कुण्डिनपुर तक पहुँची बरात भूखी-प्यासी।
वर और बराती लखने को तब दौड़ पड़े सब पुरवासी ॥
इधर सुनी शिशुपाल की दशा आपने मित्र।
उधर कृष्ण बलराम का आना हुआ विचित्र ॥
उसका भी वर्णन यहाँ सुनिये धरके ध्यान।
चिन्तित बैठी रुक्मिणी होकर विकल महान ॥
एक सखी ने जा कहा आय गये शिशुपाल।
समाचार सुन रुक्मिणी दूनी हुई बिहाल ॥
एकान्त कोठरी में जाकर रो-रोकर कृष्ण पुकार रही।
क्या भूल गये प्रभु दासी को, आने में यह क्यों आर रही ॥
शिशुपाल अधम तो आ पहुँचा पर आप नहीं आये प्यारे।
अबला को कौन बचावेगा ? मैं तो मरती हूँ बिन मारे ॥
आओ प्यारे जल्दी आओ, दासी की प्रणत पुकार सुनो।

उद्धार करो उपकार करो पृथ्वी का हलका भार करो ॥
राजकुमारी रुक्मिणि को यह वाणी हरि ने सुन लीनी ।
सब जग के अंतर्यामी ने अपने रथ की गति द्रुत कीनी ॥

कृष्णचन्द्र ने रास ले रथ दौड़ाया आप ।
राह बहुत क्षण में गये घोड़े, प्रकट प्रताप ॥
सूर्य अस्त होते समय कुन्डिनपुर में जाय ।
रथ पहुँचा श्रीकृष्ण का, गई खबर यह छाय ॥

राधावर श्रीकृष्णचन्द्र नगरी में आज पधारे हैं ।
यह सुनकर सारे पुरवासी देखने चले हिय हारे हैं ॥
जिसने जाकर हरि को देखा वह मोह गया मोहन ऊपर ।
कहने यों लगे परस्पर सब रुक्मिणी योग्य यह हैं नरवर ॥
शिशुपाल रूप में या गुण में कर सकता क्या इनकी सरवर ।
भीष्मक नृप को क्या सूझी है जो ऐसा किया सुता का वर ॥
भीष्मक ने हरि के आने की जब खबर सुनी तो घबराये ।
रुक्मैया से उनको भय था, वह कहीं न जाकर लड़ जाये ॥
पर शिष्टाचार न हीं छोड़ा जाकर हरि की अगवानी की ।
दे पान इलाची इत्र और शरबत पानी मेहमानी की ॥
सत्कार किया ठहराया भी राजसी भवन में आदर से ।
हरिने भी किया बहाना यह अपने आने का नरवर से ॥
हम एक काम से आये थे इस ओर यहाँ पर ठहर गये ।
सुनते हैं, ब्याह सुता का है इसलिए आज मेहमान भये ।

चल देंगे कल अपने घर को, क्यों आप अधिक अब कष्ट करें।
इतनी ही कृपा बहुत होगी, इक रात यहाँ पर हम ठहरें॥

इधर कृष्ण ठहरे उधर जाना जब सब हाल।
तब चिन्तित मन में हुए बलदाऊ प्रणपाल॥
कृष्ण अकेले ही गये दुष्ट शत्रुओं बीच।
कहीं अनर्थ न कर उठें क्यों कि सभी वे नीच॥
यादव सेना साथ ले सोच समझ बलवन्त।
पहुँचे भीष्मक की पुरी साहस-सिन्धु अनन्त॥
वीर यादवों की बड़ी सेना आई जान।
कृष्ण सहित बलराम का हुआ सभी को ध्यान॥
जरासिन्धु शिशुपाल त्यों दन्तवक्र अति दुष्ट।
रुक्मी दल के भूप सब हुए बहुत ही रुष्ट॥

रुक्मी को बुलवाया तब तो चिन्तित हो शिशुपाल ने।
कहा—सुना है भैया, हमने आकर कृष्ण गोपाल ने॥
जमा दिया आतंक यहाँ भी अपना सबके चित्त में।
लोग समझने बड़ा लगे हैं उसको बल में वित्त में॥
वह उत्पात मचावेगा कुछ मुझको यह संदेह है।
हम लोगों का वह मायावी सचमुच अहित सदेह है॥
इसका करो उपाय अभी से पूरी रक्खो चौकसी।
कहीं रंग में भंग न हो यह चिन्ता मन में है बसी॥

रुक्मी तभी तमक उठा तुरत तरेरे नैन।
भरी सभा में तेह से बोला ऐसे बैन॥

खूब कही तुमने यह भैया, वाह वाह क्या कहने हैं।
डरना क्या है उस ग्वाले से, हम क्या चूड़ी पहने हैं॥
हम क्षत्रिय तो सदा युद्ध की क्रीड़ा करते रहते हैं।
मरने से हम कभी न डरते कायर वचन न कहते हैं॥
धनुष-बाण बर्छी औ भाला यही हमारे गहने हैं।
छाती खोल प्रहार शत्रु के युद्धभूमि में सहते हैं॥
हौआ नहीं कृष्ण, हम भी कुछ नहीं दुधमुहे बच्चे हैं।
सच्चे क्षत्रिय साथ हमारे न हम हृदय के कच्चे हैं॥
टुच्चे यादव लुच्चेपन पर कमर बाँध जो आये हैं।
तो मैंने भी बड़े युद्ध के आयोजन करवाये हैं॥
सावधान निश्चिंत रहो तुम, तुमसे मैं प्रण करता हूँ।
रत्ती भर भी कृष्ण-पक्ष से नहीं मित्र, मैं डरता हूँ॥

सकुशल होगा ब्याह उसी कृष्ण के सामने।
होगी उसकी राह घर की या यमलोक की॥

रुक्मी के सुन वचन निडर बन। तब शिशुपाल हुआ हर्षित मन॥
इधर रुक्मिणी ने सुन पाया। आये श्याम हृदय हर्षाया॥
निश्चय हुआ न अब कुछ भय है। ईश्वर सचमुच हुआ सदय है॥
प्राणनाथ से मिलना होगा। हृदय कली को खिलना होगा॥

आया फिर दिन दूसरा बीती दुख की रात।
चहक उठीं चिड़ियाँ सुखी सुखदायक था प्रात॥
चलीं अम्बिका पूजने कर मंगल सिंगार।
राजकुमारी रुक्मिणी मन में मिलन विचार॥

सोलह सौभाग्यवती नारी सोलह सिंगार किये तन में।
पूजन सामग्री लिये चलीं सब अंग खिल रहे यौवन में॥
चहुँ ओर रुक्मिणी के सखियाँ देवी के मंदिर जाती थीं।
ज्यों तारे शशि के आसपास ऐसी शोभा वे पाती थीं॥
रुक्मी ने सैनिक चुने हुए कर दिये साथ रखवालो को।
ताने तलवारें वे पीछे चलते थे देखाभाली को॥
पथ में प्रबंध था बड़ा कड़ा पग-पग पर पहरा लगा हुआ।
हृदयों में सबके छाया था उत्साह, वीर रस जगा हुआ॥

रथ घोड़े हाथी खड़े घेर राह चहुँ ओर।
उन पर बैठे वीर थे महारथी बरजोर॥

सब थे सशस्त्र सब सजग खड़े सैनिक वर बाँके तने हुए।
शिशुपाल पक्ष के दत्त सुभट दर्शन के लायक बने हुए॥
सब ओर मच गई हलचल सी रुक्मिणी राह में जब आई।
सब ओर सँभलकर खड़े चौंकते देख-देखकर परछाई॥

मंद-मंद पग रख रही सुन्दर राजकुमारि।
पहुँचीं मंदिर-द्वार पर गजगमनी सुकुमारि॥
सीढ़ी पर चढ़ते समय एक बार मुँह खोल।
देखा चारों ओर को दिखा रूप अनमोल॥
फिर भीतर पहुँचीं तुरत देवी-पूजन हेत।
इधर सभी सैनिक हुए लखकर रूप अचेत॥

त्रिभुवन-लक्ष्मी जगदंबा का वह रूप अलौकिक बलिहारी।

वर्णन कवि क्या कर सकता है ? शारदा थकी, वाणी हारी ॥
वैसी पवित्रता किसमें है वह शांति रूप शोभा किसमें ।
वह छटा छबीली किसमें है जगदीश्वर मन लोभा जिसमें ॥
तिल भर तिलोत्तमा तुल्य नहीं, रत्ती भर भी रति तुले नहीं ।
इन्द्राणी जैसी दासी हैं उपमा कैसे हो भला कहीं ॥
अच्छा इस वर्णन को छोड़ो हमको तो माता माता है ।
सुत तो माता की करुणा में सब उत्तमता लख पाता है ॥

मंदिर बीच पधार रुक्मिणी ने सिर नाया,
जगदम्बा को इष्ट-सिद्धि के लिए मनाया ;
चन्दन अक्षत और फूल नैवेद्य लगाया,
धूप-दीप कर्पूर आरती थाल सजाया ;
पान सुपारी और नारियल भेंट चढ़ाया,
परिक्रमा दंडवत आदि कर वर मन भाया ;
मिलने का श्रीकृष्णचन्द्र सा बड़े चाव से,
माँगा दोनों हाथ जोड़कर भक्ति-भाव से ;

उतरीं मंदिर-द्वार से तब भी चारों ओर ।
देख पड़े उनको नहीं कहीं कृष्ण चितचोर ॥
मन्द-मन्द गति से चलीं चित-चिन्तित भरपूर ।
भूल गये भगवान क्या ? कहाँ रह गये दूर ?
मेरे हरने का यही है उत्तम अवकाश ।
क्यों न प्राणपति काटते यह संकट का पाश ॥

यो चिंता से रुक्मिणी कुछ हो चली उदास।
तन्मय होने से रहा उन्हें न देहाध्यास॥
तन मग में मन कृष्ण में छन-छन कल्प समान।
इतने ही में दूर पर देख पड़े भगवान॥
मानो स्वागत को प्यारे के तब रोम-रोम उठ खड़ा हुआ।
रुक्मिणी प्रसन्न हुई ऐसे जैसे कुछ पाया पड़ा हुआ॥
खिल उठा कमल सा मुख उनका गालों पर लाली दौड़ गई।
वह सुस्ती सारी दूर हुई चटपटी वहाली दौड़ गई॥
देखा रथ राजकुमारी ने पल भर में आगे खड़ा हुआ।
बहुमूल्य रत्नमणि मंडित था गरुड़ध्वज जिसमें जड़ा हुआ॥
घोड़े जोड़े थे चार चपल पल भर भी रहते रुके नहीं।
जल थल में ऐसी कौन जगह वे अश्व जहाँ जा चुके नहीं॥
खूँदते मही हिन-हिना रहे झिटके दे दे कर उछल रहे।
सारथी रोकता रास मगर आगे बढ़ने को मचल रहे॥
इतने में श्रीकृष्णजी राजकुमारी पास।
पहुँच गये झटपट-झपट कर रक्षक-उपहास॥
आते लखकर कृष्ण को रक्षक हुए सचेत।
किन्तु न कुछ भी बन पड़ा उनसे रक्षा हेत॥
हाथ पाँव मे फूल गये वीरों के उठते शस्त्र नहीं।
कुछ चकित कृष्ण की फुरती से गह सके हाथ में अस्त्र नहीं॥
सब चित्रलिखित से खड़े हुए यह दृश्य देखते रहे वहीं।

सन्नाटा वह पहले का सा सब ओर छा रहा सभी कहीं ॥
यह अवसर पाकर यदुपति ने रुक्मिणी समीप प्रयाण किया ।
कर पकड़ उठा रथ पर बैठा घोड़ों को जल्दी हाँक दिया ॥
हक्का-बक्का भौंचक्का हो रक्षक दल सब देखता रहा ।
रुक्मिणी-हरण हो जाने पर कोलाहल होने लगा महा ॥
कुछ बोले, देखो दौड़ो जो, पकड़ो, वह भागा जाता है ।
कुछ बोले, अब क्या होता है, अब कौन कृष्ण को पाता है ॥
कुछ बोले, बड़ा अनर्थ हुआ, शिशुपाल न जीता छोड़ेगा ।
कुछ बोले, किसको मालुम था यों सहसा घेरा तोड़ेगा ॥
कुछ बोले, कैसा जादू था, मायावी सचमुच यदुपति है ।
इस तरह बाघ सा झपट पड़ा, हम सबकी हुई बड़ी क्षति है ॥

सब सम्मति करके चले हरि से लड़ने वीर ।
उन्हें रोकने के लिए तब आये बलवीर ॥
हल-मूसल लेकर लड़े बलदाऊ बलवान ।
पल भर में रणभूमि में गिरे हजारों ज्वान ॥

तलवारें चमचम चमक रहीं तीरों की भी बौछार हुई ।
रथ घोड़े हाथी दौड़ पड़े भिड़ गये वीर बह मार भई ॥
जिससे कायर डरके भागे वीरों के उर उत्साह बढ़ा ।
यादव वीरों से लड़ने को चंदेरी का नरनाह बढ़ा ॥
शिशुपाल श्रवण कर हरण-कथा अत्यंत क्रोध से भरा हुआ ।
सेना लेकर जनवासे से आया रण में, पर डरा हुआ ॥

अपमान न ऐसा जो होता तो शायद ही लड़ने जाता।
श्रीकृष्णचन्द्र के विक्रम से बल से मन में था घबराता॥
पर आज न वह कुछ जो करता चुपचाप बैठ घर में रहता।
तो लोग थूकते सब उसको, कायरपन की निन्दा सहता॥

जरासंध शिशुपाल का था साथी बलवान।
उसने भी रणभूमि को किया तुरंत प्रयान॥
दोनों दल आकर भिड़े क्रुद्ध हुए बलराम।
मारकाट होने लगी, घमासान संग्राम॥

कट-कटकर हाथी गिरते थे जैसे पहाड़ फट पड़ते थे।
उनके ऊपर के वीर मगर गिरते पड़ते भी लड़ते थे॥
घोड़े घायल हो घने पड़े रथ टूटे फूटे ढेर हुए।
अधमरे अनेक कराह रहे कुछ आह कर रहे विकल बड़े॥
यादव सेना के बाणों से प्राणों पर उनके बन आई।
सब ओर मृत्यु का राज्य हुआ अति घोर उदासी सी छाई॥
वैतरणी सी रण-धरणी में वह चली भयानक रक्त नदी।
कायर न पार पाते जिसका दुस्तर वीरों को मगर न थी॥

कछुए सी ढालें बहें मगर सदृश सन्नाह।
सूँड़ हाथियों के कटे उसके थे वे ग्राह॥
अस्त्र-शस्त्र छोटी-बड़ी मछली उछली जान।
बहते रथ नौका मनो, पहिये भँवर समान॥

कटे सिरों के केश थे बिखरे मनों सेवार।
दोनों दल तटभूमि थे और बड़ा विस्तार।
शिशुपाल पक्ष की सब सेना कट मरकर वहीं समाप्त हुई।
यह खबर उधर कुन्डिनपुर में घर-घर में सबको प्राप्त हुई॥
रुक्मी सुनकर इस घटना को अत्यंत क्रोध से भरा हुआ।
बोला अपने सेनापति से, क्या तू भी कुछ है डरा हुआ॥
क्यों अरे सभी सेना लेकर अबतक है पीछा किया नहीं।
किसलिए लुटेरे छलिए को कुछ दंड अभीतक दिया नहीं॥
सुनकर बोला सेनापति यों मैं सेवक हूँ आज्ञाकारी।
आज्ञा पाते ही जाता हूँ लेकर अपनी सेना सारी॥
जो कुछ मुझसे हो सकता है वह करके मैं दिखलाऊँगा।
यों तो मैं राजकुमारी को लाऊँगा या मर जाऊँगा॥
सुन सेनापति के वचन बोला राजकुमार।
मेरी आज्ञा से अभी सेना हो तैयार॥
चुने हुए योद्धा सभी ले लो अपने साथ।
चलो लड़ूँगा कृष्ण से मैं भी दो दो हाथ॥
दिखला दूँगा मैं उसे वीरपने की बान।
उसने मेरा है किया आज बड़ा अपमान॥
इसका बदला उससे लूँगा रण में मैं उसको मारूँगा।
रुक्मिणी बहन को भुजबल से मैं जाकर अभी उबारूँगा॥
मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ जीता न बचेगा कृष्ण कभी।

रुक्मिणी बहन को लाऊँगा, यह देखोगे तुम लोग सभी ॥
जो कहीं प्रतिज्ञा यह अपनी मैं पूर्ण नहीं कर पाऊँगा।
कुन्डिनपुर लौट न आऊँगा मुँह अपना नहीं दिखाऊँगा ॥
बस आज कृष्ण है या मैं हूँ देखूँ उसके कितना बल है।
वह खल है उसका बल छल है तो मुझमें भी रण-कौशल है ॥

यों बकता झकता हुआ रुक्मी गया मकान।
कवच पहन रण-वेष से किया पुनः प्रस्थान ॥
रुक्मी को रण में विजय कभी न होगी प्राप्त।
यह प्रसंग इस ही जगह होगा आज समाप्त ॥
रुक्मी की जैसी हुई दुर्गति रण में हार।
प्राण बच गये जिस तरह रुक्मी के इस बार ॥
जैसे भीष्मक भूप ने सब विधि उत्तम जान।
दिया कृष्ण को भक्ति से सादर कन्यादान ॥
सो सब भाव-भरी कथा कृष्ण-विवाह-प्रसंग।
कल सुनिएगा प्रेम से भक्ति-भाव के संग ॥
एक बार बोलो सभी मिल करके सानन्द।
जय जय जय रुक्मिणि-रमण, जय जय गोकुलचन्द ॥

रुक्मिणी-परिणय

रुक्मिणी-परिणय

१८ वाँ भाग

जयति रुक्मिणी-प्राणपति जय जन-जीवन-प्राण।
रथ पर बैठे हाथ में लिये शरासन बाण॥
भक्तों के सर्वस्व वर वीर वेष भगवान।
करूँ सफल निज लेखनी कर प्रभु का गुणगान॥
रुक्मी-बन्धन रुक्मिणी-परिणय कथा प्रसंग।
अब सुनिए सब ध्यान धर भक्ति प्रेम के संग॥

कर कठिन प्रतिज्ञा रुक्मी ने रण का उद्योग किया भारी।
उसकी सहायता करने को चल दी विदर्भ सेना भारी॥
रुक्मिणी जीत ले आऊँगा, ग्वाले को मजा चखाऊँगा।
प्रण पूर्ण न जो कर पाऊँगा घर लौट नहीं फिर आऊँगा॥
रुक्मी ने खाकर तावपेंच यह भरी सभा में कह डाला।
पर प्रभु के आगे कुछ न चली, बढ़ गई और उर की ज्वाला॥
रुक्मी को पीछे आते जब यादवपति श्रीहरि ने देखा।
तब समझ गये उसके मन की मस्तक पर पड़ी वक्र रेखा॥

रोक लिया रथ कृष्ण ने सुन रुक्मी-ललकार।
यादव सेना भी रुकी अपने शस्त्र संभार॥

रुक्मी ने आकर निकट कहा--अरे बदमाश।
कहाँ भाग कर जायगा, तेरा निकट विनाश॥
ठहर ठहर कहते हुए रुक्मी ने कुछ बाण।
मारे श्रीभगवान के, हरनेवाले प्राण॥

हँसते-हँसते कृष्णचन्द्र ने टुकड़े-टुकड़े वे कर डाले।
वे गिरे मंत्र के मारे से हों व्यर्थ नाग जैसे काले॥
फिर यादवपति ने फुर्ती से कुछ तीखे तीर लिये कर में।
कानों तक तानी प्रत्यंचा बस काटा कवच एक शर में॥
सारथी मार डाला पल में झंडा भी काटा रिपु-रथ का।
बस यही हाल कर दिया शत्रु के रथ के साथ मनोरथ का॥
रुक्मी की सेना नहीं रही साथी सब स्वर्ग सिधार गये।
पर उसने साहस नहीं तजा उसके वे नहीं विचार गये॥
ले ढाल और तलवार लड़ा कुछ देर और वह श्रीहरि से।
श्रीकृष्णचन्द्र ने क्रीड़ा की कुछ देर और फिर उस अरि से॥
दुर्वचन बाण जब रुक्मी के सहने की सीमा नाँघ गये।
तब हरि की भ्रुकुटी कुटिल हुई पल भर में लोचन लाल भये॥

झपट कृष्ण ने शत्रु से छीनी तब तलवार।
पकड़ लिया पशु सा चहा करना खड्ग-प्रहार॥
भाई पर लख प्राण का संकट राजकुमारि।
काँप उठी श्रीरुक्मिणी स्नेहमयी सुकुमारि॥

रथ से पथ में उतर पड़ीं रुक्मिणी कलेजा धड़क रहा।

बह चला पसीना अंगों से कुछ जाता उनसे नहीं कहा ॥
श्रीकृष्णचन्द्र के पैर पकड़ सिसकियाँ लगीं भरने रानी ।
मिट गया कृष्ण का कोप तुरत हँसकर बोले मीठी बानी ॥
मत डरो प्राणप्यारी मुझसे मैं इसके प्राण नहीं लूँगा ।
इसका अभिमान मिटाने को केवल कुछ दंड इसे दूँगा ॥
श्रीकृष्णचन्द्र ने यों कहकर रुक्मी को रथ से बाँध दिया ।
फिर उसकी मूँछें आधा सिर तलवार धार से मूड़ लिया ॥

लज्जा से गड़ सा गया रुक्मी हरि से हार ।
विवश बँधा चुप हो रहा अपने मन को मार ॥
बिना विचारे जो करे यों साहस का काम ।
ऐसी ही होती दशा उसकी, हो बदनाम ॥

इतने में बलदाऊ आये रुक्मी गति लखकर ऐसी ।
बोले श्रीहरि से—क्यों भैया, कर रहे क्रूरता तुम कैसी ॥
कुछ भी हो कैसा भी हो यह अब तो सम्बन्ध हमारा है ।
रुक्मिणी आप की पत्नी है, यह उनका भाई प्यारा है ॥
रुक्मिणी ओर मुड़कर बोले—देवी, मन में मत रोष करो ।
है दोष तुम्हारे भाई का यह समझ स्वयं संतोष करो ॥

रुक्मी से फिर यों कहा—सुन लो राजकुमार ।
लाओ मन में मैल मत, छोड़ो अब कुविचार ॥
बड़े साहसी वीर हो खूब लगाई टोह ।
भिड़े अकेले कृष्ण से तज प्राणों का मोह ॥

बुरा न मानो कुछ इसका अपमान न इसको तुम मानो।
यह तो साले बहनोई की है हँसी-दिल्लगी यों जानो॥
अब तुम जाओ अपने घर को हमलोग द्वारका जाते हैं।
अपने अपने कर्मों का फल सब लोग जगत में पाते हैं॥
बलदाऊ ने फिर रुक्मी के यों कहकर बंधन खोल दिये।
श्रीकृष्णचन्द्र भी मुसकाकर साले से अपने बोल दिये॥
तुम शत्रु भले समझो हमको, शत्रुता नहीं हम रखते हैं।
रुक्मी बस जाओ अब घर को नर वे जो संयम रखते हैं॥

सबके सच्चे शत्रु हैं काम क्रोध मद मोह।
इनको पहले जीत लो छोड़ो मन का द्रोह॥
यों कहकर श्रीकृष्णजी रथ पर हुए सवार।
रुक्मी भी चुपके चला अपने मन को मार॥
गया पिता के पुर नहीं कहीं वहीं शरमाय।
नगर भोजकट नाम का तुरत बसाया जाय॥

भीष्मक ने जब सुना कृष्ण ने किया रुक्मिणी का उद्धार।
सेना सब शिशुपाल भूप की रही देखती आँख पसार॥
सिंह सियारों के दल से ज्यों लेता अपना छीन शिकार।
वैसे ही रुक्मिणी हरण कर कृष्ण गये द्वारका सिधार॥
तब वह फूले नहीं समाये मनचाही कर दी करतार।
किन्तु सुना जब सुत हठधर्मी हरि से लड़ने को तैयार॥
सेना साज गया पीछे तब वह शंकित हुए अपार।

कुशल नहीं है अब रुक्मी की अपने मन में किया विचार ॥
कैसा हो हो पुत्र पर माता-पिता उदार।
सदा एक सा ही रखें उस पर अपना प्यार ॥
विपद पड़ी उस पर निरख उठता हृदय पसीज।
यह अनुपम वात्सल्य रस कभी न जाता छीज ॥
सुन विपत्ति की बात विचार। भीष्मक जाय हुए तैयार।
रथ पर बैठ चले उस ओर। गये कृष्ण रुक्मी जिस ओर।
गहने पहने वे उजले। घोड़े उड़ते हुए चले।
देखी उड़ती आती धूर। ध्वजा गरुड़ की भी कुछ दूर।
पत्र रुक्मिणी का जो लेकर गये प्रथम वे हरि के पास।
उन्हीं विप्र को भीष्मक ने भी भेजा फिर श्री हरि के पास ॥
ब्राह्मण ने श्रीकृष्ण को आकर किया प्रणाम।
भीष्मक का संदेश यों कहा बताकर नाम ॥
सुनो द्वारकानाथ कृपाकर वैर-भाव को बिसरा दो।
कुँअरि रुक्मिणी जान आपनी उसे यथाविधि अपना लो ॥
रुक्मी मेरा मूर्ख पुत्र है उसके प्राण न तुम लेना।
तुम समर्थ हो अहो तुम्हारा करे सामना क्यों सेना ॥
ले बरात चलिए कुंडिनपुर ब्याह वहीं यह हो जावे।
प्यारी पुत्री की इच्छा भी पूरी होवे सुख पावे ॥
हँसकर बोले कृष्णचन्द्र तब विप्रदेव कर चुका क्षमा।
पहिले ही से रुक्मी को मै, हिंसा में मै नहीं रमा ॥

बलदाऊ ने कृष्ण की इच्छा मन में जान।
कहा विप्र से इस तरह हर्षित हृदय महान ॥
राजा जी ने जो कहा होगा वही तुरंत।
यादव सेना सब चले सज बरात का तंत ॥

क्षण भर में सब यादव सैनिक बने बराती छवि छाजे।
बजते जहाँ नगाड़े रण के बजे वहाँ मंगल बाजे ॥
बाँकी पागें शिर पर सबके भूषण भूषित अंगों में।
पोशाकें शोभा बढ़ा रहीं भड़कीली बहुविधि रंगों में ॥
सब अस्त्र-शस्त्र से सजे हुए हाथी घोड़े रथ पर सोहें।
सब देवरूप तेजस्वी थे अप्सरा देख जिनको मोहें ॥
रुक्मिणी सहित श्रीकृष्णचन्द्र रथ ही के ऊपर लौट चले।
बलदाऊ आदि बड़े-बूढ़े आगे पीछे जा रहे भले ॥

विप्रदेव भीष्मक सहित गये प्रथम सानन्द।
केवल लौट गया नहीं बस रुक्मी मतिमन्द ॥
भाग गया शिशुपाल भी समाचार सब जान।
जीतेजी भूला नहीं यह अपना अपमान ॥

कुन्डिनपुर में गली-गली आनन्द समृद्ध उमड़ आया।
राजा ने राजमहल को था सब भाँति सुसज्जित करवाया ॥
लख शोभा वह कुन्डिनपुर की वह इन्द्रपुरी शरमाती थी।
वैकुण्ठ लोक की शोभा भी बलिहारी उस पर जाती थी ॥
वैकुण्ठनाथ जब स्वयं यहाँ वैकुण्ठ-स्वामिनी सहित रहे।

बैकुण्ठ कहो किस तरह न फिर उसके आगे यों लाज रहे ॥
राजा भीष्मक ने यथासमय की धूमधाम से अगवानी ।
जनवासे में जा जमा हुए यदुवंश वीर ज्ञानी मानी ॥

राजा भीष्मक ने किया सादर सब सामान ।
खानपान सम्मान से किये प्रसन्न प्रधान ॥
रात्रि समय शुभ लग्न में राजा भीष्मक भौन ।
जो उत्साह उमड़ पड़ा उसे बखाने कौन ॥
गये भाँवरों के लिए कृष्णचन्द्र सुखधाम ।
साथ पधारे और भी यादव श्रीबलराम ॥

बैठे विमान में इन्द्र चन्द्र ब्रह्मा आदिक नभ-मंडल में ।
लखने को श्रीहरि का विवाह सम्मिलित हुए उस मंगल में ॥
तेजस्वी और तपस्वी मुनिवरनाथ यशस्वी सब आये ।
गंधर्व अप्सरा सिद्ध यक्ष नर नाग असुर मन हरषाये ॥
पहले तो स्त्री-आचार हुआ नारियाँ बजाती गाती थीं ।
यह जोड़ी लख लखकर मन में आनन्दमग्न हो जाती थीं ॥
वेदी पर श्रीहरि फिर आये शुभ लग्न ब्याह की आई थी ।
सब ओर शांति सुखदायी थी प्रकटी प्रसन्नता छाई थी ॥

वेदपाठ करने लगे ब्राह्मणगण विद्वान ।
किया प्रज्वलित अग्नि का वेदी पर आधान ॥
कर्मकाण्ड कुशकंडिका करने के उपरान्त ।
शाखोच्चारण भी हुआ दोनो ओर सुखान्त ॥

फिर गाँठ वर वधू की बाँधी भीष्मक ने कन्यादान किया।
संकल्प हाथ में लेकर के धन रत्न बहुत सा साथ दिया ॥
जब दान हो चुका कन्या का तब हरि का जय जयकार हुआ।
रुक्मिणी पाणिका ग्रहण किया श्रीहरि को हर्ष अपार हुआ ॥
उठकर फिर हरि ने सकुची सी रुक्मिणी सहित भाँवरें फिरीं।
की अग्निदेव की प्रदक्षिणा आनन्द घटाएँ घुमड़ घिरीं ॥
विप्रों ने पढ़कर वेदमंत्र दोनों को आशीर्वाद दिया।
सौभाग्यवती रुक्मिणी हुई हो गई पूर्ण सब व्याह क्रिया ॥
नारियाँ वधू वर दोनो को ले गईं उठाकर फिर भीतर।
लौकिक आचार मनाने को परिहास हास की इच्छा कर ॥

थापा रक्खा भीत में कुल देवता स्वरूप।
जूते धरे लपेट के पट में नीचे सूप ॥

बोलीं सलहज इनसे हँसकर इनको प्रणाम करना होगा।
कुलदेव हमारे यह नरवर यह काम श्याम करना होगा ॥

हँसकर बोले कृष्ण तब मेरा है क्या काम।
इष्टदेव हैं आपके करिए आप प्रणाम ॥
देख चतुरता श्याम की हुई निरुत्तर नारि।
घूँघट में मुसका उठीं रुक्मिणि राजकुमारि ॥
तब साली ने यों कहा व्याह तुम्हारा श्याम।
तुमको ही तो चाहिए करना इन्हें प्रणाम ॥

बने बालसम बिलकुल भोले। कृष्णचन्द्र भी हँसकर बोले ॥

पहले करो प्रणाम तुम फिर उसके अनुरूप।
इन्हें करूँ मैं वन्दना समझूँ देवस्वरूप ॥
हरि की बातें कर श्रवण सभी नारि सुकुमार।
लोटपोट होने लगीं हँसीं ठहाका मार ॥
फिर बोली सब नारियाँ तुम हो चतुर सुजान।
हम सब सुनने को खड़ीं छन्न कहो भगवान ॥

श्री कहै अब धन्न सुनो मेरे छन्न को तुम हिरदय धारो।
मेरे छन्न जान इमरत रूपी सुन करके फल पावो चारो ॥
छन्न पकैय्या २ छन्न के ऊपर तुम—
करो सास ससुर की सेवा पतिव्रत-धर्म चित्त से पालो।
छन पकैय्या २ घन के ऊपर वारी है।
है जग में स्त्री वही श्रेष्ठ जो पति व्रत-धर्म को धारी है ॥
सुन छन्न हुई सब सुखनारी दे रत्न भेंट भर भर थाली।
ले भेंट चले श्रीकृष्णचन्द्र संग ग्वालबाल सब सुखकारी ॥

पूरी हुई विवाह की रीति गये घनश्याम।
जनवासे रनवास में पूजे सब मनकाम ॥

दूसरे दिवस आई बरात खाने को भात रात बीते।
सब यादव वीर महाबल थे कंदर्प दर्प छवि से जीते ॥
आँगन में पंगत जब बैठी तब पारस होने लगी वहाँ।
षटरस छप्पन भोग धरे कवि में कहने की शक्ति कहाँ ॥
दालें दस विधि की परसीं व्यंजन बहुविधि स्वादिष्ट महा।

हलके फुलके पापड़ चटनी घी से घर भर था महक रहा ॥
चावल बढ़िया दाने दाने जिनके पत्तल में छिटक रहे ॥
केसर कपूर कस्तूरी से मिश्रित होकर जो महक रहे ॥

भोजन जब करने लगे, यादव कुल के वीर।
लगीं नारियाँ गारियाँ उन्हें सुनाने धीर ॥
हँस हँसकर भोजन करें लक्ष्मीपति भगवान।
गारी तो ससुराल की बहुत बड़ा सम्मान ॥

घनश्याम हुए क्यों काले। गोरे हैं वसुदेव देवकी सबने देखे भाले ॥
गोरे नन्द यशोदा गोरी जिनके हो तुम पाले।
गोरे हैं बलदेव सुभद्रा तुम कैसे हो काले।
जान पड़े तुम और के जाये मोहन मुरलीवाले ॥

जनवासे को सब गये यादव खाकर भात।
इतने में फिर हो गया सुन्दर सुखद प्रभात ॥
इसी तरह आनन्द से हुई ब्याह की रीति।
बढ़ी देखकर कृष्ण को सबके मन में प्रीत ॥

भात बढ़ार और जिवनार। हुआ यथा विधि सब सत्कार ॥
बड़े वीर यादव सब नामी। त्रिभुवनतिलक जगत के स्वामी ॥
पहुँचे भीष्मक भूप भवन में। पहने वस्त्राभूषण तन में ॥
बैठी पंगत नृप आंगन में। देख रहे देवता गगन में ॥
रसगुल्ले रस में तैर रहे थी मधुर इमरती मनभाई।
पायस पूरी पकवान घने खाभा खुरमा बर्फी आई ॥

घेवर भी घी में घुले हुए थे बड़े मुलायम मालपुये ।
टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे जो उँगली से भी तनक छुये ॥
दालमोठ नमकीन नमकपारे सोहाल सावें चक्खी ।
पापड़ थे सेव समोसे भी चटपटी चार चटनी रक्खी ॥
सोने के थालों में व्यंजन पक्वान सलोना मीठा था ।
जिसको खाने पर जिह्वा को अमृत भी लगता सीठा था ॥
भोजन जब करने लगे यदुकुल नायक श्याम ।
गारी तब गाने लगीं पुर नारी अभिराम ॥
कुछ नहीं समझ में आता,
कौन तुम्हारे पिता कन्हैया, कौन तुम्हारी माता ॥
नन्दराय हैं पिता तुम्हारे या वसुदेव विधाता ।
जसुदा या देवकी किसे तुम मानो अपनी माता ॥
भाई हैं बलदेव तुम्हारे गोरे देखो लाला ।
पर तुम काले हुए कहाँ से कैसा गड़बड़झाला ॥
सुनती हैं राधा है कोई उनसे कैसा नाता ।
तुम्हीं बताओ और न कोई यह रहस्य बतलाता ॥
गावें गारी प्रेम से नारी सुनते श्याम ।
भोजन आयोजन हुआ यों भीष्मक के धाम ॥
अंत विदाई का दिवस आया दुखद वियोग ।
रोते लख घनश्याम को थे उदास सब लोग ॥
मंडप के नीचे आ बैठे यदुवंश वीर हरि को घेरे ।

आदित्य वरुण सुरपति कुवेर सब देव लगें जिनके चेरे ॥
मुख-मंडल में जो मंडल से परिपूर्ण अनोखी छवि छाई ।
मानो यह उत्सव लखने को सुन्दरता सशरीर उतर आई ॥
भीष्मक ने सबकी पूजा की बरतौनी की सत्कार किया ।
कर तिलक नारियल भेंट किया संतुष्ट अनेक प्रकार किया ॥
हुआ विदा का दिन निकट लोकरीति अनुसार ।
होने लगी तयारियाँ समुचित सभी प्रकार ॥
मंडप में आकर जमा हुए यदुवीर अलंकृत सजे हुए ।
कानों में कुंडल शीश मुकुट सुर जिन्हें देख थे लजे हुए ॥
श्रीकृष्ण बीच में उन सबके ऐसे शोभित थे मनमोहन ।
नक्षत्रमंडली में जैसे परिपूर्ण चन्द्र हो उदित गगन ॥
नर नारी जो उस उत्सव में सम्मिलित हुए थे हर्षित मन ।
हरि मुख पर से टाले न टलें उनके छवि प्यासे युगल नयन ॥
भीष्मक ने सबकी पूजा की वरतौनी की करके टीके ।
फिर हाथ जोड़ यों प्रकट किये हरि आगे भाव सभी जीके ॥
दीनबन्धु प्रभु आप हैं त्रिभुवनपति भगवान ।
दीनहीन मै कर सकूँ किस प्रकार गुण गान ॥
दास जान अपना मुझे अपनाया जो आज ।
सदा कृपा ऐसी रहे मुझ पर श्री व्रजराज ॥
इस दासी मेरी पुत्री को अपना अर्धांगि बनाया है ।
यह कृपा आपकी है स्वामी सेवक को जो अपनाया है ॥

इसको चरणों में स्थान दिया इस कुल का मान बढ़ाया है।
तुम काया हो यह छाया है तुम ईश्वर तो यह माया है ॥

बिदा हुई ब्रजराज की सुन्दर सजी बरात।
पहुँच द्वारिका में किया उत्सव अति अधिकात ॥
कृष्णकथा कलिमलहरन सबको करे निहाल।
श्रोता भी हर्षित हृदय फल पावें तत्काल ॥
जयति रुक्मिणीरमण जय नारायण अवतार।
कहो रुक्मिणी-कृष्ण की मिलकर जय जयकार ॥

आदित्य वरुण सुरपति कुवेर सब देव लगें जिनके चेरे ॥
मुख-मंडल में जो मंडल से परिपूर्ण अनोखी छवि छाई ।
मानो यह उत्सव लखने को सुन्दरता सशरीर उतर आई ॥
भीष्मक ने सबकी पूजा की बरतौनी की सत्कार किया ।
कर तिलक नारियल भेंट किया संतुष्ट अनेक प्रकार किया ॥

हुआ विदा का दिन निकट लोकरीति अनुसार ।
होने लगी तयारियाँ समुचित सभी प्रकार ॥

मंडप में आकर जमा हुए यदुवीर अलंकृत सजे हुए ।
कानों में कुंडल शीश मुकुट सुर जिन्हें देख थे लजे हुए ॥
श्रीकृष्ण बीच में उन सबके ऐसे शोभित थे मनमोहन ।
नक्षत्रमंडली में जैसे परिपूर्ण चन्द्र हो उदित गगन ॥
नर नारी जो उस उत्सव में सम्मिलित हुए थे हर्षित मन ।
हरि मुख पर से टाले न टलें उनके छवि प्यासे युगल नयन ॥
भीष्मक ने सबकी पूजा की बरतौनी की करके टीके ।
फिर हाथ जोड़ यों प्रकट किये हरि आगे भाव सभी जीके ॥

दीनबन्धु प्रभु आप हैं त्रिभुवनपति भगवान ।
दीनहीन मै कर सकूँ किस प्रकार गुण गान ॥
दास जान अपना मुझे अपनाया जो आज ।
सदा कृपा ऐसी रहे मुझ पर श्री व्रजराज ॥

इस दासी मेरी पुत्री को अपना अर्धांगि बनाया है ।
यह कृपा आपकी है स्वामी सेवक को जो अपनाया है ॥

इसको चरणों में स्थान दिया इस कुल का मान बढ़ाया है।
तुम काया हो यह छाया है तुम ईश्वर तो यह माया है ॥

विदा हुई ब्रजराज की सुन्दर सजी बरात ।
पहुँच द्वारिका में किया उत्सव अति अधिकात ॥
कृष्णकथा कलिमलहरन सबको करे निहाल ।
श्रोता भी हर्षित हृदय फल पावें तत्काल ॥
जयति रुक्मिणीरमण जय नारायण अवतार ।
कहो रुक्मिणी-कृष्ण की मिलकर जय जयकार ॥